वर्ष-१० अंक-४ जुलाई-अगस्त २०१६

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-१० अंक-४
जुलाई-अगस्त २०१६

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. मंजु वर्मा, डॉ. अमित जोशी, डॉ. अर्चना तिवारी, डॉ. सुजीत कुमार सिंह, डॉ. हेमराज, डॉ. ममता चौरसिया, डॉ. विकास कुमार सिंह, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. रवि प्रकाश सिंह, डॉ. हरमोहन साहू, डॉ. पौलमी चटर्जी, डॉ. राम अग्रवाल, डॉ. जे. पी. तिवारी, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, जय प्रकाश मल्ल, डॉ. त्रिलोकीनाथ मिश्र, दिनेश मीणा, प्रो. अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ. राजेश कुमार, डॉ. राधा वर्मा, एम. डी. अब्दुल्ला, डॉ. पौलमी चटर्जी, चण्डी मण्डल, डॉ. ममता अग्रवाल, डॉ. तनुजा, डॉ. वंदना पाण्डेय, डॉ. नमिता जैसल,

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल),
माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान),
डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com
मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 जुलाई 2016

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-10 अंक-4 जुलाई-2016

शोध प्रपत्र

अद्वैतवेदान्तवर्णित एकजीववाद-अनेकजीववाद-सिद्धान्तबिन्दु के परिप्रेक्ष्य में -डॉ. मीनाक्षी राय 1-4
व्याकरणशास्त्रे प्रयुक्ता: केचन पारिभाषिका: शब्दा: -अर्पिता मिश्रा 5-9

माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह के महिलाओं के सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन
[राजनांदगांव जिले के विशेष संदर्भ में] -कुमारी दुर्गेश नंदनी साहू 10-15

संगीत और मनोविज्ञान : एक अन्तर्सम्बन्ध -डॉ. पौलमी चटर्जी 16-20
परिस्थितियों की उपज : धूमिल -डॉ. मंजु वर्मा 21-25

भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष के परिवर्तित सम्बन्धों का स्वरुप एवं विघटन -डॉ. हेमराज 26-30
डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार -डॉ. निर्मला देवी 31-35

पुराणों में श्राद्ध तर्पण की परम्परा -डॉ. बृजेश कुमार द्विवेदी 36-39
भारतीय संस्कृति में रामायण का योगदान -सुधा श्रीवास्तव 40-45

दलित स्त्री विमर्श : संघर्ष एवं उत्कर्ष -शिल्पी जायसवाल 46-52
रीतिमुक्त नीति काव्यधारा में सांस्कृतिक उन्नयन -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 53-60

"रामचरितमानस में निरुपित शिक्षा-संस्कृति, नीति एवं राष्ट्रीयता के तत्व" -जय प्रकाश नारायण 61-63
डॉ. रामविलास शर्मा का हिन्दी नवजागरण सम्बन्धी विद्रोह -डॉ. ममता चौरसिया 64-67

साठोत्तरी उपन्यासों में विवाह के प्रति नारी दृष्टिकोण -एम. रघुनाथ 68-73
"उपनिषदों में प्रतिबिम्बित मूल्यादर्श एवं शिक्षा के स्वरुप का समीक्षात्मक अध्ययन" -जय प्रकाश नारायण 74-76

स्वयंसहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण -डॉ. मणि मेखला शुक्ला 77-80
अटल बिहारी बाजपेयी की विदेश नीति : एक अध्ययन -भानु प्रताप मिश्र 81-84

नाट्यपंचरत्नम् में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की मुखरता -डॉ. पूनम सिंह 85-91
संस्कृत वाङ्मये पर्यावरण चिन्तनम् -इन्द्रकला सिंह 92-94

भगवत्भक्ति की महिमा -डॉ. स्मिता द्विवेदी 95-97
भारत में वृद्धों की स्थिति : समस्यायें एवं समायोजन -डॉ. रीता मौर्या 98-101

30 साल में कितना बदला भारतीय मीडिया? -कमल चौहान 102-104
मीडिया में महिलाओं का वस्तुकरण -इष्शिता चटर्जी 105-109

समकालीन कविता में प्राकृतिक सरोकार -हरिकेश मीना 110-113

ਅਜਮੇਰ ਸਿੱਧੂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ : ਬਦਲ ਰਿਹਾ ਮਾਨਵੀ ਸਭਿਆਚਾਰ
(ਕਹਾਣੀ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ 'ਖ਼ੁਸ਼ਕ ਅੱਖ ਦਾ ਖ਼ਾਬ' ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿਚ) -ਕਾਰਜ ਸਿੰਘ 114-118

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,1-4
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 मई 2016

अद्वैतवेदान्तवर्णित एकजीववाद -अनेकजीववाद -सिद्धान्तबिन्दु के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. मीनाक्षी राय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अद्वैतवेदान्तवर्णित एकजीववाद -अनेकजीववाद -सिद्धान्तबिन्दु के परिप्रेक्ष्य में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मीनाक्षी राय* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

1. भूमिका

अद्वैतवेदान्तदर्शन का सभी भारतीय दर्शनों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य वस्तु है, इसकी ही पारमार्थिक सत्ता है, अन्य सभी वस्तुएं मिथ्या हैं। अद्वैतवेदान्त का लक्ष्य जीवब्रह्मैक्य प्रतिपादन है। इसके अनुसार जीव ब्रह्म से अभिन्न है, अज्ञानता के कारण ही जीव ब्रह्म के मध्य भेद की प्रतीति होती है। वस्तुतः सर्वव्यापक ब्रह्माण्डीय चेतना की ही उपाधि से सम्बन्धित होने पर जीव के रूप में प्रतीति होती है।

जीव की उत्पत्तिवाद का निषेध; अद्वैतवेदान्त जीव की उत्पत्ति स्वीकार नही करता, इसके अनुसार दृश्यमान अन्य सभी वस्तुओं के समान जीव की उत्पत्ति नहीं होती अपितु आविर्भाव होता है। आचार्य वादरायण जीव की उत्पत्ति को स्वीकार नहीं करते क्योंकि जीव की उत्पत्ति का वर्णन श्रुति में नहीं हुआ है, तथा साथ ही श्रुतियाँ उसकी नित्यता का प्रतिपादन करती हैं- ''नात्माऽश्रुतेनित्यत्वाच्च ताभ्यः''[1] आचार्य शंकर इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं- ''नात्मा जीव उत्पद्यत इति। कस्मात् ? अश्रुतेः। न ह्यस्योत्पत्तिप्रकरणे श्रवणमस्ति भुयः सु प्रदेशेषु। ---उत्पत्तिरेव त्वस्य न संभवतीति वदामः। कस्मात्? नित्यत्वाच्च ताभ्यः।''[2] अर्थात् जीवात्मा नहीं उत्पन्न होता है, क्योंकि उत्पत्ति प्रकरण में जीवात्मा की उत्पत्ति का अश्रवण है। बहुत प्रदेशों में उत्पत्ति प्रकरण में इस जीव का श्रवण नहीं है।--- इसकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती ये हम कहते हैं क्योंकि श्रुतियों से जीवात्मा के नित्यत्व का बोध होता है।

* पूर्व-शोध छात्रा, संस्कृत विभाग [कला संकाय] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : meenu30sep@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जीव का स्वरूप; जीव ब्रह्म या चैतन्य का प्रतिबिम्ब है। आचार्य वादरायण ने इसी आशय से ''आभास एव च''[3] सूत्र लिखा है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि -''आभास एव चैष जीवः परस्यात्मनो जलसूर्यकादिवत्प्रति-पत्तव्यः। न स एव साक्षात्। नापि वस्त्वन्तरम्।''[4] अर्थात् जलगत सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान परमात्मा का बुद्धि आदि में आभास रूप प्रतिबिम्ब ही जीव समझने योग्य है। जिससे स्पष्ट होता है कि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव है।

प्रस्तुत शोधपत्र में सिद्धान्तबिन्दु की सहायता से जीव के स्वरूप तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों एकजीववाद अनेकजीववाद पर प्रकाश डाला गया है।

2. सिद्धान्तबिन्दु आचार्य मधुसूदन सरस्वती रचित प्रकरण ग्रन्थ है, इसमें आचार्य शंकर रचित दशश्लोकी की व्याख्या की गयी है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने ''आभास एव च'' सूत्र के आश्रय में पल्लवित हुए जीव सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिबिम्बवाद के रूप में वर्णन किया है तथा ब्रह्म या आत्मा का प्रतिबिम्ब जीव है इसमें प्रमाण के रूप में 'आभास एव च' सूत्र को उद्धृत किया है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''तथाप्यात्मनः प्रतिबिम्बे किं मानमिति चेत्? शृणु.....आभास एव च (ब्र0सू0 2/3/50) 'अतएव चोपमा सूर्यकादिवत् (ब्र0सू0 3/2/18) इत्यादिपारमर्षसूत्राणि च तत्र मानानि।''[5]

जीव की उपाधि; आचार्य मधुसूदन सरस्वती के अनुसार ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है। यहाँ जिज्ञासा होती है कि वह उपाधि क्या है? जिसमें ब्रह्म प्रतिबिम्बित होता है। ऐसी जिज्ञासा होने पर आचार्य शंकर की 'तच्चात्मन उपाधिभूतमन्तः करणं मनोबुद्धिर्विज्ञानं चित्तमिति चानेकधा.....।''[6] तथा 'यावदेव चायं बुद्धशुपाधिसंबन्धस्तावज्जीवस्य जीवत्वम्'[7] इत्यादि व्याख्याओं से अन्तःकरण रूप उपाधि एवं ''आभासस्य च अविद्याकृतत्वात्''[8] से अविद्यारूप उपाधि की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अन्तःकरण तथा अविद्या उभय उपाधि के रूप में प्राप्त होते हैं।

अन्तःकरण रूप उपाधि में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है, अन्तःकरण के अनेक होने से जीव अनेक है, इस मत को अनेक- जीववाद तथा अविद्या रूप उपाधि में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है, अविद्या के एक होने से जीव एक है, इस मत को एकजीववाद कहते हैं। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने जीव सम्बन्धी दोनों ही मतों का वर्णन सिद्धान्तबिन्दु में किया है। जो इस प्रकार है -

3. अनेकजीववाद

अनेकजीववाद के अनुसार अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चैतन्य ही जीव है। अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल होने के साथ ही परिच्छिन्न है जबकि शुद्धचैतन्य अपरिच्छिन्न है। अन्तःकरण के स्वच्छ, निर्मल एवं सूक्ष्म होने से उसमें सर्वव्यापी ब्रह्मचैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अन्तःकरण में प्रतिबिम्ब पड़ने पर ब्रह्मचैतन्यबिम्ब होता है। बिम्बभूत ब्रह्मचैतन्य को ईश्वर कहा जाता है एवं अन्तःकरणस्थ प्रतिबिम्बभूत चैतन्य को जीव कहा जाता है।

आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''बुद्धि प्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीवः।''[9]

यहाँ शंका हो सकती है कि बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य को जीव मानने पर सुषुप्ति में जीव का अभाव हो जायेगा क्योंकि सुषुप्ति में अन्तःकरण का अविद्या में विलय हो जाता है। अतः आचार्य मधुसूदन ने उक्त पक्ष को स्पष्ट करते हुए आचार्य प्रकाशात्मयति के मत को उद्धृत किया है। जिसके अनुसार यद्यपि सुषुप्ति में अन्तःकरण अविद्या में विलीन हो जाता है, तथापि सूक्ष्म संस्कार के रूप में अन्तःकरण अविद्या में रहता है अतः अन्तःकरण के संस्कार से अवच्छिन्न अविद्या में चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और वही सुषुप्ति में जीव पद वाच्य है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''अन्तःकरणतत्संस्कारावच्छिन्ना-ज्ञानप्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीवः इति विवरणकाराः।''[10]

अद्वितीय चैतन्य विविध पात्रगत जल में प्रतिबिम्बित सूर्य के समान विविध अन्तःकरण रूप उपाधियों में प्रतिबिम्बत होने के कारण अनेक जीवरूप में प्रतीत होता है। जीव और ब्रह्म में स्वरूपतः भेद नहीं है, वे पारमार्थिक रूप से अभिन्न है, अन्तः -करण रूप उपाधि से उपहित होने से जीव तथा ब्रह्म में भेद दिखाई देता है। अन्तःकरण रूप उपाधि की अनुपस्थिति में चैतन्य में जीवभाव का आविर्भाव नहीं होता। इसे दृष्टान्त द्वारा समझा जा सकता है। जैसे- स्फटिकमणि जपाकुसुम के संयोग

से रक्तवर्ण और एक सूर्य विविध पात्रों के जल में प्रतिबिम्बित होने के कारण अनेक दिखाई देता है। पर जब स्फटिक के सामने से जपाकुसुम हटा लिया जाय तो वह स्वच्छ रूप से भासित होती है तथा जलादि का अभाव होने पर सूर्य ही एकमात्र बचता है, वैसे ही अन्तःकरण रूप उपाधि के अभाव होने पर शुद्ध चैतन्य मात्र ही रहता है।

यहाँ पर शंका होती है कि प्रतिबिम्ब तो रूपवान वस्तु का ही पड़ता है अर्थात् रूपवान वस्तुएँ ही दर्पणादि में प्रतिबिम्बित होती है, अरूपी ब्रह्मचैतन्य का प्रतिबिम्ब अन्तःकरण में कैसे पड़ेगा ? इसका समाधान है- अरूपी या रूपहीन का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि रूप में रूप नहीं है, रूप स्वयं अरूपी है, पर रूप का प्रतिबिम्ब अनुभव सिद्ध है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''जपाकुसुमरूपस्य निरूपस्य निरवयवस्यापि स्फटिकादौ प्रतिबिम्बदर्शनात्।''[11]

यहा पुनः शंका होती है यद्यपि रूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है यह अनुभव सिद्ध है तथापि रूप गुण है, द्रव्य नहीं है। ब्रह्म चैतन्य तो द्रव्य है वह भी अरूपी द्रव्य है, अरूपी द्रव्य का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, इस स्थिति में चैतन्य का प्रतिबिम्ब कैसे संभव है? इसका समाधान इस प्रकार है, सर्वप्रथम तो आत्मा द्रव्य नहीं है दूसरे अरूपी आकाश को प्रतिबिम्बित होते देखा गया है। तथाहि -मेघ, नक्षत्रादि से संयुक्त आकाश का प्रतिबिम्ब जलादि में पड़ता है वैसे ही अरूपी चैतन्य भी अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होता है। आचार्य प्रकाशात्मयति के शब्दों में- ''अमूर्तस्य चाकाशस्य साभ्रनक्षत्रस्य जले प्रतिबिम्बवदमूर्तस्य ब्रह्मणोऽपि प्रतिबिम्ब संभवात् जानुमात्रप्रमाणेऽपि जले दूरविशालाकाशदर्शनाद्।''[12]

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि शुद्ध चैतन्य अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित नहीं होता अपितु माया शबलित ब्रह्म ही प्रतिबिम्बित होता है।

4- एक जीववाद

एक जीववाद को आचार्यों ने अद्वैतवेदान्त के प्रमुख सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। इनके अनुसार अज्ञान से उपहित बिम्बचैतन्य ईश्वर है एवं अज्ञान में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। अथवा अज्ञानोपाधिरहित शुद्धचैतन्य ईश्वर है एवं अज्ञानोपहित चैतन्य जीव है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''अज्ञानोपहितं बिम्बचैतन्यमीश्वरः, अज्ञानप्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीवः इति वा; अज्ञानानुपहितं शुद्धं चैतन्यमीश्वरः, अज्ञानोपहितं च जीव इति।''[13]

इस सिद्धान्त के अनुसार अविद्या रूप उपाधि के एक होने से उसमें अभिव्यक्त चैतन्य (जीव) भी एक है। यही एक जीववाद है। यह एक ही जीव मुख्य या यथार्थ है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी दृश्यमान वस्तुएँ जीव कल्पित हैं। एकजीववाद पक्ष में जीव ही अज्ञान से युक्त होकर जगत् का उपादान और निमित्तकारण है। जिस प्रकार स्वप्नावस्था में प्रतीयमान गज, तुरगादि वस्तुएँ उस स्वप्नस्थ व्यक्ति के द्वारा कल्पित होती है, उनकी कोई यथार्थ सत्ता नहीं होती है, जब तक व्यक्ति स्वप्न देखता है तभी तक उनकी प्रतीति होती है। वैसे ही यह सम्पूर्ण जगत् जीव के द्वारा कल्पित है, इसकी यथार्थ सत्ता नहीं है, ये सभी प्रातिभासिक हैं, जब तक जीव इनका द्रष्टा है तभी तक इनकी प्रतीति होती है। यही दृष्टिसृष्टिवाद है। दृष्टिसृष्टिवाद के अनुसार- दृष्टि ही सृष्टि है। अर्थात् जीव देख रहा है यही सृष्टि है। ऐसा नहीं कि जीव अनुभव नहीं कर रहा है फिर भी जगत् अस्तित्व में है। जीव की अनुभूति के समय ही जगत अस्तित्व में आता है।

आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''इममेव च दृष्टिसृष्टिवादमाचक्षते। अस्मिंश्च पक्षे जीव एव स्वाज्ञानवशाज्जगदुपादानं निमित्तं च। दृश्यं च सर्वं प्रातीतिकम्।''[14]

यहाँ पर शंका होती है कि अविद्योपहित चैतन्य को जीव मानने पर अविद्या के परिणाम घटादि विषयों का जीव को सदैव ज्ञान होने का आसंग प्राप्त होगा? इसका समाधान करते हुए एकजीववादी कहते हैं कि जीव की उपाधि अविद्या का परिणाम होने पर भी घटादि विषय का सदैव प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि मूलाविद्या' का कार्य तुलाविद्या" से घटादि आवृत्त रहते हैं, जिससे घटादि का भान सदैव नहीं होता। इसी शंका को धर्मराज ध्वरीन्द्र में भी उठाया है और समाधान किया है- 'अविद्योपहितचैतन्यस्य जीवत्वपक्षे घटाद्यधिष्ठानं चैतन्यस्य जीवरूपतया जीवस्य सर्वदा घटादि भानप्रसक्तौ घटाद्यवच्छिन्न चैतन्यस्यावरकमज्ञानं मूलाविद्या परतन्त्रमवस्था- पदवाच्यमभ्युपगन्तव्यम्। एवं सति घटादेर्न सर्वदा भान आसंगः।'[15]

वहीं जब चक्षुरादीन्द्रियों के माध्यम से अन्तःकरण का घटादि विषयों के आकार में परिणाम होता है (वृत्ति बनती है) और उसमें चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है, जिससे घटादि विषयक तुलाविद्या (असत्वापादक अज्ञान और अभानापादक अज्ञान) की निवृत्ति

होती है फलस्वरूप घटादि विषयों से अविच्छिन्न चैतन्य के अनावृत होने पर घटादि विषयों का प्रकाश होता है अतः घटादि के सर्वदा भान की आपत्ति नहीं है।

एक जीववाद के ऊपर सबसे बड़ी शंका यह उठती है कि यदि एक ही जीव है तो एक जीव के मुक्त हो जाने पर सभी मुक्त हो जायेंगे एवं इस सृष्टि की प्रतीति भी नहीं होगी? परन्तु शास्त्रों में 'शुकोमुक्तः, वामदेवोमुक्तः' आदि अनेक ब्रह्मज्ञानियों के मुक्त होने की बात कही गयी है, तथा जगत् की प्रतीति हो रही है यह कैसे संभव है? इस शंका का समाधान करते हुए एक जीववादी कहते हैं कि यथार्थतः जीव एक ही है, और वह स्वयं अपने द्वारा कल्पित गुरु और शास्त्रों द्वारा श्रवण-मनन की दृढ़ता से आत्मसाक्षात्कार होने पर मोक्ष प्राप्त करता है, मुक्त हो जाता है। एक जीव के मुक्त होने पर सभी मुक्त हो जाएँगे, ऐसी शंका भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि एक जीव के अतिरिक्त अन्य जीव है ही नहीं। और जहाँ तक शुकादि ब्रह्म-वेत्ताओं की मुक्ति का वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है ये सभी अर्थवाद है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती के शब्दों में- ''देहभेदाच्च जीवभेदभ्रान्तिः। एकस्यैव च स्वकल्पित गुरुशास्त्रद्युपबृंहितश्रवण- मननादिदाढर्यादात्मसाक्षात्कारे सति मोक्षः। शुकादीनां मोक्षश्रवणं चार्थवादः।''[16]

इस प्रकार अद्वैतवेदान्तवर्णित जीव स्वरूप का आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने एकजीववाद अनेकजीववाद के रूप में वर्णन किया है। तथा एकजीववाद को अद्वैतवेदान्त का प्रमुख सिद्धान्त स्वीकार किया है।

सन्दर्भ

[1]आचार्य वादरायण व्यास -ब्रह्मसूत्र, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2003 (2/3/17)

[2]आचार्य शंकर -ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003, पृष्ठ संख्या 566-567

[3]आचार्य वादरायण व्यास -ब्रह्मसूत्र, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2003, (2/3/50)

[4]आचार्य शंकर -ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003, पृष्ठ संख्या 613

[5]आचार्य मधुसूदनसरस्वती -सिद्धान्तबिन्दु, श्रीदक्षिणामूर्ति, मठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 162

[6]आचार्य शंकर -ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003, पृष्ठ संख्या 586

[7]वही, पृष्ठ संख्या 583

[8]वही, पृष्ठ संख्या 613

[9]आचार्य मधुसूदनसरस्वती -सिद्धान्तबिन्दु, श्रीदक्षिणामूर्ति, मठ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ संख्या 184

[10]वही, पृष्ठ संख्या 183

[11]वही, पृष्ठ संख्या 159

[12]आचार्य प्रकाशात्मयति, पंचपादिकाविवरण, महेश अनुसंधान संस्थान, श्री दक्षिणामूर्तिमठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1992, पृष्ठ संख्या 190

[13]आचार्य मधुसूदनसरस्वती -सिद्धान्तबिन्दु, श्रीदक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी- प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ संख्या 186-187

[14]वही, पृष्ठ संख्या 187

[15]धर्मराजध्वरीन्द्र, वेदान्तपरिभाषा -(संपादक) श्री श्रीराम शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन, पृष्ठ संख्या 362

[16]आचार्य मधुसूदनसरस्वती -सिद्धान्तबिन्दु, श्रीदक्षिणामूर्तिमठ प्रकाशन, वाराणसी- प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ संख्या 187

स्रोत

मूलाविद्या ब्रह्मविषयिणी होती है और ब्रह्मज्ञान से निवृत्त होती है।
तुलाविद्या घटादि विषयिणी होती है और घटादि के ज्ञान से निवृत्त होती है।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,5-9
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2016

व्याकरणशास्त्रे प्रयुक्ताः केचन पारिभाषिकाः शब्दाः

अर्पिता मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *व्याकरणशास्त्रे प्रयुक्ताः केचन पारिभाषिकाः शब्दाः* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्पिता मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सर्वेषु शास्त्रेषु प्रायः सन्त्यनेके स्वकीयाः शब्दविशेषाः। ये तत्तच्छात्रेषु सामान्यार्थमपहाय विशेषार्थभावमावहन्ति। त एव शब्दाः पारिभाषिक शब्दा इत्युच्यन्ते। व्याकरणशास्त्रेऽपि एतादृशानां पारिभाषिकशब्दानामस्ति बाहुल्यम्। अत्र मया केचन पारिभाषिक शब्दाः विचार्यन्ते।

1. *पदम् - सुप्तिङन्तं पदम्*[1] इति पाणिनि सूत्रम्। *सुप्तिङौ विभक्ति संज्ञौ स्तः*[2] इत्यर्थमनुसृत्य विभक्ति युक्ता प्रकृतिरेव पदमित्युच्यते। पद द्विविधम् -सुबन्तं तिङन्तञ्च। अन्ये अन्यथा कथयन्ति यत् -द्विविधमेव पदं स्यात्तर्हि प्रकीर्णके एषा उक्तिः कथं समीचीनता मापद्येत यथा हि -

द्विधा केचित्पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधापि वा।
अथोधृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिःप्रत्ययादिवत्।।[3]

किन्तु अत्र न कश्चिद्विरोधः दृश्यते। यथा माधवाचार्येणाप्युक्तम् -*कर्मप्रवचनीयेन वै पञ्चमेन सह पदस्य पञ्चविधत्वमिति* हेलाराजः व्याख्यातवान्। कर्मप्रवचनीयास्तु क्रियाविशेषा यत्र नित्य सम्बन्धावच्छेदहेतव इति सम्बन्ध द्योतन द्वारेण क्रियाविशेषद्योतनाद्युपसर्गेष्वन्तर्भवन्तीत्यसन्धाय पदं चतुर्विधं भाष्यकारेणोक्तं युक्तमिति विवेक्तव्यम्। पदस्य एतद् निर्वचनम् -*पद्यते गम्यतेऽनेनेति पदम्।* अनया व्युत्पत्या पदज्ञानं नितान्तमावश्यकम्।

यथोक्तं विद्वद्भिः -*नापदं शास्त्रे प्रयुञ्जीत।*

प्रकृति विभक्तिसाधितत्त्वमिति पदस्य लक्षणम्।

विभज्यन्ते पृथक् क्रियन्ते कर्तृकर्मादयो यया सा विभक्तिः। दुर्गाचार्याणाम्मते -*अर्थस्य विभजनाद् विभक्तिः।* इति विभक्ति-लक्षणमेव युक्तम्। विभक्तिः प्रत्यययेष्वन्तर्भवतियस्योत्तरे यदा प्रत्ययो युज्यते तदा सा एव प्रकृतिरिति कथ्यते।

* [एम. ए., नेट] संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : arpitabhu101@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कातंत्रव्याकरणेऽप्युक्तम् -*प्रत्ययात्प्रथमं क्रियते इति प्रकृतिः।* रामः पठति इत्याद्युदाहरणेष्वस्या लक्षणसमन्वयः कर्तुं युज्यते।

2. *आगमः* - *प्रकृतिप्रत्यययोः आदिमध्यान्तेषु य आगमनं कुर्यात् सैव आगमः* इति बोद्धव्यः। उक्तमपि यथा -वर्णोपस्थिति-रागमः। शाब्दिकाः कथयन्ति प्रकृतिं प्रत्ययञ्चापि यो हन्ति स आगमः। अन्यदप्युक्तम् -

प्रकृतेः प्रत्ययस्यापि सम्बन्धो यो भवन्नपि।
तयोरनपघाती स्यादागमः स बुधैर्मतः।।

षट् + सन्तः इत्यत्र *डः सि धुट्*[4] इति सूत्रेण धुडागमे सति षट्त्सन्तः इति रूपं सिद्धयति। अत्र धुडागमः टित्त्वात् सन्तशब्दस्य आद्यवयवो भूत्वा तत्र प्रकृत्यंशे प्रत्ययांशे वा कमपि व्याघातं नोत्पादयति इति आगमलक्षणेन लक्षितः अयं धुडागमः। अतोऽस्य उक्तोदाहरणे लक्षण समन्वयः कर्तुं शक्यते।

3. *आदेशः* - प्रकृतिप्रत्यययोः रूपान्तरापत्तिरादेशः। शाब्दिकैरप्युक्तं यथा -आदेशे उपघाती यः प्रकृतेः परस्य वा इत्यादेशः। उदाहरणं यथा- *रामाय इत्यत्रङेर्यः*[5] इति सूत्रेणङेर्यादेशे सति रामाय इति रूपं भवति। तत्र ङे इति प्रत्ययस्य य इति रूपान्तरपत्तिर्भवति अतस्तत्र आदेशलक्षण समन्वितम्।

4. *प्रकृतिः* - *प्रकृतिर्द्विधा भवति -नामधातुप्रभेदतः* यथोक्तं। निरूक्ते -प्रकृतिर्द्विधा - *''नामधातु प्रभेदतः''* यत् प्रातिपदिकं प्रोक्तं तन्नाम्नो नातिरिच्यते।।

अतः प्रातिपदिकस्यैव अपरन्नाम नाम इति विज्ञेयम्। 'नाम' इत्यस्य विषये यास्काचार्येणोक्तम् -*सत्त्वप्रधानानि नामानि।* दुर्गाचार्यः अस्य व्याख्यां कुर्वन् कथयति -लिङ्गसङ्ख्ययोरत्र सद्भाव इति सत्वम्। तत्प्रधानतया बोद्धयते येन तन्नाम इत्युच्यते।

5. *प्रातिपदिकम्* - जातिद्रव्यगुणक्रिया इति चत्वारः शब्दाः एतेषां शब्दानां विषये प्राचीनवैय्याकरणेषु नास्ति वैमत्यम्। अतएव कश्चित् सम्प्रदायोऽपि नासीदिति चतुष्टयवादिनां व्याघ्रपादादीनां वैय्याकरणानां मतम्। किन्तु तेषाम्मते जातिद्रव्यगुणक्रिया एव प्रातिपदिकार्थः। प्राचीनकाले ऋषीणां द्वौ सम्प्रदायौ आस्ताम् वाजपेय सम्प्रदायः शौनकसम्प्रदायश्चेति। वाजपेय सम्प्रदायेजातिः प्रातिपदिकार्थः, द्रव्यादयस्तु विभक्त्यर्थाः शौनकसम्प्रदाये विशेषरूपेण आचार्य व्याडिः उक्तवान् यत् - *द्रव्यं प्रातिपदिकार्थः स्वार्थादयस्तु विभक्त्यर्थाः।* आचार्यपाणिनिरत्र सामञ्जस्यमुपस्थापयति यथोक्तम् -

इह जगति संसारे पदार्थो भिद्यते द्वयम्।
क्वचिद्व्यक्तिः क्वचिज्जातिः पाणिनेस्तूभयं मतम्।

अतएव जातिव्यक्तिगुणवाचीनि प्रातिपदिकानि। उक्तं यथा पाणिनीयाष्टके -*अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्*[6] इति।

6. *धातुः* - धातोर्विषये उक्तम् -धातुर्नामक्रियावाचको गणपठितः शब्दविशेषः। यथोक्तमष्टाध्याय्याम् - *भूवादयो धातवः*[7] *इति।* क्रियावाचिनो-भ्वादयो धातु संज्ञाः स्युः इत्यस्यार्थः। भाष्यकारेण पतञ्जलिना अत्रोक्तम् - पदान्तरसमभिव्याहारं विनैव साध्यत्वप्रकारक प्रतीति विषयः एकफलोद्देश्येन प्रवृत्त पूर्वापरी भूतावयवः सङ्कलनात्मकबुद्धिविषयीकृतो व्यापारसमूहः क्रिया यदा धातोः परा विभक्तिर्युज्यते तदा तत्क्रियापदं भवति। तिङ् विभक्तिर्द्विधा -परस्मैपदम्, आत्मनेपदञ्चेति विभक्तीनामाकृतिसमूह एव तिङ्त्वेनाभिधीयते। धातु समूहस्तु दशधा विभज्यते -

भ्वाद्यदादौ जुहोत्यादि -दिवादौ स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रूधादिश्च तनक्रियादिचुरादयः।।

गणपठितेषु धातुषु केचन अकर्मकाः, केचन सकर्मकाः धातवः भवन्ति फलव्यापारयोरेकाश्रयत्वमकर्मकत्वं, फलव्यापारयोः भिन्नश्रयत्वं सकर्मकत्वमिति अकर्मक-सकर्मकयोर्लक्षणं भू, पठ इत्यादिषु धातुषु सम्यक् संघटते। वैय्याकरणैः परिगणनमपि कृतम्। तद्यथा- लज्जासत्तास्थिति जागरण वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्। शयनक्रीडा रूचिदीप्त्यर्थं धातव एते कर्मविहीनाः।

7. *प्रत्ययः* - प्रत्ययविषये वैय्याकरणानां मतमिदम् -येनार्थः प्रतीयते सः प्रत्ययः इति। केषांञ्चन्मते तु प्रत्ययान्त इति सुप्तिङ् -कृतद्धिताः प्रत्ययाः। किन्तु तत्र धात्ववयवः प्रत्ययश्च विशेषो भवति। धातोः परे विहित प्रत्ययेन यत् नूतन धातुरूत्पद्यते त एव प्रत्ययाः धात्ववयवाः यथा -सनकाम्यादि। आचार्य जगदाशादीनाम्मते तु -विभक्तिकृत्तद्धित-स्त्रीधात्ववयवभेदात्। तत्र विभक्तिर्द्विधा -सुप्तिङौ च। उक्तञ्च -

सङ्ख्यान्वव्याप्तयसामान्यः शक्तिमान् प्रत्ययस्तु यः।
सा विभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता सुप्तिङ्चेति प्रभेदतः।।

या प्रत्यय द्वारा वचनस्य, कारकस्य एवमन्यान्यार्थस्य विभाग बोधयति सा एव विभक्तिः कथिता। विभक्तौ शब्दोत्तरे सुप् भवति, धात्वन्ते तिङ्चेति।

(क) कृत्प्रत्ययः - तव्यनिष्ठादि प्रत्ययः कृत्प्रत्ययः। अत्रोक्तं भगवता पाणिनिना -*कृदतिङ्*[8] इति। यास्काचार्यः कथयति यत् -*भाषिकेभ्यो धातुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यन्ते*[9]। अस्य टीकायां दुर्गाचार्यः लिखति -भाषायां ये प्रायेण प्रसिद्ध प्रयोगास्तेभ्यः नगमायछन्दोविषयाः कृत प्रत्ययान्ताः शब्दाः भाष्यन्ते विव्रियन्ते निरूच्यन्ते इत्यर्थः।

(ख) तद्धितप्रत्यय - मतुप्प्रभृतिविभक्ति धात्वंशकृद्भ्योऽन्यः प्रत्ययस्तद्धितः। *पाणिनीयाष्टके तद्धिताः*[10] इत्युक्तम्। तद्धितः द्विविधः -प्रकृत्यर्थं भिनार्थकः स्वार्थिको भवति। उभयोरूदाहरणं सिद्धान्तकौमुद्याः तद्धितप्रकरणे द्रष्टव्यम्। तेभ्यः प्रसिद्धेभ्यः प्रयोगेभ्यः हिताः प्रत्ययाः तद्धितप्रत्यया इत्यपरे कथयन्ति। तद्धितप्रत्ययाः यथा प्रयोगमेव भवन्ति न खलु ते शिष्टप्रयोगमनुक्रामन्ति।

(ग) स्त्रीप्रत्ययः - स्त्यायति गर्भो यस्यां सास्त्री तद्विशिष्टः प्रत्ययः स्त्रीप्रत्यय इति। स्त्यायतेर्ड्ट *टिड् ढाणञ*[11] इत्यादिना ङीप -स्त्रीत्वं प्रत्ययार्थः प्रकृत्यर्थविशेषेण यथा -'अजाम् आनय' इत्यत्र स्त्रीत्व विशिष्टा अजा इति बोधो भवति न तु अजा निष्ठं स्त्रीत्वम्। व्याकरणे स्त्रीप्रत्ययस्तु पारिभाषिकः यतो हि- अस्य किञ्चित्लक्षणं नोपलभ्यते यथोक्तं वाक्यपदीयकारेण -

शब्दसंस्कारसिद्ध्यर्थमुपायाः परिकल्पिताः।
सर्ववस्तुगतो धर्मः शास्त्रे स्त्रीत्वादयश्च सः।।

पाणिनीयाष्टके अनेकधा स्त्रीप्रत्ययाः मिलन्ती। यथा -ङीप्, ङीष्, ङीन्, टाप्, डाप, चापादयः। अस्योदाहरणानि तत्रैव द्रष्टव्यानि।

8. *नामधातुः* -शब्दोत्तरे काम्यादि प्रत्यय विहिते सति यः शब्दः धात्वाकारं भवति सः नामधातुः -'ति' कथ्यते। नामपूर्वको धातुः नामधातुरिति। नाम्नो धातुत्वासम्भवाद्धात्वेकदेशे धातुप्रयोगः अथवा नाम पूर्वको धातु नामधातुः। नाम्नो निष्पन्नेत्यर्थः। यथा पुत्रकाम्येत्युदाहरणम्। आत्मसङ्कन्तेच्छेव काम्यप्रत्ययो भवति। *आत्मनः पुत्रमिच्छतीत्यत्र द्वितीयान्तात् पुत्रशब्दात् काम्यञ्च।*[12] इत्यनेन काम्यच् प्रत्यये लोपादिकार्ये कृते पुत्रकाम्य इति रूपं भवति। ततः *सनाद्यन्ता धातवः*[13] इति धातुसंज्ञायां, धात्वादिकार्ये विहिते सति *पुत्रकाम्यति* इति रूपं निष्पद्यते। अत्र धातुत्ववत् कार्याणि विहितानि एतावता इदमुदाहरणं सूष्ठु संघटते। इदमेव नामधात्वित्यस्य वैशिष्ट्यम्।

9. *वृद्धिः* - चान्द्रव्याकरणे आदैचवृद्धिः इति परिभाषितम्। भगवता पाणिनिना वृद्धेः परिभाषारूपेण *वृद्धिरादैच*[14] इति सूत्रमुपस्थापितम्। आदैच्चवृद्धिसंज्ञः स्यादिति सूत्रार्थः, अर्थात् वृद्धिपदेन व्याकरणशास्त्रे 'आ ऐ औ एते' त्रयः वर्णाः गृह्यन्ते। वामनजयादित्यौ वृद्धिरादैच् इति सूत्रस्य व्याख्यायामुक्तवन्तौ यत् वृद्धिशब्दः संज्ञात्वने विधीयते, प्रत्येकमादैचां वर्णानां सामान्येन तद्भावितानामतद्भावितानाञ्च। अस्य सार्थकता -सिचिवृद्धिः *परस्मैपदेषु*[15] इत्यस्मिन् सूत्रे भवति। वृद्धिसंज्ञापरकान्युदाहरणानि तत्रैव द्रष्टव्यानि।

10. *सम्प्रसारणम्* - भगवान् पाणिनिः *इग्यणः सम्प्रसारणम्* इति परिभाषितवान्; यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स सम्प्रसारणसंज्ञः स्यात्। अर्थात् य्, व्, र्, ल् विहिताः इ, उ, ऋ, ऌ इत्येते वर्णाः *सम्प्रसारणसंज्ञकाः*[16] भवन्ति। विश्वौहः इत्यस्योदाहरणम्। अत्र *वाह ऊठ*[17] इति सूत्रेण विश्वाह इत्यत्र वाहः यण् प्रत्याहारघटकीभूतस्य वकारस्थाने

इक् प्रत्याहार घटकी भूतः ऊकारः प्रयुज्यते अतः तस्य सम्प्रसारण संज्ञा भवति। चान्द्रव्याकरणे वसोः *सम्प्रसारणम्*[18] *इत्यस्य* स्थाने वसीर्व उत् इति सूत्रं पठितम्।

अनेक प्रकारेण व्याकरणशास्त्रे अनेके पारिभाषिक शब्दाः प्रयुक्तास्सन्ति। तेषां संक्षेपतः परिगणनमत्र मया क्रियते, यथा -1. अधिकरणम् (1- आधारोऽधिकरणम् 1/4/45), 2. अनुदात्तः (2- नीचैरनुदात्तः 1/2/30), 3. अनुनासिकः (3- मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः 1/1/8), 4. अनुस्वारः (4- मोऽनुस्वारः 8/3/32), 5. अन्यतरस्याम् (5- जराया जरसन्यतरस्याम् 7/2/10), 6. अन्वादेशः (6- इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ 2/4/32), 7. अपृक्तः (7- अपृक्त एकाल् प्रत्ययः 1/2/4), 8. अपादानम् (8- ध्रुवमपायेऽपादानम् 1/4/24), 9. अभ्यस्तम् (9- उभे अभ्यस्तम् 6/1/5), 10. अभ्यासः (10- पूर्वोऽभ्यासः 6/1/4), 11. अवसानम् (11- विरामोऽवसानम् 1/4/110), 12. अव्ययम् (12- स्वरादिनिपातमव्ययम् 1/1/37), 13. आत्मनेपदम् (13- तङानावात्मनेपदम् 1/4/100), 14. आप (14- टाब्डाप्चापामाबितिकाशिका 4/1/1), 15. आमंत्रितम् (15- सामन्त्रितम् 2/3/48), 16. आम्रेडितम् (16- तस्य परमाम्रेडितम् 4/1/2), 17. आर्धधातुकम् (17- आर्धधातुकं शेषः 3/4/114), 18. इत् (18- उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1/3/2), 19. उदात्तः (19- उच्चैरूदात्तः 1/2/29), 20. उपधा (20- अलोऽन्त्यात्पूर्वउपधा 1/1/65), 21. उपपदम् (21- तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् 3/1/92), 22. उपसर्गः (22- उपसर्गाः क्रियायोगे 1/4/59), 23. उपसर्जनम् (23- प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् 1/2/43), 24. करणम् (24- साधकतमं करणम् 1/4/42), 25. कर्ता (25- स्वतंत्रः कर्ता 1/4/54), 26. कर्मधारयः (26- तत्पुरूषः समानाधिकरणः कर्मधारयः 1/2/42), 27. कित् (27- असंयोगाल्लिट् कित् 1/2/5), 28. गतिः (28- गतिश्च 1/4/60), 29. गुणः (29- अदेङ्गुणः 1/1/2), 30. गुरू (30- संयोगे गुरूः 1/4/1), 31. गोत्रम् (31- अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम् 4/1/162), 32. घः (32- तरप् तमपौ घः 1/1/22), 33. घिः (33- शेषोध्यसखि 1/4/7), 34. घुः (34- दाधाध्वदाप् 1/1/20), 35. टि (35- अचोऽन्त्यादि टि 1/1/64), 36. दीर्घ (36- अकः सवर्णे दीर्घः 6/1/101), 37. नदी (37- यूस्त्राख्यौ नदी 1/4/3), 38. निपातः (38- चादयोऽसत्त्वे 1/1/57), 39. निष्ठा (39- क्तक्तवतू निष्ठा 1/1/26), 40. पररूपम् (40- एङि पररूपम् 3/1/94), 41. परस्मैपदम् (41- शेषात्कर्तरि0 1/3/78), 42. प्रगृह्यम् (ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् 1/1/11), 43. भम् (43- यचि भम् 1/4/18), 44. युवा (44- जीवति तु वंश्ये युवा 4/1/43), 45. लघु (45- ह्रस्वं लघु 1/4/10), 46. लोपः (46- अदर्शनं लोपः 1/1/60), 47. विभक्तिः (47- विभक्तिश्च 1/4/104), 48. वृद्धम् (48- वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् 1/1/77), 49. संयोगः (49- हलोऽनन्तरा संयोगः 1/1/7), 50. संहिता (50- परः सन्निकर्षः संहिता 1/4/109), 51. सत् (51- तौ सत् 3/2/127), 52. सर्वनाम (52- सर्वादीनि सर्वनामानि 1/1/27), 53. सवर्णम् (53- तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् 1/1/9), 54. सार्वधातुकम् (54- तिङशित्सार्वधातुकम् 3/4/113), 55. स्वरितः (55- समाहारः स्वरितः 1/2/31)।

अनेन प्रकारेण केचन् परिभाषिकाः शब्दाः विवेचिताः केचन् परिगणिताश्च। एवमन्येऽपि प्रभूताः परिभाषिकाः शब्दाः व्याकरणशास्त्रे निहिताः तेषामन्वेषणं विद्वद्भिः कर्तव्यमिति।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]पाणिनीय सूत्र 1/4/14
[2]वही, 1/4/14
[3]वाक्यपदीय, 2-काण्ड
[4]पाणिनीय सूत्र 1/2/45
[5]पाणिनीय सूत्र 1/3/1
[6]पाणिनीय सूत्र 1/2/45
[7]वही, 1/2/45

[8]वही, 3/1/193
[9]निरूक्तम्, 2/2/6
[10]पाणिनीय सूत्र 4/1/76
[11]पाणिनीय सूत्र 4/1/15
[12]पाणिनीय सूत्र 3/1/9
[13]पाणिनीय सूत्र 3/1/32
[14]वही, 1/1/1
[15]पाणिनीय सूत्र 7/2/11
[16]वही, 1/1/45
[17]पाणिनीय सूत्र 6/4/132
[18]वही, 6/4/131

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,10-15
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 मई 2016

माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह के महिलाओं के सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन [राजनांदगांव जिले के विशेष संदर्भ में]

कुमारी दुर्गेश नंदनी साहू*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह के महिलाओं के सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन [राजनांदगांव जिले के विशेष संदर्भ में]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कुमारी दुर्गेश नंदनी साहू* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने का हौसला एकाएक हर कोई नहीं कर पाता। प्रायः यह देखने और सुनने में आता है कि अपने चैन अराम एवं घर की सुख शांति को तिलांजलि देकर कोई भी व्यक्ति समाज सेवा के क्षेत्र में आगे नहीं आता। किन्तु माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह की महिलायें समाज की उपेक्षाओं को झेलते हुए 2001 से अब तक निरंतर सामाजिक क्षेत्र में कई आश्चर्य जनक कार्यो को अंजाम दे रही है। समूह की महिलाओं ने समर्पित भाव से कार्य करने के कारण न केवल अपनी सार्थकता सिद्ध की है अपितु इतिहास में अपना नाम भी स्वर्ण अक्षरो में लिखवा दिया है। सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की सक्रियता शहरी क्षेत्र में तो परिलक्षित होती है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में जहां अल्प शिक्षा के साथ ही महिलाओं की प्रतिबद्धता अधिक से अधिक घर परिवार के उत्तरदायित्व के निर्वहन जिसमें आर्थिक उपार्जन भी शामिल है के आलावा अन्य क्षेत्रों में प्रायः शून्य तक रहा है।

वस्तुतः सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता को पुरूषों के क्षेत्र में अतिक्रमण मानने के साथ ही इसे अनुचित माना जाता रहा है। सामाजिक मर्यादा से जोड़ कर देखने के कारण इसे महिलाओं के लिए हेय माना जाता रहा है। सामाजिक अधिकार के क्षेत्र में भी महिलाओं के दायित्वों को घर परिवार तक सीमित कर देने के कारण पुरूष प्रधान समाज में अर्थोपार्जन के क्षेत्र मे समान रूप से जुड़े रहने के बावजूद इस क्षेत्र में महिलाओं की दखलंदाजी को मान्य नहीं किया गया। संकोची स्वभाव एवं महिलाओं की मर्यादा का ध्यान रखते हुए स्वयं महिलाओं ने इस क्षेत्र को पुरूषों के अधिकार क्षेत्र में दे रखा था।

ऐसी विषम परिस्थितियों में महिलाओं का कार्य क्षेत्र अत्यधिक सीमित अर्थात केवल घर परिवार के दायित्वों के निर्वहन तक सीमित होकर रह गया था। कुल मिलाकर महिलाओं की सक्रियता को लेकर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ था जिसके कारण केवल महिलाओं को आगे आकर कार्य करने का अवसर नहीं मिल रहा था। परिणाम यह हुआ कि महिलाओं की स्थिति केवल दीन-हीन

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर [स्वशासी] महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बनी हुई थी। महिलाओं की संगठनात्मक क्षमता, जागरूकता एवं आत्म निर्भरता का प्रतीक बन चुकी माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह से जुड़ी महिलाओं ने अपने दृढ़ संकल्प एवं आत्म विश्वास की बदौलत कुरीतियों पर जो समाज के उत्थान एवं विकास में बाधक है न सिर्फ डटकर मुकाबला किया है वरन् उसे समूल उखाड फेकने की भरसक कोशिश की है और अधिकांश सफलता भी हासिल की है।

अध्ययन का महत्व

समूह की महिलाएं सामाजिक क्षेत्र में अविश्वसनीय कार्य को अंजाम दिया है। साथ ही समाज में व्याप्त बुराई को समूह नष्ट करने का बीड़ा उठाया है। तथा अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन चुकी है। कामकाजी महिलाएं समान्यता घर की जिम्मेदारी तथा अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए इस प्रकार योजना बना लेती है कि समायोजन करने में कठिनाई नहीं आती। महिलायें घर की चार दीवारी से बाहर निकल कर तथा राष्ट्र व मानवता के वृहद दायरे में अपनी भागीदारी का निर्वाह कर रही है।

स्व-सहायता समूह के उद्देश्य

1 माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह का उधेश्य समाज को नशा मुक्त करना है।
2 बाल विवाह को समूल खत्म करना तथा विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित करना है।
3 किशोरियों के लिए शिक्षा को अनिवार्य करना ताकि वे अपना सामाजिक, आर्थिक उत्थान सफलता पूर्वक कर सके।
4 महिलाओं में सामाजिक जागरूकता लाना ताकि वे समाज में अपनी एक नई पहचान बना सके तथा सामाजिक बुराइयों को समाप्त करना।
5 महिलाओं मे स्वास्थ्य परीक्षण तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता लाना तथा मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन माँ बम्लेश्वरी स्व-सहायता समूह की महिलाओं का सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित है जिसमें निम्न बिन्दुओं पर विशेष रूप से अध्ययन किया गया है।

1. स्व-सहायता समूह महिलाओं के सामाजिक भूमिका का अध्ययन।
2. समाज में व्याप्त बुराई के विरूद्ध संघर्ष का अध्ययन।

अध्ययन क्षेत्र; राजनांदगांव जिले में माँ बम्लेश्वरी स्वसहायता समूह में कार्यरत 50 महिलाओं के माध्यम से अध्ययन किया गया।

उपकल्पना; 1. स्व-सहायता समूह की महिलाओं में सामाजिक जागरूकता तथा चेतना का संचार हुआ है। 2. महिलाओं में आत्म निर्भरता एवं आत्म विश्वास बढ़ा।

अध्ययन पद्धति; निम्नलिखित अध्ययन पद्धति के माध्यम से अपना अध्ययन कार्य पूर्ण किया गया।

तथ्य संग्रह विधि

तथ्यों का संग्रह दो स्रोतों के माध्यम से एकत्रित किया गया है - 1. प्राथमिक स्रोत, 2. द्वितीयक स्रोत।

प्राथमिक स्रोत : इस स्रोत में अनुसूची, साक्षात्कार के माध्यम से प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित किया गया।

निदर्शन : अपने इस अध्ययन में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है।

द्वितीयक स्रोत; इस स्रोत के माध्यम से लिखित प्रलेखों जैसे पुस्तकालय पत्रिका तथा सरकारी प्रतिवेदनों से जानकारी प्राप्त की गई।

समूह के सदस्य समूह में जुड़ने से पहले समाज सेवा का कार्य करती थी या नहीं दिये गये तालिका में उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है जो निम्नांकित है।

समूह में जुड़ने से पहले समाज सेवा संबंधी कार्य का विवरण

तालिका क्रमांक 1.1

क्रमांक	समाज सेवा	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	10	20
2	नही	40	80
योग	50	100	

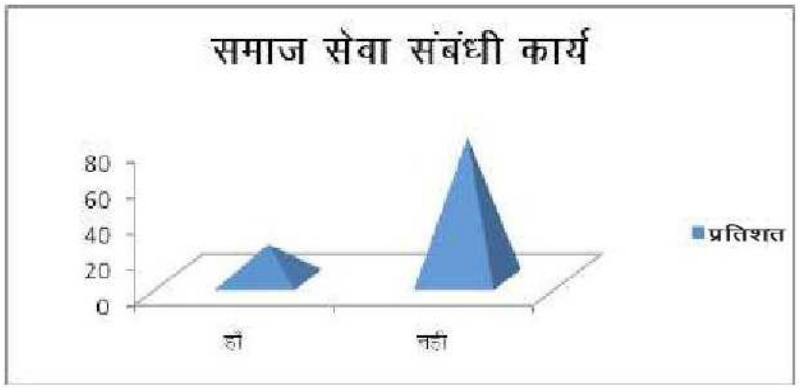

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि स्व-सहायता समूह में कार्यरत महिलाओं में से 20 प्रतिशत महिलायें समूह में जुड़ने से पहले समाज सेवा संबंधी कार्य करती थी वही 80 प्रतिशत महिलायें नहीं करती थी। किन्तु महिलायें समूह में जुड़ने के बाद समाज सेवा का कार्य कर रही है और यह इस समूह की उपलब्धि है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा संबंधी आंदोलनों में भाग लेने संबंधी विवरण

गांवो में लघुवित्तीय कार्यक्रम के कारण घरेलू हिंसा में कमी आई है क्योंकि आर्थिक क्षमता घरेलू हिंसा को कम करती है। और स्व-सहायता समूह की महिलाएं घरेलू हिंसा का समूल अंत करने के लिए पहल कर रही है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा संबंधी आंदोलनों में भाग लेने संबंधी विवरण

तालिका क्रमांक 1.2

क्रमांक	आंदोलनों में भाग लेना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	48	96
2	नही	2	4
योग	50	100	

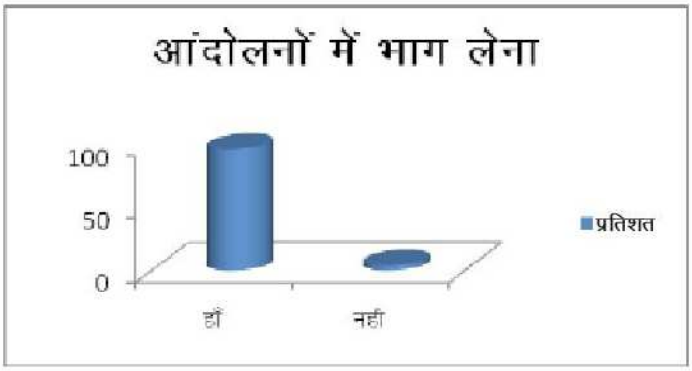

प्रस्तुत तालिका के अनुसार अध्ययनगत उत्तरदाताओं में से 96 प्रतिशत ने महिलाओं पर होने वाले हिंसा संबंधी आंदोलनों में भाग लेने की स्वीकृति दी है। एवं 4 प्रतिशत ने अस्वीकृति दी है। अतः अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समूह की ज्यादातार महिलायें घरेलू हिंसा के विरूद्ध सजग है तथा उसे समूल नष्ट करना चाहती है।

महिला हिंसा के विरूद्ध समूह द्वारा बैठकों में निर्णय

स्व-सहायता समूह की महिलायें महिला हिंसा के विरूद्ध आंदोलनों में भाग तो लेती है साथ ही साथ समूह की प्रत्येक बैठकों में विभिन्न मुद्दों के साथ-साथ महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के संदर्भ में निर्णय भी लेती है। तथा महिलाओं को अपने हित की लड़ाई भी स्वयं लड़ने की हिम्मत देती है।

महिला हिंसा के विरूद्ध समूह द्वारा बैठकों में निर्णय

तालिका क्रमांक 1.3

क्रमांक	बैठकों में हिंसा के विरूद्ध निर्णय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	45	90
2	नहीं	5	10
योग	50	100	

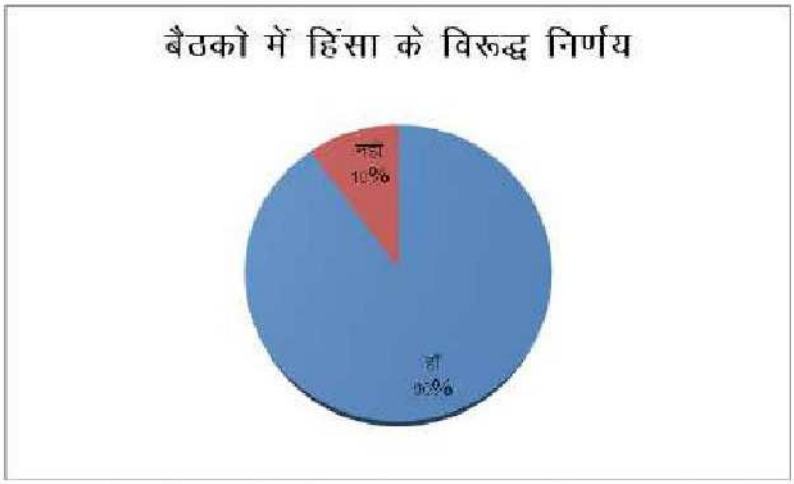

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि महिला हिंसा के विरूद्ध 90 प्रतिशत महिलायें अपने समूह की बैठकों में निर्णय लेती है वही 10 प्रतिशत महिलायें इस तरह का निर्णय नहीं ले पाती है। अतः स्पष्ट है कि समूह की अधिकतम महिलायें महिला हिंसा के विरूद्ध समूह के माध्यम से निर्णय लेती है।

महिला संगठन के माध्यम से महिलाओं को न्याय दिलाने संबंधी विवरण

महिलाओं ने अपनी कुशलता एवं कुशाग्र बुद्धि का परिचय सदैव दिया है। शारारिक एवं मानसिक दृष्टि से महिला पुरूष की तुलना में किसी भी तरह कम नही है। आवश्यकता है उसके विकास के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण की। महिला संगठन ऐसा ही अनुकूल वातावरण बनाता है तथा संगठन ही एक ऐसा माध्यम है जिससे महिलाओं को न्याय मिल सकता है।

महिलाओं को न्याय दिलाने संबंधी विवरण

तालिका क्रमांक 1.4

क्रमांक	न्याय	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	49	98
2	नही	1	2
योग	50	100	

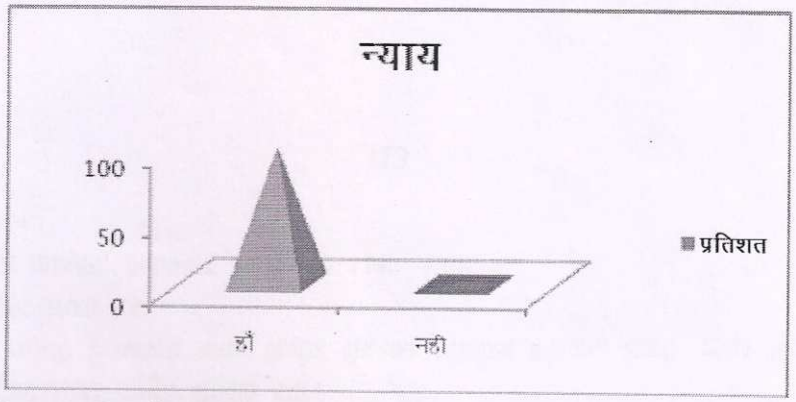

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 98 प्रतिशत महिलाओं ने महिला संगठन द्वारा न्याय मिलने के तथ्य को स्वीकारा है तथा 2 प्रतिशत ने इस तथ्य को नकारा है। अतः महिला संगठन के माध्यम से महिलाओं को न्याय मिलना आसान है क्योंकि संगठन में शक्ति होती है।

समाज में व्याप्त जुँआ, नशा के विरूद्ध प्रयास

महिला स्व-सहायता समूह के माध्यम से महिला उत्थान के साथ-साथ समूह की महिलायें समाज में व्याप्त बुराइयों, जुँआ एवं शराब खोरी के विरूद्ध भी अभियान चला रही है।

समाज में व्याप्त जुँआ, नशा के विरूद्ध प्रयास

तालिका क्रमांक 1.5

क्रमांक	जुँआ, नशा के विरूद्ध अभियान	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	49	98
2	नही	1	2
योग	50	100	

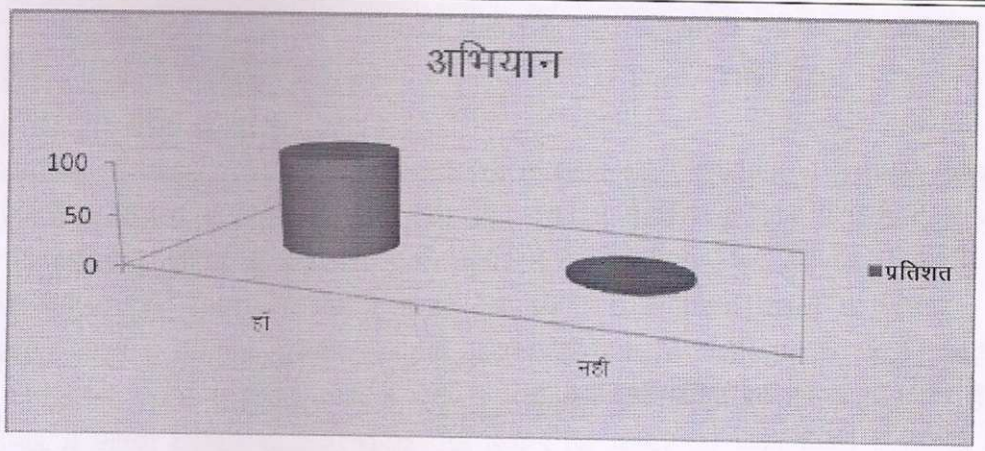

अध्ययनगत समूह की 98 प्रतिशत महिलायें समाज में व्याप्त बुराई, जुँआ, शराबखोरी के विरूद्ध प्रयास कर रही है वहीं केवल 2 प्रतिशत महिलायें इस अभियान में शामिल नहीं है। अतः स्पष्ट होता है कि महिलायें समाज में व्याप्त शराब खोरी एवं जुँआ जैसी बुराइयों को समूल नष्ट करना चाहती है और इसके लिये पुरजोर प्रयास कर रही है।

समाज के लोगों के द्वारा समूह के कार्य को महत्व संबंधी विवरण

किसी भी कार्य की सफलता या असफलता समाज के लोगों द्वारा दिए जा रहे सहयोग तथा महत्व पर निर्भर करती है। यदि वह इन कार्यो के लिए पूर्ण असहयोग की भावना व्यक्त करते है। तो सफलता में बाधा आती है वहीं पूर्ण सहयोग की भावना कार्य को सफल बनाती है।

समाज के लोगो के द्वारा समूह के कार्य को महत्व

तालिका क्र. 1.6

क्रमांक	समूह के कार्य को महत्व	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	46	92
2	नहीं	4	8
योग	50	100	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है, कि 92 प्रतिशत लोग समूह के कार्य को महत्व देते हैं तथा उनका हौसला बढ़ाते है। केवल 8 प्रतिशत लोग समूह के इस कार्य को अनदेखा कर किसी प्रकार का सहयोग नही देते और न ही उनके कार्यो को महत्व देते है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समूह की महिलायें आर्थिक विकास के साथ-साथ, समाजिक क्षेत्र में भी अपनी पूर्ण सहभागिता सुनिश्चित की है। समूह की शत् प्रतिशत महिलायें समाजिक कार्य के लिए सर्म्पित है। तथा समूह की 96 प्रतिशत महिलायें सामाजिक आंदोलनों में भाग लेकर इस तथ्य को स्पष्ट करती है। समूह की 90 प्रतिशत महिलायें, महिलाओं के विरूद्ध होने वाले हिंसाक अपराधों के विरूद्ध आवाज उठाती हैं, तथा उन्हें पूर्ण न्याय दिलाने के क्षेत्र में सजग है। वही समूह की 98 प्रतिशत महिलायें समाज में व्याप्त बुराई, जुआ, अवैध शराब भट्ठियों के विरूद्ध अभियान चला रखा है। इस प्रकार समूह की महिलायें समाज एवं महिलाओं के विकास में अपना योगदान दे रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मुखर्जी प्रभाती (2002) -*मेन इन इंडिया,* जुलाई 1964 : 267

योजना समाज कल्याण विभाग, जुलाई 2002, पृष्ठ संख्या 12-14

FEINSTEIN KAREN (Ed); working woman and families sage publications Beverly Hills 1979

CHANANA KORUNA (Ed); Socialization, education and women: exploration in gender Identity orient Longman new Delhi 1988

साहित्य भवन सीरिज प्रतियोगिता दर्पण (2009)

कुरूक्षेत्र, जनवरी 2016 - पुष्यंत शुक्ला एण्ड संजय श्रीवास्तव।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,16-20
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 अप्रैल 2016

संगीत और मनोविज्ञान : एक अन्तर्सम्बन्ध

डॉ. पौलमी चटर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संगीत और मनोविज्ञान : एक अन्तर्सम्बन्ध* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पौलमी चटर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों को व्यक्त करने के लिये कालक्रम से विभिन्न कलाओं का जन्म हुआ। अतः कला का उद्‌गम स्थल मन है। संगीत (कला) एक मानव व्यवहार है जिसका उद्‌देश्य स्वर-ताल के माध्यम से आंतरिक भावों को अभिव्यक्त करना है और मनोविज्ञान मन तथा मानव व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।[1] इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर संगीत एवं मनोविज्ञान में अत्यंत घनिष्ठ संबंध दृष्टिगोचर होता है।

संगीत में मनोविज्ञान

मन से संबंधित कुछ जटिल मानसिक क्रियाएँ होती हैं जो मानव व्यवहार व कलाभिव्यक्ति दोनों के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी ही कुछ मानसिक क्रियाएँ संगीत कला से भी संबंधित हैं, जैसे-संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, संवेग, सीखना, स्मृति, कल्पना, ध्यान, रूचि इत्यादि।

कला के संदर्भ में संवेदना को मुख्यतः 'अनुभूति' के साथ जोड़कर देखा जाता है परन्तु मनोविज्ञान कें संदर्भ में इसका अर्थ 'इंद्रियजन्य ज्ञान' से है। कुल पाँच प्रकार की संवेदनाएँ बतायी गयी हैं जिन्हें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से संगीत के संदर्भ में समझा जा सकता है :

दृष्टि संवेदना; नृत्य की विभिन्न मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं व अंग संचालन का अनुकरण करने में तथा विविध आसन व हस्त संचालन के अनुकरण में दृष्टि संवेदना सहायक है। 'संगीत रत्नाकर' में गायक के गुणों में उसका सुघड़ (सुन्दर) होना भी बताया है जो इसी संवेदना के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

गंध संवेदना; किसी संगीत सभा का सुगंधमय वातावरण कलाकार व श्रोताओं/ दर्शकों को आनंदानुभूति कराने में सहायक होता है।

स्पर्श संवेदना; किसी अच्छी प्रस्तुति को सुनकर/ देखकर कभी-कभी श्रोताओं/ दर्शकों के रोम पुलकित हो उठते हैं।

* पूर्व शोध छात्रा [गायन विभाग] संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

श्रवण संवेदना; संगीत का मूलाधार 'नाद' होने के कारण इसकी दृष्टि से श्रवण संवेदना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।[2]

स्वाद संवेदना; इसकी ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा है जिसका कंठ संगीत में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। गायन क्रिया के अंतर्गत वांछित ध्वनि उत्पादन, सटीक शब्दोच्चारण इत्यादि इसी की सहायता से संभव हो पाते हैं।

संवेदना के अर्थ का ज्ञान ही प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। किसी ध्वनि को मात्र सुन लेना संवेदना है और उसे सुनकर पहचान लेना कि यह अमुक राग अथवा अमुक वाद्य है, प्रत्यक्षीकरण है। स्वरात्मक प्रत्यक्षीकरण को निर्धारित करने में विभिन्न तत्त्व सहायक होते हैं जिन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

बाह्य कारक; इसके अंतर्गत गेस्टॉल्टवादियों द्वारा बताये गये प्रत्यक्षीकरण के नियम आते हैं, ये हैं :

समानता का नियम (Law of Similarity)- आपस में समानता रखले वाली उत्तेजनाओं का एकीकरण सरल होता है। जैसे - समान सप्तक के स्वरों को सरल रूप में जोड़कर अलंकार बनाते हैं।

समीपता का नियम (Law of Proximity)- निकटवर्ती उत्तेजनाएँ मिलकर सहज ही एक इकाई का रूप ले लेती हैं। संगीत में भी निकट के स्वरों को गाने-बजाने में अधिक सुविधा होती है।

संगति का नियम (Law of Symmetry)- संगीत में कुछ स्वर संगतियाँ एक दूसरे की पूरक होती हैं जिनका शीघ्र प्रत्यक्षीकरण होता है। जैसे-राग यमन में 'नि रे ग' व 'म ध नि' की स्वर संगतियाँ।

पूर्ति का नियम - कभी-कभी किसी आकृति के पूर्ण न होने पर भी उनका प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। जैसे- किसी सीखे हुए अथवा बार-बार सुने हुए राग के पूर्ण स्वर लगने के पूर्व ही उसका प्रत्यक्षीकरण हो जाना।

सातत्य का नियम (Law of Constancy)- संगीत में सीधी सपाट तानों तथा सरल सम लयकारियों का सहज व शीघ्र प्रत्यक्षीकरण होता है जबकि वक्र तान व विषम लयकारियों का प्रत्यक्षीकरण विलंब से होता है।

आंतरिक कारक

इसके अंतर्गत 'परिचय' को समझा जा सकता है। परिचय से तात्पर्य है किसी नयी चीज को सीख लेने पर भविष्य में उसका सरल प्रत्यक्षीकरण। प्रत्यक्षीकरण पर 'मानसिक तत्परता' का भी प्रभाव पड़ता है, अर्थात जैसी मानसिकता होती है उसी के अनुरूप प्रत्यक्षीकरण भी होता है। उदा0- गायन सुनते समय गायक का ध्यान स्वरों के लगाव पर जाएगा जबकि वादक का ध्यान लय-ताल पर अधिक जाएगा और उसी दृष्टि से वह प्रत्यक्षीकरण करेगा।

संगीत तथा मनोविज्ञान को जोड़ने वाली एक अन्य महत्त्वपूर्ण कड़ी भाव तथा संवेग की है। संगीत की दृष्टि से भावों की अभिव्यक्ति ही कला है जबकि मनोविज्ञान में इसे संवेग कहा गया है। संगीत में भाव को रस सिद्धांत के अनुसार दो वर्गों में विभक्त किया गया है - स्थायी भाव एवं संचारी भाव। नाट्यशास्त्रकार भरत ने स्थायी भावों से रसों की उत्पत्ति का सिद्धांत

प्रतिपादित किया (तालिका 2.1) तथा विविध स्वरों व जातियों के रसानुकूल प्रयोग के निर्देश भी दिये (तालिका 2. 2 और 2.3)।

तालिका 2.1

भरत के अनुसार स्थायी भावों से रसों की उत्पत्ति[3]

स्थायी भाव	रस
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
शोक	करूण
क्रोध	रौद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभत्स
विस्मय	अद्‌भुत

तालिका 2.2

नाट्यशास्त्र के अनुसार रसाश्रित स्वर-विधान

स्वर	रस	स्थायी भाव
षड्ज	वीर, रौद्र, अद्भुत	उत्साह, क्रोध, विस्मय
ऋषभ	वीर, रौद्र, अद्भुत	उत्साह, क्रोध, विस्मय
गांधार	करूण	शोक
मध्यम	हास्य, श्रृंगार	हास, रति
पंचम	हास्य, श्रृंगार	हास, रति
धैवत	वीभत्स, भयानक	जुगुप्सा, भय
निषाद	करूण	शोक

तालिका 2.3

नाट्यशास्त्र के अनुसार जातियों का रस-विधान

षड्जग्रामाश्रित जातियाँ -

जाति	अंश स्वर की बहुलता	रस
षड्जोदीच्यवा, षड्जमध्यमा	मध्यम, पंचम	श्रृंगार, हास्य
आर्षभी, षाड्जी	षड्ज, ऋषभ	वीर, अद्भुत, रौद्र
षड्जकैशिकी	निषाद, गांधार	करूण
धैवती	धैवत, षड्ज, मध्यम	वीभत्स, भयानक, करूण

मध्यमग्रामाश्रित जातियाँ -

जाति	अंश स्वर की बहुलता	रस
गांधारी, रक्तगांधारी	गांधार	करूण
गांधारपंचमी, मध्यमोदीच्यवा, मध्यमा, पंचमी एवं नंदयंती	मध्यम, पंचम	श्रृंगार, हास्य
कार्मारवी, आंध्री एवं गांधारोदीच्यवा	षड्ज, ऋषभ	वीर, रौद्र, अद्भुत
कैशिकी	धैवत	वीभत्स, भयानक
षड्जमध्यमा	सभी स्वर	सभी रस

स्वरों की प्रकृति के आधार पर ही प्राचीन आचार्यों ने विभिन्न रागों के व्यक्तित्व का निर्धारण किया होगा ऐसा अनुमानित है। राग वर्गीकरण, रागों का समय निर्धारण, ध्यान के श्लोक, रागमाला चित्र इत्यादि में रागों के व्यक्तित्व की कल्पना उसमें लगने वाले स्वरों व स्वर सन्निवेशों की प्रकृति के आधार पर ही की गयी है। इसके अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने विभिन्न तालों व वाद्यों के भी रस बताये हैं। कविता चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक 'संगीत की मनौवैज्ञानिक पृष्ठभूमि' में विविध तालों तथा वाद्यों का रसों के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

सीखना व्यवहार के परिणामस्वरूप व्यवहार में कोई परिवर्तन है। सीखने के कुछ सिद्धांतों का संगीत के संदर्भ में भी प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त संगीत में स्मृति को 'सीखी हुई चीजों का मनन-चिंतन', कल्पना को 'उपज', ध्यान को 'रचानात्मक अवधान' एवं रूचि को 'कलात्मक रूचि' के अर्थ में समझा जा सकता है।

इस प्रकार मनोविज्ञान संबंधी कई महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को संगीत के संदर्भ में भी समझा जा सकता है।

मनोविज्ञान में संगीत

संगीत व मनोविज्ञान में परस्पर मात्र सैद्धांतिक संबंध ही नहीं है, अपितु मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में संगीत ने अपनी व्यावहारिक उपयोगिता व सार्थकता को भी सिद्ध किया है।

सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology)- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपने सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक आदि विकास के लिये उसे समाज पर निर्भर रहना पड़ता है। समाज मनोविज्ञान मानव व्यवहार के इसी पक्ष से संबद्ध है। अन्य शब्दों में सामाजिक परिवेश में मनुष्य की व्यवहार प्रणाली तथा उस पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों के स्रोत का अध्ययन करने वाला विज्ञान ही समाज मनोविज्ञान है।

मानव के स्वस्थ विकास हेतु स्वस्थ समाज का होना अत्यंत आवश्यक है जिसमें संगीत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। व्यक्ति का व्यक्ति से संबंध होना समाज के लिये अति आवश्यक है। यह संबंध संगीत के माध्यम से विकसित किया जा सकता है। संगीत के द्वारा समाज में एकता, बंधुत्व व प्रेम की भावना जागृत होती है। समूह गीत तथा वृंदवादन इत्यादि से अनुशासन, समता तथा नेतृत्व क्षमता का विकास होता है। संगीत से मनुष्यों में भावात्मक एकता की भावना आती है। भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषण हेतु संगीत का प्रयोग समाज के समस्त वर्गों में किया जाता है। इसके अतिरिक्त संगीत मनुष्य का नैतिक व चारित्रिक उत्थान करता है जो शांति एवं सौहार्द्रपूर्ण समाज के निर्माण हेतु अत्यावश्यक है।

औद्योगिक मनोविज्ञान (Industrial Psychology)- मनोविज्ञान की यह शाखा उद्योग से संबंधित मानवीय व्यवहार के विभिन्न पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत करती है, जैसे-प्रत्येक कार्य के लिये योग्य व्यक्ति तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिये योग्य कार्य का चयन करना, निरंतर एक ही प्रकार के कार्यों को करते रहने से उत्पन्न हुई एकरसता व शारीरिक तथा मानसिक थकान का निवारण करना इत्यादि।

प्राचीन काल में भाषा के अभाव में मनुष्यों द्वारा जीविकोपार्जन हेतु शिकार नृत्य आदि का प्रयोग किया जाता था। आज उद्योग जगत में जाने वाले माल के समुचित प्रचार व वितरण के लिये तैयार किये जाने वाले विज्ञापनों में संगीत का प्रयोग किया जा रहा है, जिससे विज्ञापनों में रोचकता आ जाती है तथा यह उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करने में सफल होते हैं। कुछ लोगों के अनुसार संगीत एक अद्‌भुत प्रेरक शक्ति है, अतः इसका प्रयोग विज्ञापनों के लिये होना सर्वथा उचित है।

कार्य करते समय संगीत सुनने से परिश्रम की मात्रा तो कम नहीं होती, परन्तु ऐसा करके थकान की अनुभूति को अवश्य कम किया जा सकता है। कार्य में मनोयोग को बढ़ाने में भी संगीत सहायक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त कार्यक्षेत्र में विभिन्न कर्मचारियों में परस्पर मधुर संबंधों तथा नेतृत्व क्षमता को विकसित करने में भी संगीत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)- जब व्यक्ति अपनी परिस्थतियों से समायोजित नहीं हो पाता तब उसे असामान्य की श्रेणी में रखा जाता है। असामान्य मनोविज्ञान मनुष्य के असामान्य व्यवहार व क्रियाओं का अध्ययन करता है। असामान्य व्यवहार का संबंध विशेष रूप से युक्ति (Rationality) से है। अतः युक्ति के आधार पर जिस व्यवहार का विवेचन नहीं किया जा सकता अथवा जो व्यवहार युक्ति संगत नहीं है, उसकी गणना असामान्य व्यवहार की श्रेणी में की जाती है। इसके प्रमुख कारण शारीरिक या बौद्धिक विकास में अवरोध, अत्यधिक तनाव व दबाव, गलत अथवा विकृत साहचर्य इत्यादि हैं।

शारीरिक कारणों से उपजी असामान्यता का उपचार संगीत द्वारा संभव नहीं है परन्तु मानसिक विकृतियों को दूर करने में संगीत अवश्य सहायक है। अल्ट सुगर (Alt Sugar) के अनुसार संगीत में रोगी के संवेदनात्मक व बौद्धिक पहलुओं को उत्तेजित करने की शक्ति होती है। अतः संगीत द्वारा मानसिक असामान्यता का उपचार किया जा सकता है क्योंकि इसमें अति उत्तेजना को कम करने तथा शांति प्रदान करने की अद्वितीय क्षमता है।

नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology)- मनोविज्ञान की यह शाखा विभिन्न प्रकार के मानसिक विकारों के उपचार से संबंधित है। अपनी अद्‌भुत रोग निरोधक क्षमता के कारण संगीत विभिन्न मनोदैहिक (Psychosomatic) रोगों के उपचार में सहायक सिद्ध हुआ है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने प्राचीन काल में ही रोग निवारण में संगीत के महत्त्व को स्वीकार किया था। आज संगीत चिकित्सा (Music Therapy) के द्वारा अवसाद, तनाव, अनिद्रा, उच्च

रक्तचाप जैसे रोगों का उपचार किया जा रहा है। देश-विदेश के विभिन्न मानसिक चिकित्सालयों में संगीत को भी एक प्रभावकारी उपचार माध्यम के रूप में अपनाया जा रहा है।

इनके अतिरिक्त शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology) के अंतर्गत मानव के सर्वांगीण विकास के संदर्भ में भी संगीत (विशेषतः शिक्षा के रूप में) की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

संदर्भ

कुलकर्णी, वसुधा (2004) -*भारतीय संगीत एवं मनोविज्ञान,* राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर

पंडित, संगीता (1998) -मनोविज्ञान और चिकित्सा की दृष्टि से मानव जीवन में संगीत का स्थान, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

BELLINGHAM, JOHN(2007), *Dictionary of Education,* Academic (India) Publishers, New Delhi

JEANS , JAMES (1953), *Science & Music ,* The Syndics of the Cambridge University Press, Cambridge

RAO, H.P. KRISHNA, *The Psychology of Music,* Indological Book House, Delhi

SEASHORE, CARL E.(1938), *Psychology of Music,* McGraw-Hill Book Company, New York & London

Psychology of Music, Report of Seminar, Jan. 1975, Sangeet Natak Academy, New Delhi

HINTS

[1]मनोविज्ञान में विचारों को व्यक्त करने के लिये 'व्यवहार' (Behaviour) शब्द का प्रयोग किया गया है जबकि संगीत में इसे 'अभिव्यक्ति' (Expression) कहते हैं।

[2]गायन तथा वादन श्रव्य कलाएँ हैं जबकि नृत्य श्रव्य-दृश्य कलाओं के अंतर्गत आता है।

[3]नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त ने 'अभिनवभारती' में भरत वर्णित तैंतीस व्यभिचारी भावों में प्रथम स्थान प्राप्त 'निर्वेद' को नौवाँ स्थायी भाव कहा है जो अंततोगत्वा 'शांत' रस में परिणत हो जाता है।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,21-25
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 मार्च 2016

परिस्थितियों की उपज : धूमिल

डॉ. मंजु वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित परिस्थितियों की उपज : धूमिल शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं मंजु वर्मा घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''लोकतन्त्र के इस अमानवीय संकट के समय कविताओं के जरिए मैं भारतीय वामपंथ के चरित्र को भ्रष्ट होने से बचा सकूँगा'' एक मात्र इसी विचार से मैं रचना करता हूँ अन्यथा यह इतना दुस्साध्य और कष्टप्रद हैं कि कोई भी व्यक्ति अकेला होकर मरना पसंद करेगा बनिस्वत इसमें आकर एक सार्वजनिक और क्रमिक मौत पाने के। यथा ''कविता के कान हमेशा चीख से सटे रहते हैं।''

उनकी दृष्टि में ''कविता सिर्फ शब्दों की विसात नहीं/ वाणी की ऑख है।'' (सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र)

वास्तव में धूमिल जी की ये पंक्तियॉ अत्यन्त सार्थक हैं। कविता साहित्य की सर्वाधिक क्लिष्ट विधा हैं। जितना संयम, अनुशासन विचार और भाव की अभिव्यक्ति कविता में है उतनी अन्य किसी विधा में नहीं। यह जीवन को अत्यधिक सामीप्य से संस्पर्श कर प्रवाहमान होने वाली अजस्रधारा है। अपनी उन्मुक्तता द्वारा जहॉ वह मन को अभिभूत करती है, वहीं संघर्षो से जूझने की प्रेरणा भी देती है। काव्य के स्वर, जहॉ शान्ति प्रदायक होते हैं वहीं वर्तमान, भूत और भविष्य के सन्दर्भो को छूते हुए करारे व्यंग्यों द्वारा पाठक में तिलमिलाहट भी उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। समय की शिला पर बैठकर कवि अच्छे बूरे कड़वे-मीठे, हृदय को दहला देने वाले तथा स्पंदित करने वाले न जाने कितने अनुभवों को अपने जीवन में अनुभव करता है, कभी उसका मन आह्लादित होता है तो कभी शोषण में मर्माहत होकर दुखी होता है इसी जटिल अनुभव को समकालीन कविता में अभिव्यक्ति दी गयी है। यह अनुभव कवि अपनी खुली ऑखों से एक-एक व्यौरे में गहराई से व्यक्त करता है।

समकालीन कविता की आधार-भूमि मानवीय यथार्थ है। इसका कथ्य बहुआयामी है। यह व्यक्ति, समाज, राजनीति, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय सन्दर्भो को अपने अन्दर संयोजित किए हुए हैं। ये कवि परिवेश में व्याप्त मूल्यहीनता की विविध स्थितियों को खीझ और आक्रोशपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। अपनी कविता को माध्यम से अमानवीय यान्त्रिकता, कुटिलता और क्रूरता

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. डी. ए. के. पी. जी. कॉलेज हाथरस (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के प्रति आम आदमी की अन्तसचेतना को भी झकझोर देना चाहते हैं। इन कवियों की काव्य दृष्टि विध्वंस, तनाव और अस्वीकृति की प्रस्तुति करते हुए भी आस्था, विश्वास और प्रेम के सकारात्मक सन्दर्भ भी प्रस्तुत करती है।

समकालीन कवि किसी दल विशेष के प्रति नहीं वरन् जीवन सत्यों के प्रति संकल्पित हैं। उनमें मानव-मूल्यों के प्रति गहरी निष्ठा है और उनकी दृष्टि राजनीतिक व्यवस्था से परिचित कराने तक ही सीमित नहीं बल्कि व्यवस्था-तन्त्र के विरूद्ध समुचित सामूहिक संघर्ष लिए प्रेरित करती है।

यद्यपि समकालीन कविता का संस्थापक अग्रणी कवि मुक्तिबोध को स्वीकार किया गया है लेकिन धूमिल वह ध्रुवतारा हैं जो अपनी जगह स्थित होते हुए भी सभी क्षेत्रों में नई दिशा देते हैं।

सर्वाधिक तेजस्वी, प्रखर और कान्तिदर्शी 'धूमिल' जी का पूरा नाम सुदामा पाण्डेय है। धूमिल एक ऐसे कवि हैं जिसने सार्थक वक्तव्य पर विशेष बल दिया। मानव-जीवन की मानवीयता के प्रति करूणा का चित्र प्रस्तुत करते हुए समस्त अवरोधों को हटाने के लिए संघर्ष चेतना की ओर प्रत्येक स्थिति, अवसर और प्रसंग में सभी को सचेत होकर संगठित रहने के लिए अवगाहन किया है। समझौता, मौन या तटस्थता को वह कुशासन और अव्यवस्था का पक्षपात मानते हैं।

धूमिल ने अपने प्रथम काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' की कविताओं के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों को अनेक रूपों में पहचानने का प्रयास किया है। उनका स्वर तीखा है, सामूहिक चेतना उनकी रचना का आधार है। अपनी खनकदार-बुलन्द आवाज के कारण, साहित्यकारों से घिरा होने पर भी धूमिल को अलग से ही पहचाना जा सकता है।

अपनी कविता के लिए वह शब्द जनसाधारण की बातचीत, घर, लोकगीत आदि से ही लेते हैं वह कहते हैं, ''शब्द किस तरह/ कविता बनते हैं/ इसे देखो/ अक्षरों के बीच गिरे हुए/ आदमी को पढ़ा/ क्या तुमने सुना कि यह/ लोहे की आवाज है या/ मिट्टी में गिरे हुए खून/ का रंग।'' लोहे का स्वाद/ लोहार से मत पूछो/ उस घोड़े से पूछो/ जिसके मुँह में लगाम है। (कल सुनना मुझे)

धूमिल की इस कविता में प्रयुक्त 'घोडा' जिसके मुँह में अभी भी (आर्थिक गुलामी की) 'लगाम' है। अभी तक 'लोहे का स्वाद' लोहार से पूछा जाता रहा है परन्तु अब कवि धूमिल इस षडयन्त्र को पकड़ लेते हैं और इसलिए वह अक्षरों के बीच गिरे हुए 'अर्थ' को नहीं 'अक्षरों के बीच गिरे हुए आदमी' को पढ़ने की सलाह देते हैं। 'लोहे का स्वाद लोहार से' पूछने को एक बहानेबाजी बताकर उस 'घोड़े' अर्थात् (जनता) से पूछने की सलाह देता है जिसके मुँह में 'लगाम' है। 'शब्द' का कितना गहरा रिश्ता 'लोहे की आवाज' या 'मिट्टी में गिरे हुए खून के रंग' से होता है। बिना जनसाधारण का सहभागी हुए इसे न तो समझा जा सकता है न अनुभव किया जा सकता है और न ही व्यक्त किया जा सकता है।

धूमिल की कविता का मुहावरा असहमति का नहीं 'उग्र विरोध' का है क्योंकि असहमति का चरित्र उनके सामने खुली किताब की तरह स्पष्ट है। वे जानते हैं, ''एक पूँजीवादी दिमाग है/ जो परिवर्तन तो चाहता है/ मगर अहिस्ता-अहिस्ता।''

वह अपना पक्ष भी पहचानते हैं और प्रतिपक्ष भी क्योंकि 'पूरे समाज की सीवन' उधेड़ते हुए उन्होंने 'आदमी के भीतर की मैल देख ली थी'। उनके सामने 'घबराये हुए लोग है,' जरूरतमंद चेहरे हैं, गँवार आदमी हैं, भूखे पेट स्कूल जाने वाले बच्चे हैं, बारिश में टपकने वाली छतें हैं, दवा के अभाव में मरने वाले इंसान हैं, खाली पेट, झुलसा हुआ चेहरा, टूटे हुए पुल बंजर मैदान, कंकालों की नुमाइश, चुनाव, चोट खाई हुई जनता है तो दूसरी तरफ तिजोरियों की दुभाशियागिरी करने वाले अफसर नेता लेखक कवि या कानून की भाषा बोलता हुआ अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है। दूसरों की ठंड के लिए अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढोने वाली भेड़ की तरह बड़कू, छोटकू, परवत्ती, रमजान और रामनाथ, वगैरह हैं तो दूसरी तरफ सुविधा-परस्त लोग हैं। ऐसे माहौल में धूमिल बड़े ही दो टूक ढंग से अपना चुनौती भरा प्रश्न फैंकते हैं।

एक आदमी/ रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ-/ वह तीसरा आदमी कौन है? मेरे देश की संसद मौन है। (रोटी और संसद)

'कल सुनना मुझे' का यह प्रश्न पहले कविता संग्रह 'संसद से सड़क तक' में भी धूमिल ने कई तरह से उठाया था।

'क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है/जिन्हें एक पहिया ढोता है/या इसका कोई खास मतलब होता है।' (बीस साल बाद)

मिश्रित पूँजीवाद की यह संसद अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है। वह कहते हैं- नहीं मैं सहनशीलता को/ साहस नहीं कहता/ और न दुहराना ही चाहता हूँ/ पैसे भर जुबान से पिछली उपलब्धियॉ---नहीं, एक शब्द बनने से पहले मैं एक सूरत बनना चाहता हूँ/ मैं थोड़ी दूर और आगे/ जाना चाहता हूँ/ जहॉ हवा काली है जीने का/ जोखम है सपनो का/ वयस्क लोकतंत्र है आदमी/ होने का स्वाद है।/ मैं थोड़ा और आगे जाना चाहता हूँ/ जहॉ जीवन अब भी तिरस्कृत है/ संसद की कार्यवाही से निकाले गये वाक्य की तरह।' (सुदामा पॉडे का प्रजातंत्र)

धूमिल का विचार है कि- न कोई प्रजा है/ न कोई तंत्र है/ यह आदमी के खिलाफ/ आदमी का खुला सा षडयंत्र है।

हम सभी असामान्य स्थिति में जीते हैं। या तो गुलाम अनुयायी हैं या बिल्कुल विपरीत निरंकुश नेता। इस स्थिति को भोगना भी हमारी नियति सी बन गयी है, ''सहना ही जीवन है जीवन का जीवन से द्वंद्व है/ मेरी हरियाली में मिट्टी की करुणा का छंद है।''(कल सुनना मुझे)

हरित क्रान्ति लघु कविता होते हुए भी स्थिति बदलाव की सांकेतिक अभिव्यक्ति करती है, ''इतनी हरियाली के बावजूद/ अर्जुन को नहीं मालूम उसके गालों की हड्डी क्यों/ उभर आई है उसके बाल/ सफेद क्यों हो गए हैं/ लोहे की छोटी सी दुकान में बैठा हुआ आदमी/ सोना और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी/ मिट्टी क्यों हो गया है।''(हरित क्रांति)

धूमिल कलात्मक गहराइयों में न जाकर जन-सम्बोधन की भूमिका में उतरते हैं 'प्रौढ़ शिक्षा' के माध्यम से देश में व्याप्त स्थितियों को सही प्रकार से समझकर जनता को विद्रोही स्वर देते हैं, ''....इसीलिए मैं फिर कहता हूँ कि हर हाथ में/ गीली मिट्टी की तरह हॉ-हॉ मत करो/ तनो/ अकड़ो/ अमरबेलि की तरह मत जियो/ जड़ पकड़ो/ बदलो अपने-आप को बदलो/ यह दुनियॉ बदल रही है/ और यह रात है सिर्फ रात/ इसका स्वागत करो/ यह तुम्हें/ शब्दों के नये परिचय की ओर लेकर चल रही है।''(प्रौढ़ शिक्षा)

यह यथार्थ के बाहर सच्चाई का परिचय है। जन साधारण के अनुभवों से जुड़े होने के कारण धूमिल इस समूची व्यवस्था से इतने टूट और ऊब चुके हैं कि एक क्षण के लिए भी इसे सहन करने की स्थिति में नहीं हैं। वह चाहते हैं जैसे भी हो यह दृश्य बदलने चाहिए मात्र कविता इसे नहीं बदल सकती। क्योंकि- ''कवि एक लय है/ थकान में गिरी हुयी/ क्या तुमने सुना?/ और तुम्हें खुशी है/ मगर मत भूलो/ कि कवि/ व्यवहारिकता की/ बटी हुयी रस्सी से झूलती हुयी/ संवेदना की खुदकुशी है।'' फिर भी वह कोशिश करते हुए कहते हैं, ''जब मैं अपने ही जैसे किसी आदमी से बात करता हूँ/ साक्षर है पर समझदार नहीं है। समझ है लेकिन/ साहस नहीं है। वह अपने खिलाफ चलने वाली/ साजिस का विरोध खुल कर नहीं कर पाता और इस कमजोरी को मैं जानता हूँ लेकिन इसलिए/ वह आम मामूली आदमी मेरा साधन नहीं है/ यह मेरे अनुभव का सहभागी है।'' इस तरह कविता में शब्दों के जरिए एक कवि 'अपने वर्ग के आदमी को समूह की साहसिकता से/ भरता है जबकि शस्त्र अपने वर्ग शत्रु को/ समूह से विच्छिन्न करता है/ यह ध्यान/ रहे कि शब्द और शस्त्र के व्यवहार का व्याकरण/ अलग-अलग है। शब्द अपने वर्ग मित्रों में कारगर होते हैं और शस्त्र अपने वर्ग शत्रु पर।''(कल सुनना मुझे)

यह प्रकार धूमिल की प्रत्येक कविता सोद्देश्य है। वह किसी न किसी विशिष्ट धारणा, अनुभव और स्थिति एवं प्रसंग को सार्थक तथा सही रूप प्रदान करती है। उसमें संदर्भ की व्यापकता अधिक है। उनकी कविताओं में स्पष्ट कथ्य के साथ-साथ अर्थ-गाम्भीर्य की उपलब्धि भी स्वीकार की जा सकती है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उनकी कविताओं में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषमताओं के साथ-साथ वर्ग चेतना, नक्सलबाड़ी आंदोलन, नारी स्थान की सांकेतिक अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी कविता के प्रत्येक शब्द, वाक्य या प्रसंग अन्तस् को स्पर्श करते हुए हमारे विवके को भी झकझोरते हैं और हमें सोचने को विवश कर देते हैं।

'संसद से सड़क तक' की प्रत्येक कविता उनकी चेतना की द्योतक है। लेकिन 'मोचीराम' कविता वर्ग चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। 'मोचीराम' का फलक छोटा है परन्तु उसमें कसाव अधिक है। 'मोचीराम' में धूमिल का मोची अपनी व्यथा को नहीं व्यक्त करता है, वह शोषित अपमानित वर्ग की ओर से उच्च वर्ग को, उसी के आइने में मुँह दिखाता है। 'मोचीराम' को निराला के 'भिक्षुक' और 'विधवा' की परम्परा में रखा गया है। निराला मानव-संवेदना जगाकर पाठक की ऑखों में ऑसू ला देते हैं लेकिन धूमिल में पत्थर पिघलाने की सामर्थ्य नहीं दिखाई देते है। 'समकालीन कविता की भूमिका' में कहा गया है कि.....उनमें पत्थरों से सिर टकराने की क्षमता खूब है।' 'मोचीराम' कविता को प्रतिनिधि रचना का स्थान

प्राप्त हुआ है क्योंकि इसमें जाति और व्यवसाय के द्वारा वर्गगत चेतना को प्रस्तुत किया गया है। ''न कोई छोटा है/ न कोई बड़ा है मेरे लिये हर आदमी एक जोड़ी जूता है।'' धूमिल कहना चाहते हैं कि, ''मैं कहना चाहता हूँ/ मगर मेरी आवाज लड़खड़ा रही है/ मैं महसूस करता हूँ भीतर से/ एक आवाज आती है- कैसे आदमी हो अपनी जाति पर थूकते हो।'' इस प्रकार 'मोचीराम' कविता प्रतिनिधि रचना का स्थान प्राप्त करते हुए भाषा विवाद तथा चरित्रहीनता के द्वारा जनतंत्र पर व्यंग है

सामाजिक अव्यवस्था के प्रति जिस आक्रोश को निराला और मुक्तिबोध ने स्वर दिया था उसी आक्रोश, विरोध और विद्रोह को धूमिल ने आगे बढ़ाया। वर्तमान की त्रासदी और चोट की अनुभूति को स्वयं अनुभव किया उनके इस जनवादी अनुभव और ईमानदारी पर शक नहीं किया जा सकता है।

'संसद से सड़क तक' तथा 'कल सुनना मुझे' की कुछ कविताओं में उनके सपने झाँकते हैं जिसके लिए धूमिल निरन्तर संघर्षरत रहते हैं। वह कहते हैं, 'जिस पर मेरा जन्म खड़ा है/ मेरे लिए मेरा देश-जितना बड़ा है उतना बड़ा है।' 'रोना और भूख के लिए/ निरा पागलपन है/ देश-प्रेम मेरे लिए- अपनी सुरक्षा का/ सर्वोत्तम साधन है।' (कल सुनना मुझे)

वे आगे कहते हैं, 'मैने राष्ट्र के कर्णधारों को/ सड़कों पर/ किश्तियों की खोज में/ भटकते हुए देखा है/ संघर्ष की मुद्रा में घायल पुरुषार्थ/ भीतर ही भीतर/ एक निःशब्द विस्फोट से त्रस्त है।' कविता के लिए धूमिल के भाव कुछ इस प्रकार हैं- 'कविता सिर्फ शब्दों की बिसात नहीं है, वाणी की आँख है।.....कविता मारती नहीं/ जानें बचाने की कोशिश करती है।'

धूमिल सामाजिक अव्यवस्था को सहन नहीं कर पाते थे उनका मन कह रहा है- 'पता नहीं कितनी रिक्तता थी/ जो भी मुझमें होकर गुजरा-रीत गया/ पता नहीं कितना अंधकार था मुझमें/ मैं सारी उम्र चमकने की कोशिश में/ बीत गया।/ भलमनसाहत/ और मानसून के बीच खड़ा मैं/ ऑक्सीजन का कर्जदार हूँ/ मैं अपनी व्यवस्थाओं में/बीमार हूँ।' (कल सुनना मुझे)

धूमिल का 'कल सुनना मुझे' काव्य संग्रह विभिन्न सोपानों और आयामों से विवेचित और विश्लेषित है। कुछ कविताओं का सम्बंध उनके जीवन, व्यवसाय तथा समस्याओं से भी है परन्तु अर्थ गहनता एवं संदर्भों की व्यापकता अनेक कविताओं में दिखाई देती है। कविताऐं सीमित कथ्य और प्रसंग से आरम्भ होती है परन्तु मध्य तक आते-आते विस्तार ग्रहण कर लेती है। मनुष्य और समाज की वास्तविकता का बोध तथा समूहगत चेतना को संवेदना के धरातल पर शब्दों के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते हैं- 'मुझे लिखो, मैं कटी हुई अंगुलियाँ हूँ/ जिसे भूख ने खा लिया है।/ मैं हूँ अथाह रुदन, अंधकार के आर-पार/ जिसे एक टूटे हुए हृदय ने/ खुद को जोड़ने के लिए गा दिया है।' कवि ने यथार्थ स्थिति को ही अपनी कविता में स्थान दिया है। वह कहते हैं, 'यह है/ मेरी कविता : मेरा घर/ महरी! इसे झाड़ू से/ मत बुहार/ ऑचल से साफ कर/ क्या कहा- भाषा-? देख उधर कोने में/ शब्दों के अर्थ-भरे/ कोने में रखी है।'

'सुदामा पॉडे का प्रजातंत्र' धूमिल के काव्य विकास का अन्तिम काव्य संग्रह है। इसमें कुल साठ कवितायें हैं। कुछ कवितायें पारिवारिक विवशता से सम्बद्ध हैं तो कुछ जनतांत्रिक व्यवस्था और सामाजिक यथार्थ की परिचायक हैं।

सामान्य कथ्य तक सीमित होते हुए भी ये कवितायें अपने अर्थ गाम्भीर्य में कम नहीं हैं। कविता के अंत में धूमिल इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं- 'हम अपने सम्बन्धों में इस तरह पिट चुके हैं/ जैसे एक गलत मात्रा ने/ शब्दों को पीट दिया है।'

कवि धूमिल भाषा, शब्द और कविता के संकेत से आदमी, समाज और राजनीति की पहचान करते हैं। कहीं कविता उन्हें बालिग लड़की का नाम प्रतीत होता है, जिसकी ऑखों में शक, ऑसू हैं तथा ऑसू में तैरता हुआ कितना सवाल है जो उसका चेहरा टटोलता है कि उस वक्त जनतंत्र किधर था।' (डॉ0 हुकुमचंद राजपाल- समकालीन कविता में मानव-मूल्य)

अपने अंतिम समय में धूमिल सहज होना चाहते हैं- 'मैं चाहता हूँ मैं वह सब कुछ/ अनुभव करूं जो कुछ देखता हूँ। मैं साहस नहीं चाहता/ मैं सहज होना चाहता हूँ।'

वास्तव में देश की प्रत्येक समस्या को धूमिल ने अनुभव किया है। कवि यह प्रयत्न भी करता है कि वह समस्याओं का कारण भी ज्ञात कर सके। यही रचना का मूल क्रम भी है। वह कहते हैं- 'हे भाई हे! अगर चाहते हो कि हवा का रुख बदले। तो एक काम करो- हे भाई हे!!/ संसद जाम करने से बेहतर है सड़क जाम करो।'

इस प्रकार धूमिल अपने युग के सबसे अधिक समर्थ कवि हैं उनका लक्ष्य अत्यंत गहरा है। वह चाहते हैं कि जनता में इतनी समझ अवश्य आ जानी चाहिए कि जिन व्यक्तियों को हम चुनाव के माध्यम से सड़क से उठाकर संसद में पहुँचा रहे हैं वह व्यवस्था को गलत क्यों कर रहे हैं? यदि व्यवस्था गलत हाथों में होगी तो समाज और देश की उन्नति नहीं हो सकती है। इसलिए वह नये प्रजातंत्र की तलाश करते हैं। 'मुझे अपनी कविताओं के लिए। दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।'

पहला जनतंत्र उनकी दृष्टि में व्यर्थ था क्योंकि रोटी की समस्या पूर्ववत बनी रही, इसलिए राजनीतिक क्रांति के माध्यम से वह दूसरे जनतंत्र की तलाश करते हैं। जनतांत्रिक मूल्यों की हत्या देखकर उनका हृदय बौखला जाता है- 'क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें एक पहिया ढोता है/ या इसका कोई खास मतलब होता है।'(संसद से सड़क तक)

इस प्रकार धूमिल को समझने के लिए इसी जमीन पर खड़ा होना आवश्यक है। वह एक दिग्नाम संज्ञा हैं जिसे पुनः दोहराने की आवश्यकता है- 'मैं एक दिग्नाम संज्ञा हूँ/ जिसकी परिभाषा अभी तक नहीं हुयी/ दर्पण के आर-पार/ अनायातित बिम्बों में/ मुझको दुहरा दो।'

दिग्नाम संज्ञा-सा अपरिभाषित धूमिल का व्यक्तित्व अनवरत आत्म-मंथन का एक सार्थक परिणाम है। 'मैं हूँ' कविता में कवि की आन्तरिक तड़प, मानसिक अशान्ति या कहना चाहिए कवि की मनःस्थिति की प्रतीति हुयी है- 'मुझे लिखो मैं कटी हुई अंगुलियाँ हूँ।' वह एक ऐसा सुंदर बगीचा हैं जिससे तुम (जनसमूह) एक शब्द फूल तोड़ सकते हो- परन्तु वह चेतावनी देते हुए कहते हैं- 'मगर मत भूलो कि इस बगीचे को/ एक आदमी ने अपने खून से सींचा है।' खून से सींचने का अभिप्राय है- अनुभव की व्यवहारिक सार्थकता।

अव्यवस्थाओं पर व्यंग के माध्यम से वह विरोध और विद्रोह दोनों को स्वीकार करते हैं। जो विद्रोह नहीं करता उसके प्रति धूमिल का हृदय आक्रोशित हो उठता है, ''सचमुच मजबूरी है/ मगर जिंदा रहने के लिए/ पालतू होना जरूरी है।''

वास्तव में धूमिल एकमात्र ऐसे कवि हैं जिसने सबसे पहले सही कविता के लिए सार्थक वक्तव्य पर विशेष बल दिया है। वह समस्या ही नहीं उठाते बल्कि समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। उनका प्रत्येक वाक्य अन्तस् को स्पर्श करता हुआ विवेक को झटकता है और सोचने के लिए विवश करता है। अंत में डा0 विद्यानिवास मिश्र का यह अभिमत दृष्टव्य है-'' धूमिल की कविता बुनियादी तौर पर केवल व्यवस्था से नहीं जूझती, व्यवस्था की अमानवीय परिस्थितियों से जूझती रही। उसकी आक्रामकता में जहाँ एक ओर लाचारी है, वहीं दूसरी ओर भविष्य के दिगंत तक गूँज उपजाने वाली टंकार भी है। कवि की स्थिति का स्पष्ट परिचय कराता है।'' (कल सुनना मुझे, प्रस्तावना)

सन्दर्भ-ग्रन्थ

संसद से सड़क तक -धूमिल
कल सुनना मुझे -धूमिल
सुदामा पाँडे का प्रजातंत्र -धूमिल
समकालीन कविता में मानव-मूल्य -डॉ0 हुकुम चंद राजपाल
समकालीन कविता पर एक बहस - जगदीश नारायन श्रीवास्तव

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,26-30
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 मई 2016

भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष के परिवर्तित सम्बन्धों का स्वरुप एवं विघटन

डॉ. हेमराज*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष के परिवर्तित सम्बन्धों का स्वरुप एवं विघटन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हेमराज* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

प्राचीन काल में नारी की दशा बड़ी विचारणीय थी। वह प्रत्येक प्रकार से पुरुष पर निर्भर थी। नारी पति को परमेश्वर तुल्य मानती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् नारी इतनी जागृत हो गई कि वह प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकार और व्यवहार की मांग करने लगी। वह कंधे से कंधा मिलाकर चलने की अपेक्षा कंधे से कंधा भिड़ाकर पुरुष से आगे निकलने में सफल हो रही है। पुरुष का नारी पर जो इच्छानुसार शासन था वह नारी के संवैधानिक अधिकारों के सामने नष्ट-भ्रष्ट हो गया। नारी समाजिक रुप से दकियानूसी विचारों का त्याग कर रही है और घर की चारदिवारी से बाहर निकलकर रोजगार प्राप्त करने को अधिमान दे रही है। ताकि घर की आर्थिक व्यवस्था में वांछित सुविधएं उपलब्ध हो सकें। परंतु परिवेश में इस सारे परिवर्तन के कारण स्त्री-पुरुष के संबंधों में विघटन की दिवार पनपने लगी है। पुरानी आस्थाएँ टूट रही है जिससे समाज में असंतुलन, असँगतियां, विकृतियाँ और विरोधभास उत्पन्न होकर विघटन की स्थिति पैदा हो रही है। पुरुष को नारी के इस नए रुप से सामंजस्य करने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। स्त्री-पुरुष दोनों द्वन्द्व और विघटन की स्थिति से जूझ रहे हैं, जिसका समाधन उनके विवेक और समझौते पर निर्भर है। परिस्थितियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझने की आवश्यकता है।

स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के प्रति आर्कषण नैसर्गिक प्रवृति के द्वारा होता है। यह प्रक्रिया मानव प्रगति को अक्षुण्ण बनाए रखती है तथा दोनों को भौतिक सुख प्रदान करती है। लेकिन इसमें दोनों समानाधिकारी हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। ''एक के बिना दूसरा उसी तरह निश्चल है, जैसे एक पंख के बिना पक्षी।''[1] स्त्री-पुरुष के परस्पर सबंधों के विषय में आचार्य चतुरसेन का कथन है, ''हृदय और मस्तिष्क ये दो यंत्र शरीर की जीवनी शक्ति के केन्द्र हैं। हृदय में भावुकता, लज्जा, दया और परोपकार की भावना तथा करुणा की तरंगे उठा करती हैं और मस्तिष्क में वीरता, साहस और ज्ञान की लहरें

* [सेवा निवृत्त] प्रधानाचार्य, श्रीमती ज्वाला देवी बी.एड्. कॉलेज [संघोल-ऊँचा पिण्ड] फतेहगढ़ साहिब (पंजाब) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उत्पन्न होती रहती हैं। स्वभाव से ही मस्तिष्क की शक्तियाँ पुरुषों में और हृदय की शक्तियां औरतों में पाई जाती हैं। यह कहा जा सकता है कि प्राणी जगत में स्त्री हृदय है पुरुष मस्तिष्क है। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दोनों पारस्पारिक शक्तियों के विनिमय और सहयोग से ही जीवन शक्ति की धरा को केन्द्रित रखते हैं। जैसे हृदय के बिना मस्तिष्क जीवित नहीं रह सकता उसी तरह समाज में स्त्री के बिना पुरुष और पुरुष के बिना स्त्री की गुजर नहीं हो सकती है। दोनों अपने में अपूर्ण हैं। वे परस्पर मिलकर ही पूर्ण होते हैं।''[2]

स्पष्ट है कि नारी के बिना नर की स्थिति असंभव है। उसके बिना पुरुष का जीवन नीरस तथा अपूर्ण है। इस वास्तविकता को याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है, ''पुरुष का आधा अंश पति है और आधा पत्नी। इन दोनों अंशों के मिलने पर ही पुरुष पूर्ण होता है।''[3] स्त्री-पुरुष संबंध में लौकिक सृष्टि का मूल है। अकेला पुरुष सृष्टि नहीं कर सकता। स्त्री प्रेरणा शक्ति है तो पुरुष संघर्ष शक्ति का नाम है। प्रेरणा और संघर्ष ही पूर्ण जीवन है। पुरुष का जीवन संघर्ष से शुरु होता हैं और स्त्री का आत्म सर्मपण से। ''पुरुष समाज का न्याय है और स्त्री दया। पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभुति है। पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा। ऐसा एक भी सामाजिक प्राणी नहीं मिलेगा, जिसका जीवन माता, पत्नि, भगिनी, पुत्री, स्त्री आदि से किसी न किसी रुप में प्रभावित न हुआ हो।''[4]

विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋगवेद की ऋचाओं में यह संकेत मिलता है कि इस सृष्टि के आरंभ में कहीं भी कुछ भी नहीं था। सर्वत्र जल ही जल था। वर्तमान में भी 2/3 भाग जल है और 1/3 भाग धरती है। ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम काम ही उत्पन्न हुआ। यह मन का प्रथम बीज था, ''कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमम् यदासीत्।''[5] इस काम के उदय होने के साथ ही सबसे पहली प्रक्रिया हुई पुरुष और स्त्री की सृष्टि। अतः सृष्टि के मूल में स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं। उत्पति की दृष्टि से दोनों समान ही हैं। कोई भी किसी से हीन नहीं है। कुरान शरीफ में स्त्री को सृष्टि का मूल माना गया है। ''वो खुदा तो ही जिसने तुमको एक शख्स (आदम) से पैदा किया और उसकी बची हुई मिट्टी से उसका जोड़ा बना डाला ताकि उसके साथ रह सके। वह तुम्हारी पोषाक है और तुम उसकी पोषाक हो। पूरी दुनियां पूंजी है और उसमें बेहतरीन पूंजी एक नेक औरत है।''[6] ''स्त्री-पुरुष के सबंधों का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ। इन सबंधों का आधार प्रेम, भूख, भय, काम आदी के समान मूल प्रवृति अथवा जन्मजात संस्कार न होकर विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, घात-प्रतिघातों के परिणाम स्वरुप विकसित मानव की एक भाव दशा है।''[7] प्रणय भाग का विकास एक उन्नतिशील पशु के रुप मे हुआ। वन्य वस्था ने मानव के पास साध्न बहुत कम थे। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे मानव का सहयोग लेना पड़ता था। सम्पत्ति सामूहिक थी क्योंकि वह सम्मलित श्रम से प्राप्त होती थी। इस अवस्था में मानव समूहों में रहता था और उनमें परस्पर यौन संबंधों पर कोई रोक नहीं थी। एक स्त्री अनेक पुरुषों से तथा एक पुरुष अनेक स्त्रियों से संबंध रखता था। परिवार का अस्तित्व उस समय नहीं था। इस अवस्था में विकास मानव समूहों में नर और नारी में कोई अंतर न होकर पशु समूह की तरह सब घटक समान थे।

मनुष्य ने बर्बरावस्था में पहुंच कर प्रकृति के विरुद्ध संर्घष करना प्रारम्भ कर दिया था। उदर पूर्ति के लिए पशु पालने लगा। उनके द्वारा प्राप्त दूध, मांस, चमड़े आदि का प्रयोग करने लगा। उसका ध्यान कृषि कार्य की ओर भी गया। उसने बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया। पुरुष धीरे-धीरे आय के साधनों का स्वामी बनता गया। यदि उसकी संतान नहीं होती थी तो पुरुष की संपति उसके भाई-बहन या मां के भाई-बहन प्राप्त कर सकते थे। धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ और पुत्र को पिता के निजवंश का मानकर संपत्ति का उतराधिकारी मान लिया गया। इस अवस्था में पुरुष का स्त्री पर अधिकार बढ़ता ही गया, परंतु उसमें वफादारी की कमी सदैव ही रही। बहुपत्नी और दासी प्रथा भी उसी अवस्था की देन है। स्त्री हरण और स्त्री क्रय-विक्रय की प्रथा भी इस अवस्था में प्रचलित थी। विवाह संबंध में भी परिवर्तन हुआ। संगोत्र, समान रक्त संबंध के भीतर विवाह निषेध माना जाने लगा। भाई-बहन, पिता-पुत्र, मां-बेटे ही नहीं बल्कि एक रक्त वाले बहुत से और संबंधियों से भी यौन संबंध का निषेध इसी अवस्था में हुआ। मुखिया पुरुष को बहु-पत्नियाँ रखने का अधिकार था। इसके बाद पितृ-सत्तात्मक प्रथा आरंभ हुई। सभ्य अवस्था में स्थाई विवाह सबंध का आविर्भाव हुआ। ''मिथन परिवार'' का स्थान एक पति विवाह की स्थाई संस्था ने ले लिया। इस अवस्था में विवाह सबंध विच्छेद का अधिकार केवल पुरुष के पास ही था। धीरे-धीरे स्त्री

और पुरुष में समानता की भावना प्रबल होने लगी। नारी केवल क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं रह गई। आर्थिक स्वतंत्रता के कारण स्त्री-पुरुष की सामाजिक विषमता समाप्त हो गई।

यह अटल सत्य है कि समय सदा एक समान न रहकर परिवर्तनशील होता है। इसी प्रकार से ही स्त्री-पुरुष परस्पर संबंध भी समय अनुसार परिवर्तित होता रहता है। भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों का आज जो स्वरुप है वह प्राचीन काल से सर्वथा भिन्न है। प्राचीन युग में स्त्री भोग्य, पूज्य, प्रेयसी, सहयोगिनी और सहचरिणी रही, किन्तु पुरुष के साथ उसका सबंध सदैव सामंजस्यपूर्ण ही रहे। लेकिन मध्यकाल में स्त्रियों की स्थितियों में गिरावट आई। वे शिक्षा के अधिकार से वंचित होकर घर की चारदिवारी में बंद होकर रह गई। अपनी समस्त सेवा और त्याग के बाबजूद भी वह पुरुष की कृपापात्री बनकर रह गई, न की अधिकारिणी। परिवार में बांझ और विधवा स्त्री अशुभ एवं भार स्वरुप समझी जाती थी। इस प्रकार भारतीय मध्यकालीन समाज में स्त्री-पुरुष संबंधों की दशा अत्यंत विचारणीय थी। स्त्री को न ही सम्मान प्राप्त था और न ही सुरक्षा के साधन। शिक्षा का अभाव, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, बाल-विवाह आदि जैसी सामाजिक कुरीतियों के कारण स्त्री-पुरुष संबंध विषमतामय थे। स्त्री संबंधी यथार्थ दृष्टि का अभ्युदय भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने पर हुआ। इस काल में नारी ने स्वतंत्रता प्रभाव के दर्शन किए। अंग्रेजों ने स्त्रियों का सम्मान किया और पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। भारतीय पुरुष नेताओं ने नारी को समाज में सम्माननीय स्थान दिलाने के लिए बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना किया जिसके फलस्वरुप अब नारी को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व माना जाने लगा।

वर्तमान युग में नारी चेतना का बहुत विकास हुआ और जिससे अब वह केवल भोग-विलास की सामग्री न होकर आर्थिक रुप से स्वतंत्र होना चाहती है। आज नारियों नें अनेक पदों पर अत्यंत सफलतापूर्वक कार्य कर महत्वपूर्ण एवं उतरदायी कार्यों के लिए अपने-आप को समर्थ सिद्ध कर दिया है। आज नारियां बाहर अनेक जगह कार्य करती है और बिना किसी बाद-विवाद तथा शांतिपूर्वक घर लौटती हैं। पहले बाहर कार्य करने से नारियों पर आशंका प्रकट की जाती थी कि उनकी पवित्रता की रक्षा संभव नहीं है। मानव मन में जो अज्ञात आशंका समाई हुई थी, धीरे-धीरे वह आशंका प्रगतिशीलता में बदल गई और उन्हें घर के बाहर कार्य करने में एक नवीन दृष्टि प्राप्तु हुई। नवीन चेतना के कारण आज व्यापक क्षेत्रा में कार्य करने से मध्यवर्गीय नारियों की आर्थिक स्वतंत्रता की मांग भी कुछ सीमा तक पूर्ण होने लगी है। आज नारियां किसी भी रुप में पुरुषों के अधीन नहीं रहना चाहती हैं। आज नारी विवाह संबंधी स्वतंत्रता की मांग करने लगी है। वे अपने जीवन में किसी प्रकार का अंकुश नहीं चाहती और अपने स्वतंत्र अस्तित्व को पूर्ण रुप से विकसित करना चाहती है। राजनैतिक चेतना के कारण भी नारियों की स्थिति में आशातीत परिवर्तन हुआ है। उनकी मांगों को राजनीतिक मान्यताएं प्राप्त होने लगी हैं। आज नारी वास्तविकता को समझकर व्यक्ति और समाज के अत्याचार का सामना पूरी शक्ति से करने योग्य अपने को बनाने की चेष्टा में व्यस्त है।

स्त्री-पुरुष संबंधों का परिवर्तित स्वरुप

आधुनिक समाज के परामपरागत ढांचे को बदलने के लिए कटिबद्ध है। स्त्री शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और पुरुष के समान स्वतंत्र रहने की भावना से स्त्री में परम्परागत ढांचे के प्रति विद्रोह का भाव जागृत हुआ है। सामाजिक रुप से दकियानूसी समझे जाने वाले विचारों का वह परित्याग कर रही है। वह पति से किसी भी तरह स्वयं को कम नहीं मानती है। वह अबला शब्द को झुठलाने का प्रयत्न कर रही है। आधुनिक स्त्री और पुरुष में मानसिकता का द्वन्द्व अधिकारों को लेकर भी चल रहा है। समाज में नारी को पुरुष के समान अधिकार एवं स्वतंत्रता तो दे दी है, लेकिन पुरुष वर्ग की मनोस्थिति इसे सहज रुप स्वीकार नहीं कर पा रही है। स्त्री सीमा में ना बंधकर उन्मुक्त जीवन जीना चाहती है। लेकिन पुरुष इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा है। आज की नारी पुरुष से नहीं बल्कि उसकी सामंतवादी मनोवृति से मुक्त होना चाहती है। जिसने उसकी स्थिति को आज भी गुलामी जैसी बना रखी है। आर्थिक क्षेत्रों में नारी पुरुष के समान आत्मनिर्भर है। बाहरी कार्य-क्षेत्रा में नारी पुरुष के समान अधिकारों का प्रयोग कर रही है। नारी ने कानूनी एवं संवैधनिक स्तर पर सुरक्षा और समानता प्राप्त कर ली है। आजकल प्रेम-विवाह करने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। काम-काज, शिक्षा और नौकरी के लिए स्त्रियां पुरुषों के सम्पर्क में आई हैं। साथ-साथ काम करने के कारण एक-दूसरे को समझने व परखने का समय भी मिल जाता है। इसलिए प्रेम-विवाह

का ग्राफ ऊंचा उठ रहा है। अर्थात पुरुष तो पहले ही अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक प्रकार के अधिकारों का प्रयोग बिना किसी भय से कर रहा है।

स्त्री-पुरुष संबंधो का विघटन

आधुनिक युग स्त्री-पुरुष सबंधों के विघटन को कुछ अधिक ही बढ़ावा दे रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात परिस्थितियां इतनी तेजी से परिवर्तित हुई हैं कि समाज और मानव मूल्यों में बड़ी तेजी से विघटन हुआ है। पुरानी आस्थाएँ टूटी। आस्थाओं और विश्वासों में बदलाव आया। जीवन मूल्यों में आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन हुआ। पुराने के टूटने और नये के बनने के बीच का असंतुलन, असंगतियाँ, विकृतियाँ और विरोधभास उत्पन्न हुए जिससे समाज में विघटन की परिस्थितियाँ बढ़ती गई। पुरातन मूल्यों के खण्डहर पर ही नवीन मूल्यों की आधारशिला टिकी हुई होती है। प्रचीन मूल्यों का विकास भी नया रुप धारण करता है। ज्यों-ज्यों सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव आता है त्यों-त्यों पारम्पारिक सामाजिक जीवन मूल्य परम्परागत व्यवस्था के चौखटे असंतुलित एवं अव्यवस्थित स्थिति में हो जाते हैं। परिस्थिति के अनुरुप, मूल्यों, परम्पराओं और मान्यताओं का विकास शुरु हो जाता है। जो मूल्य तत्सामयिक सांचे मे मान्य नहीं हो पाते वे कुछ समय उपरान्त मान्यता प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार यदि समाज में विघटन पैदा न हो तो समाज और जीवन के विकास में विराम चिन्ह लग जाएगा। 'विघटन' एक प्रकार से गति को तीव्रता देता है।''[8]

सांप्रदायिक भेदभाव, देश-विभाजन, बेकारी, आर्थिक विवाद, राजनैतिक सजगता का अभाव, अनुशासनहीनता आदि समस्याओं का स्त्री-पुरुष चेतना पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आजादी के बाद नारी और पुरुष अपने परिवेश के प्रति अध्कि सजग, सुचेत और विद्रोही बने हैं। वे अपने अतीत से संतुष्ट नहीं हैं, भविष्य के प्रति आश्वस्त नहीं हैं और वर्तमान में जो उसने चाहा वह उसे मिला नहीं। इसलिए वे क्षुब्ध और विद्रोही बन गया है। ''आज का मानव अनिश्चय की स्थिति में है। वह यह नहीं निश्चय कर पा रहा कि जो अधभोगे सत्य इसे शाप के रुप में मिले हैं, इन्हें वे स्वीकार करें या अस्वीकार।''[9] आधुनिक सामाजिक परवेश में समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली है। व्यक्ति अहम् और स्वतंत्र्यचेतना ने परम्परागत मूल्यों, आदर्शों, समाजिक मान्यताओं और बंधनों को नकारा है। पुरुष वर्ग की मानसिकता में पर्याप्त परिवर्तन दिखाई देता है। व्यक्ति और समाज की द्वन्द्वमयी स्थिति ने आज जीवन को क्लेशमय बना दिया है। यौन-स्वतंत्रता को उत्तोरत्तर बढ़ावा मिल रहा है। इस क्षेत्र में स्वतंत्रता के आकांक्षी युवक-युवतियों में समाज के प्रति विद्रोह उत्पन्न होता है। फलस्वरुप समाज और व्यक्ति में संघर्ष उत्पन्न होता है। आधुनिक चिंतन और वैज्ञानिक जीवन दृष्टि ने स्त्री-पुरुषों संबंधों में बहुत परिवर्तन ला दिया है। दाम्पत्य जीवन संबंधी परम्परागत मान्यताएं शिथिल होती जा रही हैं। ''अब यह भी स्वीकार्य है कि पति और प्रेमी दो अलग-अलग व्यक्ति हो सकते हैं। अब समाज को इस विषय में आक्रोश दिखाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कृत्रिम प्रजनन और परखनली शिशु उत्पति मानव की नैतिक भावना पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। नई दृष्टि में सेक्स और संतति दो पृथक बातें हैं। सेक्स केवल सेक्स के लिए है, उसका संतति से कोई संबंध नहीं।''[10]

आज नारी परम्परागत मान्यताओं को चुनौती दे रही है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने पर नारी व्यक्ति की तरह ही अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण कर रही है। वह पुरुष से कंधा से कंधा मिलाकर-भिड़वाकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण कर रही है। स्त्री के नए रुप के साथ पुरुष को समायोजित करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। पुरुष को नारी के इस नए रुप से काफी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। आज स्त्री और पुरुष नवीन विचारों के पक्षपाती होते हुए भी प्राचीन मूल्य को पूरी तरह छोड़ नहीं पा रहे हैं। नतीजे के तौर पर द्वन्द्व की स्थिति में जी रहे हैं। टूटते परिवेश और पारिवारिक संबंधों के खोखलेपन के परिचय तथा नारी मुक्ति आंदोलन के नारों का नवीन, अस्थिर सामाजिकता ने स्त्री-पुरुष के संबंधों ने एक ऐसा आयाम दिया है, जिससे परम्पारिक मानव-मूल्य विघटित होने लगे हैं। प्रेम तथा विवाह के सबंधों में स्त्री-पुरुष के लिए समान मान-दंडों की मांग की जाने लगी है। विवाह अब एक धर्मिक अनुष्ठान न रहकर नर-नारी के मध्य समानता के स्तर पर होने वाले समझौते के रुप में प्रतिष्ठित हो रहा है। नारी अधिक सजग हो गई है। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे केवल सजग और आत्मनिर्भर ही नहीं बनाया बल्कि पुरुष से स्पर्धा करने योग्य भी बनाया है।

घर से बाहर निकलकर नारी ने प्रेम, विवाह, पवित्रता की धरणाओं को बदला है। पुरुष का दृष्टिकोण भी आज के परिवेश में पहले जैसा नहीं रहा है। पुरुष अब आत्म केन्द्रित हो गया है। परिवार में उसके प्रभुतत्व को नारी ने तोड़ दिया है। नौकरशाही और राजनीति ने उसके स्वतंत्र चिंतन को धक्का पहुँचाया है। वह नई दिशा, नई आस्था और नए मूल्य चाहता है, जो उसके जीवन की मरुभूमि को हरा-भरा बना दे। पुरानी मान्यताओं को उसने भी कुछ सीमा तक बदला है और नई मान्यताओं को ग्रहण कर रहा है। आज स्त्री-पुरुष संबंध एक विघटन की स्थिति में गुजर रहे हैं। प्राचीन और नवीन मूल्य का द्वन्द्व इन सबंधों पर हावी है। विघटन की समस्या का समाधन भी शिक्षा और समाज के नवीन प्रत्ययों, विवेक और आपसी समझौते में भी लुप्त हैं जिसे परिस्थितियों के अनुकूल सकारात्मक भावनाओं द्वारा बिना किसी भेदभाव से प्रेम-प्यार के आधर पर सुलझाया जा सकता है।

निष्कर्ष

सफल जीवन निर्वाह के लिए घर-परिवार में दो मुख्य बातों का होना अनिवार्य है। घर की आर्थिक दशा का अच्छा होना अर्थात आमदन का नियत रुप से प्राप्त होना और दूसरा घर में शांति एवं न्यायप्रिय की दृष्टि से समानता का वातावरण होना। जब घर के सदस्यों मे किसी विषय पर दौड़ व होड़ हो तो उसमें टकराव की स्थिति पनपने का भय रहता है। स्त्री अब पहले की तरह आत्म समर्पण की अपेक्षा अपने अधिकारों की प्राप्ति में अग्रसर हो रही है और समाज में पुरुष की तरह प्रत्येक स्तर का फल भोग रही है। पुरुष द्वन्द्व की स्थिति का सामना करता हुआ अपने लिए नए उचित मार्ग की खोज में है, ताकि पारिवारिक विघटन से बचा जा सके। स्त्री-पुरुष दोनों को अपने मन की गाँठे खोलकर प्रेम के आधार पर जियो और जीने दो की नीति का अनुसरण करना होगा और विवेक के बल पर विघटन से बचनें मे ही भलाई है।

संदर्भ सूची

[1]कैलाशनाथ शर्मा -पारिवारिक समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या 156
[2]आचार्य चतुरसेन शास्त्री -नर और नारी, पृष्ठ संख्या 15
[3]यास्वल्क्य -बृहदारण्यक, 1/4/3
[4]महादेवी वर्मा -श्रृंखला की कड़ियां, पृष्ठ संख्या 7
[5]ऋगवेद, 10:129:4
[6]कुरान-पुरा-आसफ, 9:14
[7]वही, पृष्ठ संख्या 50
[8]मंजुला गुप्ता -हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, पृष्ठ संख्या 31
[9]लक्ष्मीकांत वर्मा -नए प्रतिमान, पुराने निकष, पृष्ठ संख्या 129
[10]हमेंन्द्र कुमार पानेरी -स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासः मूल्य संक्रमण, पृष्ठ संख्या 137

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,31-35
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 मई 2016

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार

डॉ. निर्मला देवी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *निर्मला देवी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वाड्मय के क्रान्तिदूत भारतरत्न डा0 भीमराव अम्बेडकर अपने समय के सृजन-शिल्पी एवं भविष्य के पथ प्रदर्शक थे जिन्होंने अपने गहन अध्ययन एवं व्यवहारिक अनुभवों के आधार पर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिए समष्टिमूलक आर्थिक-सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वाड्मय के क्रान्तिदूत भारतरत्न डा0 भीमराव अम्बेडकर अपने समय के सृजन-शिल्पी एवं भविष्य के पथ प्रदर्शक थे जिन्होंने अपने गहन अध्ययन एवं व्यवहारिक अनुभवों के आधार पर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिए समष्टिमूलक आर्थिक-सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर एक स्वस्थ-समृद्ध मानवतावादी समाज की स्थापना का संदेश दिया। उन्होंने एक ओर भारतवासियों में स्वाभिमान एवं स्वावलंबन भाव जागृत कर उन्हें मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करने हेतु प्रेरित किया तो दूसरी ओर समाज के दलितों एवं अधिकार वंचितों को शिक्षित, संगठन एवं संघर्षशील बनाकर 'आत्म दीपो भवः' का महामंत्र प्रदान किया।

अन्याय, अत्याचार, शोषण, दमन और उत्पीड़न के खिलाफ उन्होंने जो मोर्चा खोला वह उन्हें विश्व इतिहास में विश्व मानव के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त था। बाबा साहब के जीवन का लक्ष्य दुनिया में कोने-कोने में बसे सभी मनुष्यों को बंधनमुक्त कर उन्हें स्वाधीन करना था। बाबा साहेब भौगोलिक क्षेत्रीय सीमाओं में बंधकर रहने वाले लोगों में से नहीं थे। अतः उनके संदेश की प्रासंगिकता सार्वभौमक है और पृथ्वी पर उनका महत्व सार्वकालिक बना रहेगा जहां मानव-मानव के प्रति अन्यायरत है। बाबा साहेब ने उन तमाम साहित्य का अध्ययन, मनन और चिन्तन किया जिसे दलित वर्ग शताब्दियों से छू भी नहीं सका था। बाबा साहेब ने उन साहित्य में वर्णित चार वर्णों की महत्व, नीति और अन्य बातों को ठीक से समझा

* पूर्व-शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जो साधारण जनमानस को आकर्षित करती हैं तथा जिनकी आड़ में जनता का शोषण किया जाता है। डा0 भीमराव अम्बेडकर आरम्भ से ही वर्ण और जाति व्यवस्था के खिलाफ थे। 1920 में प्रकाशित मराठी पत्रिका 'मूक-नायक' में उन्होनें लिखा था - 'हिन्दूस्तान विषमता की आश्रयस्थली है। हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और एक-एक जाति उसकी एक-एक मंजिल है। विशेष बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है। एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक जाने के लिए उसमें रास्ता नहीं रखा गया है। जिस मंजिल में जो जन्में, चाहे वह कितना ही लायक क्यों न हो, वह ऊपर की मंजिल में नहीं जा सकता और ऊपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे वह कितना भी अपात्र क्यों न हो, उसे नीचे की मंजिल पर ढकेलने की हिम्मत किसी में नहीं है।'

बाबा साहब के विचार उनकी कृतियों में संकलित है। उनकी प्रमुख कृतियां हैं- 'शूद्र कौन?', 'गौतम बुद्ध एण्ड हिज धम्म', 'साम्प्रादियक गुत्थी', 'शूद्र की खोज', 'हिन्दू नारी का उत्थान-पतन', 'व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हेव डन टू दी अनटचेबल्स', 'स्टेटस एण्ड माइनारिटीस' तथा 'पार्टीशन आफ इण्डिया'। डा0 अम्बेडकर के विचारों तथा आन्दोलन से दलितों को नई राह मिली तथा तत्कालिन स्वतंत्रता को भी बल मिला। अम्बेडकर का मूल स्वर दलितों, शोषितों और पीड़ितों के प्रति अन्नाय और अत्याचार को समाप्त करने का स्वर था। बाबा साहेब आजीवन सामाजिक एवं आर्थिक असमानता के विरूद्ध संघर्षरत रहे। वे दलितों के मसीहा थे।

अपनी रचना 'बुद्ध एवं उनका धम्म' में प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'एक मनुष्य का निर्माण उसके मस्तिष्क के विकास के अनुरूप ही होता है।'[1] इसका अर्थ यह है कि एक राष्ट्र अपने मानव स्रोत का जिस स्तर तक विकास कर पाता है उस राष्ट्र का विकास भी उसी अनुपात में एवं उसी स्तर का होता है। इसलिए यह मान्यता कि मनुष्य जन्म से बड़ा होता है कर्म से नहीं, के वे प्रबल विरोधी थे। उनका मानना था कि किसी भी देश में मनुष्य का जीवन निर्माण जन्म से नहीं कर्म से होता है। इस आधार पर वे राष्ट्र की इकाई मनुष्य के सर्वांगिण विकास की वकालत करते थे। उनका मानना था कि 'आदर्श समाज वह है जिसमें सामाजिक स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व का समन्वय हो।'[2] 'मनुष्य तो राजनीतिक या धार्मिक प्राणी होने के पहले एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का धर्म नहीं हो सकता है, मनुष्य की राजनीति नहीं हो सकती है लेकिन मनुष्य का समाज तो होता ही है। क्योंकि समाज के बगैर मनुष्य की सामाजिक परिकल्पना असंभव है।'[3]

डॉ0 अम्बेडकर का सामाजिक चिन्तन वैज्ञानिक एवं तर्क संगत है उनके विचार सामाजिक जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव और तटस्थ विश्लेषण पर आधारित हैं। उन्होंने शिक्षा, सामाजिक ढांचा, धर्म एवं अर्थव्यवस्था के बारे में जो कुछ भी कहा है वह वैज्ञानिक निरीक्षण एवं अनुभव के आधार पर कहा है न कि किसी पूर्वाग्रहवश। किसी भी समाज में ऐसे बहुत कम व्यक्ति होंगे जो पैदा होने की सदी के बाद की सदी तक महत्वपूर्ण बने रहे। भारत में दलितवादी परिप्रेक्ष्य की ऐतिहासिक एवं महाराष्ट्र में महार आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि से स्पष्ट होता है कि जितने भी सुधार किये गए वे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सन्दर्भ में थे। इन सुधारात्मक प्रयासों से दलितों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना का संचार हुआ और उनमें जागरूकता आई। सामाजिक सुधारों के साथ-साथ राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति भी आवश्यक थी। दलितों के राजनैतिक जीवन को आधार देने के लिए डॉ0 अम्बेडकर आगे आये। ये प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दलितों की स्थिति सुधारने के लिए राजनैतिक आयाम के साथ-साथ अन्य आयामों पर भी बल दिया और इस दिशा में प्रयास भी किये। दलितों के उत्थान के सन्दर्भ में डॉ0 अम्बेडकर द्वारा किये गये प्रयासों को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है :

सामाजिक विचार; विश्व या सृष्टि के प्रारम्भ में केवल मानव जाति थी। धीरे-धीरे रंग के आधार पर गौर और श्याम दो वर्ण बनें। जिसके कारण रंग के साथ-साथ सामाजिक भेद स्पष्ट होने लगे। जिससे आगे चलकर तीन चार और पांच वर्णों का विकास हुआ। प्रारम्भ के तीन वर्णों को द्विज वर्ण कहा जाता था और वर्ण परिवर्तन सैद्धान्तिक रूप में सम्भव था। कालान्तर में वर्ण भेद अधिक कठोर हो गए। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के धर्म, जाति, जजमानी व्यवस्था, गांव और संयुक्त परिवार पांच स्तम्भ थे। जो एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित थे और दूसरे को सुरक्षा व शक्ति प्रदान करते थे। अम्बेडकर ने अस्पृश्यता सामाजिक भेद, नारी समाज की अवनति सहित भारतीय समाज के पतन के लिए परम्परात्मक समाज व्यवस्था और शास्त्रीय नियमों को उत्तरदायी ठहराया है। समाज व्यवस्था को निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है जो वर्ण एवं जाति व्यवस्था है :

वर्ण व्यवस्था : यह सभी के विकास के विरूद्ध है अम्बेडकर के अनुसार यह लोगों को निर्जीव, पंगु व लूला बनाकर उन्हें प्रगतिशील उत्तम कार्यो के लिए असमर्थ बना देती हैं। विद्वान शुद्र, शूद्र ही रहता है और मूर्ख ब्राह्मण, ब्राह्मण ही रहता है। यह ऐसा विभाजन है जो जन्मजात

रूढ़ होता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त व्यक्ति के साथ चिपका रहता है और यही वर्ण धर्म बन जाता है। जो व्यवसाय नीच, हीन और कलंकित समझे जाते हैं उन्हें करने वाले नीच समझे जाते हैं। भले ही व्यक्ति कितना ही योग्य हो और अपने परम्परागत व्यवसाय को कितने ही पहले से छोड़ चुका हो फिर भी नीच जाति में जन्म लेने के कारण उसे नीच समझा जाता है और उसके गुणों के अनुरूप सामाजिक सम्मान प्राप्त करने से उसे वंचित रखा जाता है (अम्बेडकर 1980:68-70)।

वर्ण व्यवस्था की जड़ों पर ही आघात की आवश्यकता है। जब तक ये जड़ें तोड़ी नहीं जाएगी, तब तक अस्पृश्यता की मानसिकता समाप्त नहीं हो सकती। अस्पृश्यता और जातिभेद नष्ट करने के लिए शास्त्रों से आधार ढूँढ़ने का प्रयत्न वास्तव में कीचड़ से कीचड़ को साफ करने का हास्यास्पद प्रयत्न है। वर्ण और जाति व्यवस्था की नींव पर हिन्दू समाज की इमारत खड़ी हुई है। इस नींव को खत्म कर समता, बन्धुता और करूणा की नींव पर नई इमारत खड़ी करनी होगी ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था।

जाति व्यवस्था : डॉ0 अम्बेडकर जाति प्रथा का विरोध और अछूतोद्धार का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि ये दोनों व्यवस्थायें हजारों वर्षों से मात्र निजी सुविधाओं के लिए सुविधाभोगियों की व्यवस्थायें है तभी तो वे कहते हैं कि 'यह प्रचलन वर्ण-व्यवस्था को और अधिक दिनों तक कायम रखा गया तो यह भारतीय एकता एवं निरपेक्षता के लिए कैंसर सिद्ध हो सकती है।' उनका कहना था कि 'जो सबसे ज्यादा सताये हुए हैं, उनका संरक्षण आवश्यक है।'' हिन्दू समाज केवल जाति की क्रमबद्धता ही नहीं है, अनेक शत्रु गुटों का एक समूह भी है।'[4] (अम्बेडकर, 56)

जाति व्यवस्था कोई शाश्वत या ईश्वरीय नियम नहीं है। यह स्वार्थी तत्वों द्वारा बनाया गया नियम है जो शक्तिशाली व अधिकार सम्पन्न थे और जो दूसरों पर अपनी दासता थोपने में समर्थ थे। जाति व्यवस्था की जड़ें बहुत गहरी हैं। हिन्दू धर्म की सामाजिक स्थापनाएं जाति व्यवस्था मूल कारण है। इसलिए जाति मात्र सहभोज या इक्के-दूक्के अन्तर्जातीय विवाहों से नहीं टूटेगी। एक कड़वी वस्तु मीठी बन सकती है किन्तु एक जहर को अमृत में नहीं बदला जा सकता। जाति व्यवस्था में सुधार करने की बात ठीक वैसी ही है जैसे की जहर को अमृत में बदलना। इसलिए हिन्दू समाज की रक्षा के लिए जाति व्यवस्था का अन्त किया जाना जरूरी है। हिन्दू समाज अपनी रक्षा करने में तभी समर्थ हो सकेगा जब वह एक जाति विहीन समाज की स्थापना कर सकेगा।

उनके सामाजिक विचारों का केन्द्र बिन्दु 'मनुष्य' है। वे किसी विशिष्ट जाति या वर्ण के विरोध में नहीं थे, वे वर्ण और जाति व्यवस्था के विरोध में थे। वे ब्राह्मण या सवर्ण के विरोध में नहीं थे। एक ऐसी समाज व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे जहाँ मनुष्य के प्रति आदर रखता हो, जहाँ मनुष्य मनुष्य के प्रति प्रेम, बन्धुता और मानवीयता से जुड़ा हो, मनुष्य मनुष्य का शोषण न करता हो। मनुष्य को उसके न्याय का हक दिला देने के लिए वे संघर्षरत थे। ठीक इसी समय इतिहास के गम्भीर अध्ययन से समतावादी समाज रचना के लिए आवश्यक दर्शन और चिन्तन की अभिव्यक्ति भी वे कर रहे थे। मानव जाति एवं विभाजन और कुछ नहीं बल्कि प्रचलित षड्यंत्रमूलक भारतीय वर्ण व्यवस्था का उत्पादन हैं। जब तक भारत में जाति रहेगी, तब तक भारत में अछूत रहेगें। क्योंकि भारतीय वर्ण व्यवस्था की यही व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था की समाप्ति से ही अछूतोद्धार सम्भव है[5] (अम्बेडकर, 1982:503-509)।

राजनैतिक विचार; डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों को क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व देने का सुझाव दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने दलितों के लिए विशेषाधिकार की मांग की। उन्होंने दलित वर्ग की रक्षा के लिए उनकी मूल समस्याओं और वास्तविकताओं से प्रशासन को अवगत कराने के लिए, प्रशासन में दलितों की भागीदारी एवं दलितों की शक्ति तथा योग्यता का लाभ लेने के लिए शासन में प्रतिनिधित्व देने की मांग की। जिसमें समान नागरिकता का अधिकार की मांग भेद-भाव के विरूद्ध संरक्षण, विधान सभाओं में समुचित प्रतिनिधित्व, नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व, अस्पृश्यों की शिक्षा, सफाई, नौकरियों तथा सामाजिक राजनैतिक प्रगति के लिए समुचित व्यवस्था, अस्पृश्यों की देख-भाल के लिए विशेष विभाग का निर्माण, मंत्रीमंडल में अस्पृश्यों के अनिवार्य प्रतिनिधित्व की मांग की।

डॉ0 अम्बेडकर ने अस्पृश्य वर्ग के लिए पृथक-पृथक मताधिकार की मांग की। गांधी जी इससे सहमत नहीं थे उनका कहना था कि अस्पृश्य हिन्दू समाज के अंग है इसलिए पृथक मताधिकार की आवश्यकता नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर का मानना था कि उच्च हिन्दू वर्ण निम्न वर्णो के साथ असमानता का व्यवहार करते हैं, अतः पृथक मताधिकार अस्पृश्यों को उच्च वर्ण के दबाव से मुक्त करेगा। गांधी जी के जेल में आमरण अनशन की घोषणा के बाद डॉ0 अम्बेडकर ने पृथक मताधिकार की मांग छोड़ दिया। डॉ0 अम्बेडकर ने 'इण्डिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी', 'शेड्यूल्ड कास्ट फंडरेसन' बनाया। उन्होंने अनुसूचित जातियों को नौकरियों में आरक्षण और शिक्षा में उन्नति के लिए छात्रवृत्ति और वित्तीय सहायता की मांग की। संविधान निर्माताओं ने इन सभी बातों को ध्यान में रखा और अस्पृश्यों को अनेक संवैधानिक विशेषाधिकार प्राप्त हुए।

धार्मिक विचार; डॉ0 अम्बेडकर कर्म को प्रधानता देते थे। 'प्रचलित हिन्दू धर्म को उन्होंने सुविधाभोगियों का षड्यंत्र कहा है। क्योंकि धर्म आदमी के लिए है न कि आदमी धर्म के लिए'।[6] मनुष्य किसी-न-किसी धर्म से बंधा होती ही है और इस पर उसका कोई वश नहीं रहता है और तदनुसार किसी भी समय मनुष्य अपनी सर्वांगीण तरक्की के लिए अपने पूर्व धर्म को बदल भी सकता है। जबकि 'हिन्दू धर्म में आचारण स्वतंत्रता एवं सहजता नहीं है बल्कि इनमें अन्य लोगों द्वारा लाये गए नियमों को बिना सोचे-समझे पालन करने का विधान है। कानून में विषमता है क्योंकि अलग-अलग व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्था है।[7]'(भीमराव अम्बेडकर, 74-76)

डॉ0 अम्बेडकर ने विश्व के अनेक धर्मों का अध्ययन किया था। धर्म के आधार को स्वीकार भी किया किन्तु उनका स्पष्ट मत है कि धर्म मनुष्य के विकास में एक सीमा तक सहायक है, धर्मान्तरण से या धर्म के आधार पर अमीर या कुलीन नहीं हुआ जा सकता। दुनिया के किसी

भी धर्म में दासता के तत्व नहीं है, अतः मनुष्य को धर्म का दास नहीं होना चाहिए क्योंकि मनुष्य धर्म के लिए नहीं है। व्यक्ति के स्वाभाविक विकास के लिए जिन चीजों की सर्वाधिक जरूरत है, वह है स्वतंत्रता, समानता और सहानुभूति। हिन्दू धर्म के सामाजिक दर्शन में इन तत्वों का नीतान्त अभाव हैं। परम्परागत हिन्दू व्यवस्था में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं हैं। महत्व है चतुर्वर्ण का जो कुछ लोगों को ही शिक्षा व ज्ञानार्जन की अनुमति देता है, शेष को नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान, शस्त्र और सम्पत्ति की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की समाज व्यवस्था की स्थापना धर्म नहीं बल्कि षड़यंत्र है धर्म का कार्य मूलतः व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। डॉ0 अम्बेडकर की दृष्टि में हिन्दू धर्म व्यावहारिक दृष्टि से समानता और भातृत्व पर आधारित होना चाहिए। इसके लिए उसकी मूल मान्यताओं पर आधारित नए धर्म ग्रंथ की रचना करके हिन्दू धर्म को मिशनरी धर्म बनाना होगा। परन्तु हिन्दू धर्म में सुधार होते न देखकर ही उन्होंने अस्पृश्यों को हिन्दू धर्म त्यागने की सलाह दी। अस्पृश्यता से मुक्ति केवल धर्मान्तरण से हो सकता है इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने 1935 में सामूहिक धर्मान्तरण का निश्चय किया था। स्वतंत्रता के उपरान्त समानता के अधिकार सभी जातियों की भांति अस्पृश्यों को भी प्राप्त हो गए थे इससे सार्वजनिक रूप से अस्पृश्यता एवं भेद-भाव समाप्त हो गए थे परन्तु व्यक्तिगत रूप से अस्पृश्यता की धारण मन-मस्तिष्क से न निकल पाने के कारण व्यवहारगत अस्पृश्यता जारी रही।

बौद्ध धर्म के कारण भारत में मानवतावाद का प्रांरभ हुआ। डॉ0 अम्बेडकर बौद्ध धर्म के प्रति विशेष रूचि रखते थे वे बौद्ध धर्म के सिद्धांत एवं दर्शन से प्रभावित थे उनका कहना था कि बौद्ध धर्म नीति पर आधारित है। बुद्ध ने अपने आप को मार्गदाता बताया है। इसके विपरीत कृष्ण ने स्वंय को 'देवों का देव' पैगबंर हजरत मोहम्मद ने स्वंय को 'देवता का दूत' और ईसा ने स्वंय को 'देवपुत्र' कहा है। बौद्ध धर्म में ही दासता से मुक्ति और अस्पृश्यता निवारण का चिरकालीन उपाय हैं। इन्होंने महाबोधि के साथ मिलकर 14 अक्टूबर 1956 को प्रथम 'सामूहिक बौद्ध धर्मातंरण' का आयोजन नागपुर में किया। धर्मातंरण के पूर्व अपनी व्यथा और पीड़ा इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई 'मैनें एक हिन्दू के रूप में जन्म लिया, इसे तो मैं रोक नहीं सकता था लेकिन मैं किसी दूसरे धर्म के अनुयायी के रूप में मर जरूर सकता हूँ' और उन्होंने ऐसा ही कर दिखाया।

आर्थिक विचार; जिस तरह से व्यक्ति के विचार में उसके उस परिवेश जिसमें वह रहता है, उसकी झलक बिम्बित होती है, उसी तरह किसी व्यक्ति विशेष के आर्थिक विचार भी उसके परिवेश, देशकाल एवं परिस्थितियों के अनुरूप ही होते हैं। यह बात भारतीय अर्थशास्त्रियों के साथ भी लागू होती है। आमतौर पर जनतंत्र में शक्तिशाली लोग ही सत्ता में होते हैं। ये नैतिक अथवा जनतांत्रिक कानूनों के दबाव के तहत सामान्य जनता के आर्थिक व अन्य हितों की रक्षा करेगें ऐसा सोचना नासमझी हैं। संसदीय लोकतंत्र की राज्य समाजवादी योजना के तहत एक ओर जनसाधारण की स्वतंत्रता की रक्षा की दृष्टि से सरकार की स्वेच्छावादी नीति पर अंकुश लगता है तो दूसरे आर्थिक संसाधनों पर आधिपत्य रखने वाले लोगों की स्वेच्छाचारी शक्ति को भी सीमित किया जाता है। धर्म, सामाजिक स्थिति और संपत्ति सभी रूप से शक्ति और सत्ता के स्रोत हैं। इसलिए बिना मूलभूत सामाजिक सुधारों को लागू किए बिना आर्थिक सुधारों को लागू करना कठिन होगा। उनके सामाजार्थिक विचारों का सूत्र है 'राष्ट्रीय एवं जनहित वाले उद्योगों को सरकारी संरक्षण में संचालित करना एवं मानवीय संसाधनों को उन्नत एवं कार्य निपुण बनाने के लिए अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण देते हुए उनका विकास हो।'[8] अगर यह सच है कि 'भाग्य के नाम पर विधाता ने इन्सान के पुतले में जान डालते वक्त उसके साथ खिलवाड़ किया हो तो इस धरती पर बसने वाले इन्सान की इन्सानियत का यह तकाजा है कि भाग्य की इन विषमताओं को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा दें, तभी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक दृष्टिकोण एवं नीति को मूर्तरूप प्राप्त हो सकता है।'[9]

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर अछूतोद्धार के लिए जिस भावना से व्याकुल थे वह बहुत हद तक आज तक उसे गलत अर्थ, रूग्ण मानसिकता के दायरे में ही समझने-पढ़ने का प्रयास किया गया है। जिस तरह कुमुदनी कलेवर पर मंडराने वाली तितली को उसके परागकण की खुशबू का भान होता है उसी तरह कठोर वृक्ष छाती को चीरकर अपने लिए घोसला बनाने वाले पक्षी कठफोड़वा को भी काठ की कठोरता का ज्ञान होता है। कठफोड़वा पक्षी ही काठ फोड़कर घोसला बनाने की श्रम साध्यता को प्रतिपादित कर सकता है। यदि कुमुदनी पर मंडराने वाली तितली कठफोड़वा की कसौटी को परिभाषित करने लगे तो निश्चय ही यह उपहासपूर्ण स्थिति होगी। ठिक उसी तरह डॉ0 अम्बेडकर द्वारा अछूतोद्धार के लिए संघर्ष इसलिए किया गया क्योंकि समाज के ठेकेदार वर्गों द्वारा मनुष्य के ही एक वर्ग को अछूत कहकर उन्हें पशुता से भी निम्न स्तर का जीवन जीने के लिए विवश ही नहीं बाध्य भी किया गया था और डॉ0 अम्बेडकर भी उसी अमानवीय वातावरण में जी रहे समाज की उपज थे। स्वभावतः उन्होंने कठफोड़वा पक्षी की तरह इस समाज की व्यथा-गाथा को भोगा और महसूस किया था इसलिए मानवता के आधार पर मानवीय दृष्टिकोण से, राष्ट्रीय हित में वे अकारण, अनाधार, षड्यंत्र एवं शोषण की नीति पर आधारित वर्ण-व्यवस्था से शीघ्र अछूतों के उद्धार के लिए संघर्षरत थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1]डॉ0 अम्बेडकर -*बुद्ध एवं उनका धम्म,* पृष्ठ संख्या 66

[2]*रिपोर्ट आफ दी इण्डियन राउन्ड टेबुल कान्फ्रेंस,* 1930, पृष्ठ संख्या 33

[3]डॉ0 भीमराव अम्बेडकर -*बुद्ध एवं उनका धम्म,* सिद्धार्थ कालेज मुम्बई, 1957, पृष्ठ संख्या 69

[4]डॉ0 अम्बेडकर -बी0 आर0, हिन्दू जाति प्रथा एवं उनके मुक्ति के उपाय, पृष्ठ संख्या 56

[5]डॉ0 अम्बेडकर -*राइटिंग्स एण्ड स्पीच,* भाग-2, 1982, पृष्ठ संख्या 503-509

[6]*अम्बेडकर आन बुद्धिस्ट कनबेन्शन एण्ड इट्स इम्पैक्ट,* दिल्ली, 1990, पृष्ठ संख्या 185

[7]भीमराव अम्बेडकर -*एन्हीलेशन आफ कास्ट इन इण्डिया,* पृष्ठ संख्या 73-74

[8]हेगड़े, वो0 डी0 -डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर के अर्थिक विचार, पृष्ठ संख्या 123-124

[9]डॉ0 भीमराव अम्बेडकर -*स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया,* खण्ड एक।

[10]प्रज्ञाचक्षु, डॉ0 सुकन पासवान -*भारतरत्न डॉ0 भीमराव अम्बेडकर सृष्टि और दृष्टि,* 2002, प्रथम संस्करण अध्याय एक, पृष्ठ संख्या 21, अध्याय दो, पृष्ठ संख्या 32-68

[11]*योजना अप्रैल 1998,* पृष्ठ संख्या 39-40.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,36-39
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2016

पुराणों में श्राद्ध तर्पण की परम्परा

डॉ. बृजेश कुमार द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पुराणों में श्राद्ध तर्पण की परम्परा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *बृजेश कुमार द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पुराणों में संस्कारों का बहुत अधिक महत्व है। ऋषियों ने सोलह संस्कारों का प्रतिपादन किया है जिसका मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है। संस्कारों के माध्यम से मनुष्य द्विज बनता है *संस्कारात् द्विज उच्चयते।* संस्कारों से ही मनुष्य सुसंस्कृत होता है, लेकिन आज मनुष्य अपनी व्यस्ततम जिन्दगी में इन संस्कारों की अवहेलना करता जा रहा है। जिसके कारण उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन्हीं संस्कारों में अतिंम संस्कार मरणोत्तर संस्कार है, जिसमें श्राद्ध तर्पण का विधान है।

श्राद्ध तर्पण केवल एक धार्मिक कृत्य नहीं है। बल्कि पितरों के लिए, परिवार द्वारा उनके प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का भाव रखना है।

श्राद्ध, श्राद्धा से बना है। श्रद्धा पूर्वक किए गए कार्य को श्राद्ध कहते हैं। उपकारी तत्वों के प्रति आदर प्रकट करना, जिन्होंने अपने को किसी प्रकार लाभ पहुँचाया है उनके लिए कृतज्ञ होना श्रद्धालू का आवश्यक कर्तव्य है। ऐसी श्रद्धा हिन्दू धर्म का मेरुदण्ड है। इस श्रद्धा को हटा दिया जाए तो हिन्दू धर्म की सारी महत्ता नष्ट हो जाएगी और वह एक निस्तत्व रिक्त मात्र रह जाएगा।

श्रद्धा हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग है इसलिए श्राद्ध उसका धार्मिक कृत्य है। जब सूर्य कन्या राशि में गोचर करते हैं तो उस गोचर के कृष्ण पक्ष को अर्थात् पूर्णिमा से अमावस्या तक के 16 दिनों की अवधि में पूरे भारत वर्ष में सर्वत्र पितरों की आराधना की जाती है।[1] इन सोलह दिनों में प्रतिदिन श्राद्ध करने का विधान है। श्राद्ध की मूलभूत विवेचना यह है कि प्रेत और पितर के निमित्त उनकी आत्मतृप्ति के लिए तर्पण किया जाता है।

पुराणों में श्राद्ध एवं तर्पण के महत्व का विस्तृत प्रतिपादन किया जाता है।

अग्निपुराण के अनुसार, ''बसंत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुएं देवताओं की ऋतुएं होती हैं। शरद, हेमन्त शिशिर पितरों की ऋतुएं होती हैं। हिन्दी महीनों का एक माह पितरों के लिए एक दिन माना जाता है। पितृ-लोक की दृष्टि से शुक्ल पक्ष की

* पूर्व-शोध छात्र, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अष्टमी से अगली अष्टमी तक पितरों की रात। पितरों के दिन के मध्य में अमावस्या को मध्याह्न में श्राद्ध कर्म करने का विधान है।[2]

गरुड़ पुराण में तर्पण को छः भागों में विभक्त किया गया है[3]; 1. देव-तर्पण, 2. ऋषि-तर्पण, 3. दिव्य मानव-तर्पण, 4. दिव्य-पितृ-तर्पण, 5. यम-तर्पण, 6. मनुष्य-पितृ-तर्पण।

श्राद्ध के प्रकार

प्रधानतया श्राद्ध दो प्रकार के होते हैं- प्रथम; एकोद्विष्ट श्राद्ध एवं द्वितीय; पार्वण श्राद्ध।

परन्तु सामान्यतः चार श्राद्धों को प्रधानता दी गई है। वे है;[4] 1. एकोद्विष्ट, 2. पार्वण, 3. संपिण्डीकरण, 4. नांदीमुख।

1. *एकोद्विष्ट श्राद्ध :* अस्थि संचयन के पहले तीन श्राद्ध बताए गए हैं। पहला जिस स्थान पर मृत्यु हुई हो, दूसरा उस मार्ग में जहां विश्राम कराया गया हो। तथा तीसरा अस्थि संचयन के स्थान पर श्राद्ध किया जाता है। इसके अलावा मृत्यु के प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम्, नवम् तथा ग्यारवें दिन भी एक-एक श्राद्ध किया जाता है। यह एकोद्विष्ट श्राद्ध विश्वेदेवो से रहित होता है; उसमें अग्निकरण की क्रिया नहीं की जाती।
2. *पार्वण श्राद्ध :* एक वर्ष के पश्चात् किया जाने वाला श्राद्ध जिसके पितामह जीवित हों वह पहले पिता का नाम लेकर फिर पितामह का उच्चारण कर श्राद्ध करे उसे पार्वण श्राद्ध कहते हैं।
3. *सपिण्डीकरण श्राद्ध :* एक वर्ष के पश्चात् किया जानेवाला श्राद्ध सपिण्डीकरण श्राद्ध कहलाता है। यदि वर्ष के भीतर कोई विवाह आदि आभ्युदायिक कार्य होने वाला हो तो वर्ष होने के पहले भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है। इसमें भी विश्वेदेवों का आह्वान नहीं होता है।
4. *नांदीमुख श्राद्ध :* नांदीमुख श्राद्ध वह श्राद्ध है जिसमें नित्य श्राद्ध- तर्पण एवं पंचमहायज्ञ आदि के रुप से किया जाता है।

श्राद्ध-तर्पण के लिए उपयुक्त समय

नारद पुराण में श्राद्ध करने के लिए उपयुक्त समय बताया गया है। मन्वादि तिथि, युगादि, तिथि, संक्रान्तिकाल, व्यातीपात गजच्छया, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण इन सभी समयों में पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध करने के लिए श्राद्ध करना चाहिए। पुण्य तीर्थ, पुण्य मंदिर, श्राद्ध योग्य ब्राह्मण तथा श्राद्ध के योग्य उत्तर पदार्थ प्राप्त होने पर विद्वान पुरुषों को बिना पर्व के भी श्राद्ध करना चाहिए।[5]

अमावस्या को विशेष रुप से श्राद्ध करने का विधान है। उसका कारण यह कि सूर्य की सहस्रों किरणों में जो सबसे प्रमुख है उसी का नाम 'अमा' है। उस 'अमा' नामक स्थान प्रधान किरण के ही तेज से सूर्य देव तीनों लोकों को प्राकाशित करते हैं। उसी अमा तिथि विशेष को चन्द्र देव निवास करते हैं, इसलिए उसका नाम 'अवामस्या' है। यही कारण है कि अमावस्या को प्रत्येक धार्मिक कार्य के लिए अक्षय फल देने वाली बताया गया है।

श्राद्ध-तर्पण की विधियाँ

श्राद्ध'- कर्म का प्रारंभ अस्थि विसर्जन के साथ ही प्रांरभ हो जाता है कुछ लोग नित्य प्रातः तर्पण एवं सायंकाल मृतक द्वारा त्याग के स्थान पर या पीपल के पेड़ के नीचे दीपक जलाने का क्रम चलाते रहते हैं।

गरुड़ पुराण में वर्णन है कि उत्तर कर्मों द्वारा उपार्जित धन से पितरों का श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिए। छल, कपट, चोरी और ठगी से कमाए हुए धन से कदापि श्राद्ध नहीं करना चाहिए। श्राद्ध कर्म के योग्य श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य परायण, ब्राह्मणों को निमंत्रित करें, उनके अभाव में ब्रह्मज्ञान परायण, अग्निहोत्री, वेद विद्या में निपुण गृहस्थ ब्रह्मणों को निमंत्रित करें जिनका कोई अंग विकल न हो, जो निरोग, आहार पर संयम रखने वाले तथा पवित्र हो, ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध योग्य बताये गये हैं।[6]

श्राद्ध -कर्म प्रारंभ करने से पहले ब्राह्मणों को अभिवादन करके सत्यभाव से उनके चरणों को स्पर्श करते हुए प्रणाम करें और विश्वेदेव श्राद्ध के लिए दो ब्राह्मणों को निमंत्रण दे[7] और दाहिना घुटना पृथ्वी पर टेक निन्म मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। *आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। भक्त्याहूता मया चैव त्वं चापि व्रतमाभ्भव।।*

इसके पश्चात् दोपहर बीतने पर कुतुप संज्ञक मुहूर्त में स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण कर देवताओं और पितरों का तर्पण करने के पश्चात् श्राद्ध प्रारम्भ करना चाहिए।

पुराणों के अनुसार मनुष्य के पास श्राद्ध करने को कुछ भी ना हो तो केवल शाक से श्रद्धापूर्वक श्राद्ध कर सकता है[8]। सभी वस्तुओं के अभाव में वन में जाकर अपनी दोनों भुजाओं को उठाकर कहना चाहिए कि मेरे पास श्राद्ध के योग्य न धन है और नहीं दूसरी वस्तु। अतः मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ और वे मेरी भक्ति से ही तृप्ति लाभ करें।[9]

श्राद्ध देने वाले का कर्त्तव्य है कि उसकी भावना सदा पितृगण की प्रीति को प्राप्त करने की होनी चाहिए। तर्पण के विधान के लिए मनुस्मृति में वर्णित है। तर्पण जल में दूध, जौ, चावल, चंदन तथा गंगाजल डालकर करना चाहिए।[10] तर्पण में प्रधानतया जल का ही प्रयोग होता है। कुशाओं के सहारे जल की छोटी सी अंजली मंत्रोच्चारणपूर्वक करने से पितर तृप्त हो जाते हैं। किन्तु इस प्रक्रिया के साथ आवश्यक श्रद्धा, कृतज्ञता, सदभावना, प्रेम, शुभकामना का समन्वय अवश्य होना चाहिए। यदि श्रद्धांजलि इन भावनाओ के साथ की गई है तो तर्पण का उद्देश्य पूरा हो जाएगा और पितरों को तृप्ति अवश्य मिलेगी।

श्राद्ध- तर्पण के नियम

स्कन्द पुराण[11] के अनुसार :

1. जल अग्नि की विधि से भ्रष्ट और प्रव्रज्या नाश से जो च्युत हो, उनको इन्द्रियों की विशुद्धि के लिए धेनु का दान और वृष का दान करना चाहिए।
2. जो बारह वर्ष से कम हो, और चार वर्ष से अधिक हो उनका प्रायश्चित उसकी माता को करना चाहिए।
3. जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसे दोबारा भोजन नहीं करना चाहिए।
4. ब्राह्मण के चरण का जो जल भूमि पर गिरता है। उसे उन सगोत्र पुरुष की तृप्ति होती है जो पुत्रहीन रह कर मृत्यु को प्राप्त हुआ है।
5. श्राद्ध कर्म जो मंत्र काल और विधि आदि की त्रुटि रह जाती है उसकी पूर्ति पर्याप्त दक्षिणा देने से होती है। अतः श्राद्धकर्ता को दक्षिणा सहित श्राद्ध करना चाहिए।
6. श्राद्ध भोजन अथवा श्राद्ध दान करके युद्ध व कलह नहीं करना चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है।
7. श्राद्धकर्ता को भोजन दिन में ही कर लेना चाहिए। सूर्यास्त के बाद भोजन करने पर श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है।

विधान में मानव प्रज्ञा की सृष्टि करते समय सबसे पहले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। इसलिए वे श्राद्ध में उत्तम आरम्भ करने से पहले विश्वेदेवों की पूजा की जाती है जो अतुल्य फल प्राप्त करता है। श्राद्ध का अनुष्ठान करता है उसे अतुल्य फल प्राप्त करता है। श्राद्ध सम्पन्न हो जाने पर श्राद्धकर्ता को भोजन कराकर सबसे अंत मे मौन भाव से श्राद्धकर्ता को भोजन करना चाहिए।

महत्व

जो मनुष्य अपने वंशजों को कुछ भी दान नहीं करते, वे वे भूख प्यास से व्याकुल और दुःखी देखे जाते हैं। मनुष्य आदि पिता-पितामह के उद्देश्य से तथा माता-प्रमातामह के उद्देश्य से श्राद्ध तर्पण करे तो उसके पिता और माता से लेकर सभी पितर तृप्त हो जायेंगे। जिस अन्य से मनुष्य अपने पितरों की तृप्ति के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को तृप्त करता है उसी से भक्ति पूर्वक पितरों के निमित्त पिण्डदान करता है उससे सनातन तृप्ति की प्राप्त होती है।[12]

अमावस्या

अमावस्या के दिन वंशजों द्वारा श्राद्ध और पिण्ड पाकर पितरों को एक मास तक तृप्ति बनी रहती है। इसलिए अमावस्या में श्राद्ध तर्पण का विशेष महत्व हैं। सूर्यदेव के कन्या राशि पर स्थित रहते समय आश्विन कृष्ण पक्ष में जो मनुष्य मृत तिथि

पर पितरों के लिए श्राद्ध करता है उनके उस श्राद्ध से पितरों को एक वर्ष तक तृप्ति बनी रहती है। इहलोक एवं परलोक में उन्नति चाहने वाले मनुष्य को विशेषतया गया तीर्थ में जाकर श्राद्ध करना चाहिए। जो मनुष्य अमावस्या के दिन श्राद्ध नहीं करता उसके पिता भूख प्यास से व्याकुल वायु रुप में आकर घर के दरवाजे पर खड़े रहते हैं। अतः जब तक कन्या और तुला पर सूर्य रहते हैं। तब तक अमावस्या के दिन सदा पितरों के लिए श्राद्ध करना चाहिए। पितरों की तृप्ति के लिए तथा अनुदान पाने के लिए श्राद्ध करना चाहिए।

वर्तमान समय में श्राद्ध तर्पण की अत्यन्त आवश्यकता है। हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार मृत्यु के बाद भी दिवंगत आत्मा का घर के प्रति मोह-ममता का भाव बना ही रहता है। यह मोह-ममता उसकी भावी प्रकृति के लिए बाधक है। मरणोत्तर काल में यही मोह जीवन के लिए बन्धनयुक्त एवं कष्टकारक होता है। उसका मानसिक-शोक-संताप इसी प्रपंच के कारण बढ़ता जाता है। इसी के कारण कई बार उसे भूत प्रेत आदि की योनियों में रहना है। सद्गति एवं प्रगति को यही मौन दबाये रहता है। आगे बढ़ने का अवसर ही नहीं मिलता यही वास्तविक भव-बंधन है। इससे छुटकारा भी अपने जीवनकाल में प्राप्त कर लेना चाहिए ताकि अपने भविष्य निर्माण तथा कर्तव्य पालन के लिए भी कुछ किया जा सके। मृत्यु के बाद परिवार के व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उसे इस आवश्यक मोह-ममता के कु-संस्कारों से छुड़ाने के लिए मरणोत्तर संस्कार का प्रबंध करे। जिस प्रकार पुराने वस्त्र को उतारकर या किसी वस्तु को बेचकर उस वस्तु से लगाव खत्म हो जाता है। उसी प्रकार जीव के लिए यह उचित है कि वह पहले परिवार की ममता छोड़े। मृत्यु के बाद जीव का मोह परिवार से तब तक बना रहता है, जब तक उसका श्राद्ध कर्म नहीं हो जाता। अतः मरणोत्तर श्राद्ध तर्पण जीवन की अतृप्त तथा मोहग्रस्त आत्मा की तृप्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पितरों की तृप्ति के लिए सदा अन्न और जल का दान करना चाहिए। श्राद्ध द्वारा तृप्त किए गए पितर मनुष्य को मनोवांछित भोग तथा उन्हें सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करते हैं

भारतीय संस्कृति में अनेक धार्मिक कृत्यों का महत्व है। उन्हीं में से एक विशेष धार्मिक कृत्य श्राद्ध-तर्पण का मूल आधार अपनी कृतज्ञता और अपनी आत्मीयता की सात्विक वृत्तियों को जाग्रत रखना संसार की सुख शांति के लिए नितान्त आवश्यक है। स्वर्गीय आत्मा की शांति के लिए शुभ कार्य करने चाहिए। उनके गुणों को ग्रहण करे और भूलों से सीख लेनी चाहिए। विवेक और श्रद्धा से परिपूर्ण सत्कार्य करना ही सच्चा श्राद्ध हैं तथा जिन कार्यों से पितर तृप्त हो वही सच्चा तर्पण है इसलिए कहा गया है कि श्रद्धा से ही श्राद्ध होता है।

सन्दर्भ

[1]*शतपथ ब्राह्मण,* 2-6-9

[2]*अग्नि पुराण,* 2-3

[3]*गरुड़ पुराण,* 2-4

[4]*प्राणाचार्य अरोग्यम्,* अक्टूबर, 2005 पृष्ठ संख्या 56

[5]*नारद पुराण,* 1-4

[6]*गरुण पुराण,* 1-3

[7]*मत्स्य पुराण,* 1-5

[8]*ब्रह्म पुराण,* 1-13

[9]*विष्णु पुराण,* 2-6

[10]*मनुस्मृति,* 2-4-6

[11]*स्कन्द पुराण,* 2-8

[12]*शिव पुराण,* 2-6

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,40-45
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 31 मई 2016

भारतीय संस्कृति में रामायण का योगदान

सुधा श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय संस्कृति में रामायण का योगदान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुधा श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय संस्कृति की स्वरूप कल्पना के ऊपर वाल्मीकीय रामायण का महनीय प्रभाव है। भारतीय संस्कृति एवं रामायण दोनों ही अन्योन्यालङ्कार के उदाहरण हैं। भारतीय संस्कृति ही रामायण है तथा रामायण ही भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति न तो एकान्ततः भोगाश्रित है न वह मुख्यतया त्याग प्रधान है। प्रत्युत वह भोग तथा त्याग दोनों के मञ्जुल सामरस्य पर आधारित होने वाली संस्कृति है। वाल्मीकीय रामायण ने उसके रूप को परिष्कृत करने में विशेष योगदान दिया है।

वाल्मीकीय रामायण का आरम्भ महर्षि नारद तथा वाल्मीकि के संवाद से होता है। नारद के सामने वाल्मीकि ने आदर्श मानव के चरित को सुनने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने शरीर तथा मस्तिष्क के महनीय गुणों से युक्त व्यक्ति की जिज्ञासा की। मुख्य प्रश्न था, *चारित्रेण च कोऽयुक्तः सर्वभूतेषु कोऽहितः। विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।*[1]

चरित्र से युक्त व्यक्ति की ही जिज्ञासा वाल्मीकि को थी। इसके उत्तर में नारद कहने लगे, *मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।*[2]

नारद ने आदर्श नर का ही चरित्र-चित्रण किया। मानव मूल्यों के अंकन में, जीवन को उदात्त बनाने की कला में, सत्यं तथा शिवं के साथ सुन्दरम् के मधुमय सामञ्जस्य में वाल्मीकि की वाणी विश्व के सामने एक भव्य आदर्श उपस्थित कर जनता के हृदय को सदा स्पन्दित करती आयी है तथा भविष्य में भी स्पन्दित करती रहेगी- यह चिरन्तन सत्य है।

भारतीय संस्कृति के सामने पिता, पुत्र, भ्राता, भार्या, राजा तथा प्रजा के आदर्शों को प्रस्तुत करने का कार्य यह रामायण शताब्दियों से करता आया है। मार्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के चरित में इन आदर्शों का पुञ्ज उपस्थित कर रामायण ने हमारे समक्ष एक विलक्षण आदर्श चरित को प्रस्तुत किया है जिसकी समता कहीं नहीं मिलती। भारतीय संस्कृति मानव जीवन में चरित्र के ऊपर सर्वाधिक निष्ठा रखती है। रामायण का कथन है कि चरित्र ही मानव के उस सच्चे स्वरूप की पहचान है जिससे यह

* शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ज्ञात होता है कि वह अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है या नीच कुल में। वह सच्चा वीर है अथवा वीरता की केवल डींग हांकता है। वह शुचि है अथवा अशुचि है, *कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्। चारित्र्यमेव व्याख्याति शुचि वा यदि वाऽशुचिम्।*[3]

वाल्मीकि की दृष्टि में मानव जीवन में सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है चरित्र एवं इसी चरित्र से युक्त व्यक्ति की खोज करने पर नारद जी ने वाल्मीकि को इक्ष्वाकुवंशीय श्री रामचन्द्र को सबसे श्रेष्ठ मानव बतलाया। राम के आदर्श गुणों तथा तज्ञता का वर्णन करना कठिन है, क्योंकि राम तो किसी तरह किये गये एक ही उपकार से स्पष्ट हो जाते हैं तथा अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमें से एक का भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। उपकारों को भूलने वाला हो तो ऐसा हो, *कथंञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न समरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तयां।*[4]

उनके क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोघ हैं। अपने अपराधों के कारण हनन-योग व्यक्तियों को बिना मारे वह नहीं रहते तथा अनपरध्य के ऊपर क्रोध के कारण कभी उनकी आँख भी लाल नहीं होती, *नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन्। हन्त्येव नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति।*[5]

राम का उदारशील चरित्र कितना मधुर है, *दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात् किञ्चिदप्रियम्। अपि जीवितहेतोर्वा रामःसत्यपराक्रमः*[6] अर्थात् वे सदा दान देते हैं, कभी दूसरे से प्रतिगृह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते, सत्यपराक्रम राम अपने प्राण बचाने के लिए भी इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते।

राम पूर्ण मानव हैं। वे आदर्श पति हैं। सीता के प्रति राम का सन्ताप चतुर्मुखी है। स्त्री (अबला) के नाश होने से वे कारुण्य से सन्तप्त हैं। आश्रित के नाश से दया (आनृशंस्य) के कारण, पत्नी (यज्ञ में सहधर्मचारिणी) के नाश में शोक के कारण तथा प्रिया (प्रेमपात्री) के नाश से प्रेम (मदन) के कारण वे सन्तप्त हो रहे हैं।

स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः। पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च।[7]

राम के भ्रातृ-प्रेम का परिचय हमें तब मिलता है, जब वे लक्ष्मण को शक्ति लगने पर अपने अनूठे हृद्गत भाव की अभिव्यक्ति करते हैं, *शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता। न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः।*[8]

अर्थात् संसार में ढूढने पर सीता के समान स्त्री मिल सकती है, किन्तु लक्ष्मण जैसा, भाई, सहायक एवं चतुर योद्धा नहीं मिल सकता। राम की यह उक्ति अनूठी है राम की यह। शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही शरणागति प्रदान करना राम के चरित्र का मर्मस्थल है, परन्तु उनकी उदात्तता का वास्तविक परिचय रावण-वध के प्रसंग में परिलक्षित होता है। राम की यह उदारता आज तो कल्पना के भी बाहर है, *मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्। क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येषो यथा तव।*[9]

हे विभीषण! वैर का अन्त होता है शत्रु के मरण से। रावण की मृत्यु के साथ ही साथ हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा। अतः उसका दाह संस्कार आदि क्रिया करो। अर्थात् हे विभीषण। वैर तभी तक रहता है, जब तक मनुष्य जीवित रहता है। मर जाने पर यह जिस तरह तुम्हारा बन्धु है, उसी तरह मेरा भी है। इसलिए तुम जाकर इसका प्रेत कर्म सम्पन्न करो। 'ममाप्येशो यथा तव' राम के चरित्र की उदात्तता का चरम उत्कर्ष है।

इसी भांति जनकनन्दिनी सीता के विमल चरित्र को विश्व के सामने प्रस्तुत कर रामायण ने भारतीय संस्कृति की उदात्त भावना को उच्चतम बनाया है। वह अयोध्या के विलासी जीवन का तिरस्कार कर अपने पतिदेव राम के साथ कठोर जंगल का जीवन स्वीकार करती है (परन्तु पति के सेवाव्रत से स्वयं को वंचित नहीं रखती)। पातिव्रत की वह पराकाष्ठा सीता में है जिसका दर्शन तो अलग रहा, अपितु जिसकी अन्यत्र कल्पना भी दुर्लभ है। लंका के अधिपति रावण की प्रार्थना को ठुकराती हुई वह कहती है, *चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्। रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।*[10]

1. इस निन्दनीय निशाचर रावण से प्रेम की बात तो दूर रही मैं तो इसे अपने बाये पैर से भी नहीं छू सकती। हनुमान् ने लंका से लौटते समय बहुत आग्रह किया कि सीता उनकी पीठ पर बैठकर उसी दिन चलें- राम से तुरन्त भेंट हो जाय; परन्तु सीता का यह उत्तर भारतीय संस्कृति के सामने एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत कर गया, जिसका अन्यत्र अनुमान करना भी दुर्लभ है। वे कहती हैं कि मैं राम को छोड़कर किसी अन्य के शरीर को स्वतः छूने की इच्छा भी नहीं करती, छूने की बात तो न्यारी ही ठहरी। *भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादानयस्य वानरं। नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम।*[11]

जनकतनया सीता के शील सौन्दर्य की यह ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय को शीतलता तथा शान्ति प्रदान नहीं करती। जानकी का चरित्र भारतीय ललना के महान आदर्श का प्रतीक है। रावण के बार-बार प्रार्थना करने पर भी सीता ने जो अवहेलनासूचक वचन कहा, वह भारतीय नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करता रहेगा।

रावण की मृत्यु के अनन्तर राम ने सीता के चरित्र की विशुद्ध सामान्य जनता के सामने प्रकट करने के लिए अनेक कटु-वचन कहे। उन वचनों के उत्तर में सीता के वचन इतने मर्मस्पर्शी हैं कि आलोचक का हृदय आनन्दातिरेक से गद्गद हो जाता है।

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता। लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।। अपेदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्। मम वृतं च वृत्तज्ञं बहु ते न पुरस्कृतम्।। न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः। मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्।।[12] अर्थात् मेरे चरित्र पर लाञ्छन लगाना कथमपि उचित नहीं है। मेरे निर्बल अंश को पकड़कर आपने आगे किया है; परन्तु मेरे सबल अंश को पीठ पीछे ढकेल दिया है। नारी का दुर्बल अंश है उसका स्त्रीत्व तथा उसका सबल अंश है उसका पत्नीत्व एवं पातिव्रत। नर-शार्दूल! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। परन्तु क्रोध के आवेश में आपका यह कहना साधारण मनुष्यों के समान है। आपने मेरे स्त्रीत्व को तो दोषारोपण करने के निमित्त आगे किया है परन्तु आपने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि बालकपन में ही आपने मेरा पाणिग्रहण किया, आपकी मैं शास्त्रानुमोदित धर्मपत्नी हूँ। मैं आपकी भक्ति करती हूँ तथा मेरा स्वभाव निश्छल एवं पवित्र है। आश्चर्य है कि आप जैसे नर-शार्दूल ने मेरे स्वभाव को, भक्ति को तथा पाणिग्रहण को पीछे ढकेल कर केवल स्त्रीत्व को आगे रखा है।

कितनी ओजस्विता भरी है इन सीधे-सादे निष्कपट शब्दों में। अनादृता भारतीय ललना का यह हृदयोद्गार कितना हृदय वेधक है। सुनते ही सहृदय मनुष्य की आँखों में सहानुभूति के आँसू छलक पड़ते हैं।

आदर्श पुत्र की कल्पना भारतीय संस्कृति को रामायण ने सिखलाई है। काम के द्वारा विचलित मानस होने वाले पिता की भी आज्ञा का पालन रामचन्द्र ने जिस दृढ़ता के साथ किया, वह अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखता। जाबालि ने राम को दशरथ के चरित्र में अनेक त्रुटियाँ दिखलाकर न्यायमार्ग से विचलित करने हेतु जी तोड़ प्रयास किया; परन्तु राम उस मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं हुए। सत्य प्रतिज्ञा के जय का उद्घोष करते हुए उन्होंने अपना निर्णय बहुत ही निर्भयता से कह सुनाया है, *नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोऽन्वितः। सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः।। सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये पद्मां प्रतिष्ठितः। सन्नमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।*[13] अर्थात् लोभ, मोह तथा अज्ञान के वश में होकर आपके द्वारा प्रेरणा पाकर भी मैं सत्य के सेतु को न तोडूंगा, क्योंकि मैं सत्य-पालन की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। सच तो यह है कि सत्य ही ईश्वर है। अच्छे लोगों द्वारा आचरित धर्म सत्य में ही स्थित है। सारे संसार का मूल सत्य अर्थात् ईश्वर ही है। अतएव सत्य से बढ़कर अन्य कोई भी पद नहीं है।

आदर्श पिता की साकार मूर्ति भारतीय संस्कृति महाराज दशरथ के रूप में साक्षात् करती है। पुत्र के वियोग में पिता का प्राणत्याग यह तो अनहोनी सी घटना है परन्तु दशरथ ने अपने जीवन में इसी विलक्षण वस्तु को प्रस्तुत कर विश्व के सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया। उन्होंने अपने प्रतिश्रुत वचन के पालने के लिए कठोर हृदय कर राम को वनवास दे दिया तथा भरत को अपना युवराज बनाया, परन्तु भरत के उस भ्रातृ-प्रेम की सराहना किन शब्दों में की जा सकती है जिसने माता-पिता दोनों के द्वारा दिये गये अतुल साम्राज्य को अस्वीकार कर वनवासी भाई का जीवन स्वयं बिताया।

भारतीय संस्कृति गृहस्थ जीवन को आश्रित कर पनपती है तथा इस जीवन के समस्त आदर्शों को प्रस्तुत करने वाला रामायण, उसे आधार बनाकर अपना अस्तित्व रखने के लिए तथा अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आधार भूमि प्रदान करता है। राम राज्य की भव्य कल्पना रामायण की ही देन है। आदर्श राजा के शासन काल में ही इसका दर्शन हो सकता है। आज भी हमारे लिये 'राम राज्य' की स्थापना राजनीतिक लक्ष्य है। इस राम राज्य के स्वरूप को वाल्मीकि के शब्दों में समझने की आवश्यकता है, *प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः। निरामयो ह्यरोगाश्च दुर्भिक्षाभयवर्जितः।। न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्। नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।। न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः। न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा। न चापि क्षुद्भयंतत्र न तसकरभयं तथा। नगराणि च राष्ट्राणि धन-धान्यं युतानि च।।*[14] अर्थात् राम राज्य की समस्त प्रजा व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्राप्ति से प्रहृष्ट रहती है तथा किसी प्रकार के क्षोभ के अभाव में वह मुदित

रहती है। वह सन्तुष्ट, पुष्ट तथा सुन्दर धार्मिक आचरण वाली होती है। वह मानसिक पीड़ा तथा दैहिकव्याधि इन दोनों से रहित होती है। उसे अकाल का भय नहीं रहता तथा न ही भूख एवं चोर का भय। नगर एवं राष्ट्र धन-धान्य से युक्त रहते हैं। किसी भी प्रकार के रोग का भय रामराज्य में नहीं होता। पिता के जीवित रहते पुत्र का मरण कभी नहीं होता। स्त्रियाँ सर्वदा सम्पन्न चरित्र वाली तथा पतिव्रता रहती हैं।

ब्रह्म को साक्षात् करने वाले, अनुष्टुप् छन्द के प्रथम अवतार के कारणभूत आदि कवि वाल्मीकि की परिणत प्रज्ञा का फल है यह वाल्मीकि रामायण। मानव समाज, मानव व्यवहार तथा मानव सद्गुणों की पराकाष्ठा का पूर्ण निर्वाह हम राम के जीवन में पाते हैं। राम शारीरिक सुषमा तथा मानसिक सौन्दर्य दोनों के जीते जागते प्रतीक हैं। राम के सौन्दर्य के वर्णन में वाल्मीकि कह रहे हैं, *न हि तस्मान्मनः कश्चिश्चक्षुषी वा नरोत्तमात्। नरः शकनोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तोऽपि राघवे।।*[15]

रामचन्द्र की अलौकिक सुषमा का अनुमान इसी घटना से लगाया जा सकता है कि राम के अत्यन्त दूर चले जाने पर भी मनुष्य न तो अपने मन को उनसे खींच सकता था तथा न अपने दोनों नेत्रों को। जो राम को नहीं देखता तथा जिसे राम नहीं देखते, दोनों ही संसार में निन्दा के पात्र बनते हैं। इतना ही नहीं, उनकी अपनी आत्मा भी उनकी निन्दा करती है। श्री रामचन्द्र के दिव्य गुणों की यह झांकी कितनी मधुर तथा सुन्दर है, *स तु नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते। उद्यमानोऽपि पुरुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते।। शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः। कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि।। बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः। वीर्यवान् न च वीर्येणमहता स्वेनविस्मितः।। न चानृतकथो विद्वान् विज्ञानां प्रतिपूजकः। अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते।।*[16] अर्थात् वे शान्तचित्त राम सदा मधुर वाणी बोलते थे तथा किसी की कटुवचनों का उत्तर भी स्नेह पूर्ण देते थे। उनका मन सदा उनके अधीन रहता था। वे सदा चरित्रवान् शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा अस्त्रविद्या के भिज्ञ लोगों से शास्त्र सम्बन्धी वार्तालाप किया करते थे। वे बड़े ही बुद्धिमान, मधुरभाषी, शीघ्र उत्तर देने वाले एवं प्रियभाषणशील थे। यद्यपि वे असाधारण बलवान् थे, किन्तु उन्हें अपने बल पर कदापि गर्व नहीं होता था। वे सत्यवक्ता, विद्वान् एवं गुरुजनों के उपासक थे। उनकी प्रजा सदा उन्हें प्यार करती थी तथा वे प्रजा को सर्वदा प्रसन्न रखते थे। तात्पर्य राम कभी मिथ्यावादी नहीं थे एक बार जो कह दिया वही सत्य था। वह वचन उनके जीवन का व्रत बन जाता था। प्रजाओं के साथ उनका सम्बन्ध बहुत मधुर था। आसक्ति उभयमार्गी थी। राम का अनुराग प्रजाओं के लिए वैसा ही था जैसा उनका अपने लिये था। इन गुणों का अनुशीलन किसी भी व्यक्ति को मानवता के ऊँचे पद पर पहुँचाने तथा प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए मृदुभाषी होना सत्यवचन होना तो आवश्यक है ही, परन्तु राम में वाल्मीकि ने एक विलक्षण गुण की सत्ता बतलाई है वह है उपकार की स्मृति तथा अपकार की विस्मृति। हम लोग इतने व्यवहार में कृपण हैं कि अपने उपकारी के प्रति कभी भी प्रेम भावना नहीं रखना चाहते, परन्तु रामचन्द्र के उदार हृदय, विशालचित्त तथा महनीय आशय का पूर्ण परिचय उसी एक वाक्य से चलता है जिसे उन्होंने सीता की सुधि लाने वाले अलौकिक उपकार करने वाले हनुमान् जी से कहा था। जनकनन्दिनी का सन्देश सुनकर राम ने यह वचन कहा था, *मध्येव जीर्णतां यातुं यत् त्वयोपकृतं हरे। नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाङ्क्षति।।*[17]

हे कपिकुलनन्दन! आपने जो मेरे साथ उपकार किया है वह मेरे में ही जीर्ण हो जाय, बाहर अभिव्यक्ति का कोई अवसर ही न आवे क्योंकि प्रत्युपकार करने वाला व्यक्ति अपने उपकारी के लिये विपत्ति की कामना करता है जिससे उसे अपने प्रत्युपकार के लिए उचित अवसर मिले। कितनी उदात्त है वाल्मीकि की यह सूक्ति तथा कितना उदात्त है राम का हृदय! वह कभी सोचते भी नहीं कि हनुमान् के ऊपर विपत्ति आवे जिससे उनके साथ प्रत्युपकार करने का कभी अवसर मिले।

आढ्योवापि दरिद्रो वा दुखितः सुखितोऽपि वा। निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्यः परमा गतिः।। धनत्यागः सुखत्यागो देहत्यागोऽपि वा पुनः। वयस्यार्थे प्रवर्तन्ते स्नेहं दृष्ट्वा तथाविधम्।।[18] अर्थात् मित्र धनी हो या निर्धन, दुखी हो या दोषी, अन्त में मित्र की गति मित्र ही होता है। इसी कारण यदि मित्र अपने पर प्रबलस्नेह देखता है तो मित्र के लिए वह धनत्याग, सुखत्याग एवं देशत्याग भी कर देता है।

कितने मार्मिक वचन हैं, हृदय की एक-एक तार को तरंगत कर देते हैं। मित्र धर्म का पूर्ण निर्वाह करने का आदर्श तो रामायण ने ही भारतीय संस्कृति को सिखाया है।

राम एवं सीता का निर्मल चरित्र वाल्मीकि की कोमल काव्य-प्रतिभा का मनोरम निदर्शन है। रामायण हमारा जातीय महा-काव्य है। वह भारतीय हृदय का उच्छ्वास है। यह मानव जीवन राम दर्शन के बिना निरर्थक है। रामदर्शन उभय अर्थ में राम कर्तृक दर्शन (राम के द्वारा देखा जाना) तथा राम कर्मक दर्शन राम जिसको नहीं देखते वह तो लोक में निन्दित ही हैं तथा जो व्यक्ति राम को नहीं देखता उसका जीवन भी निन्दित ही है, क्योंकि उसा अन्तःकरण स्वयं उसकी निन्दा करने लगता है, *यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति। निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हति।।*[19]

राम क्षात्र धर्म के साकार विग्रह हैं। भारतवर्ष का क्षत्रियत्व राम के रोम-रोम में व्याप्त हो रहा है। ऋषियों के विशेष आग्रह करने पर राम राक्षसों को मारने की विकट प्रतिज्ञा करते हैं। सीता क्षत्रियधर्म के सेवन से बुद्धि के मलिन होने की बात सुनाकर उन्हें इस कार्य से विरत करना चाहती है, *तदार्य कलुषा बुद्धिर्जायते शास्त्रसेवनात्। पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षात्राधर्मं चरिष्यसि।।*[20]

परन्तु राम इस प्रेम उपालम्भ का तिरस्कार कर निर्भयता पूर्ण क्षत्रियत्व के आदर्श को प्रकट करते हैं, *क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।।*[21] अर्थात् क्षत्रियों के द्वारा धनुष धारण करने की यही आवश्यकता है कि पीड़ितों का शब्द ही कहीं न हो। जगत् की रक्षा का भार धनुर्धारी क्षत्रियों के ऊपर सर्वदा रहता है।

वाल्मीकि आर्यधर्म के रहस्य का उद्घाटन करते हैं, जब वे यह कहते हैं कि आर्यजीवन धर्मबन्ध से बँधा हुआ है। मानव भारतीय संस्कृति के अनुसार स्वतन्त्र प्राणी तो अवश्य है, परन्तु समग्र मानव एक दूसरे से धर्मसम्बन्ध में बंधकर एक दूसरे के हित चिन्तन में लगे हैं तथा अपने निर्दिष्ट नैतिक मार्ग से एक पग भी नहीं गिरते। भरत अपने शुद्ध भावों की सफाई देते हुए कह रहे हैं कि, *न मे विकांक्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्। यदि रामस्य नापेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा।।*[22]

तुम जैसी बुरे विचारों वाली माँ को मैं सदा के लिए त्याग देता, किन्तु इसी कारण त्यागने का साहस नहीं होता कि राम तुम्हें भी माता की तरह मानते हैं, अर्थात् धर्मबन्धन के कारण ही मैं वध करने योग्य भी पापाचारिणीमाता को मार नहीं सकता।

वाल्मीकि समग्र राष्ट्र के हितचिन्तक कवि हैं। राष्ट्र का केन्द्र है राजा। भारतीय राजा पाश्चात्य राजाओं के समान प्रजाओं की इच्छाओं का दलन करने वाला स्वेच्छाचारी नरपति नहीं होता; प्रत्युत वह प्रजाओं का रंजक उनका हितचिन्तक तथा राष्ट्र का उन्नायक होता है। इस प्रसंग में 'अराजक जनपद' की दुरावस्था का वर्णन पढ़कर वाल्मीकि की मनोवृत्ति का हम अनुमान लगा सकते हैं। अयोध्याकाण्ड के 67 वें सर्ग का 'नाराजके जनपदे' वाला लोकगायन भारतीय राजनीति के सिद्धान्तों का प्रकाशक एक महनीय वस्तु है। राजा राष्ट्र के धर्म तथा सत्य का उद्भव स्थल है।[23] इसीलिए उसके अभाव में राष्ट्र का कोई भी कल्याण सम्पन्न नहीं हो सकता है, न कोई कल्याण कल्पित हो सकता है।

वाल्मीकि भारतीय साहित्य के हृदय के ही प्रकाशक आदि कवि नहीं है, अपितु वे भारतीय संस्कृति के संस्कारक मनीषी भी हैं। कमनीय काव्यलता उनके रामायण के पदों में स्वतः भ्रमण करती है तथा भारत की भव्य संस्कृति इनके पात्रों के द्वारा अपनी मनोरम झांकी दिखलाती है। इसीलिए कविता कल्पद्रुम के कमनीय कोकिल रूपी वाल्मीकि का कूजन किसे आनन्द विभोर नहीं करता, *कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम।।*[24]

निष्कर्ष यह है कि रामायण का उपदेश भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। रामायण के अनुशीलन तथा तदनुसार आचरण ने ही भारतीय संस्कृति को इतना उदात्त तथा गौरवमयी बनाया है।

सन्दर्भ

[1]*वाल्मीकि रामायण,* बालकाण्ड, सर्ग-1, श्लोक-3
[2]*वाल्मीकि रामायण,* बालकाण्ड, सर्ग-1, श्लोक-7
[3]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-109, श्लोक-4
[4]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-1, श्लोक-11
[5]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-2, श्लोक- 45-46
[6]*वाल्मीकि रामायण,* किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग-3, श्लोक-36

[7]*वाल्मीकि रामायण,* सुन्दरकाण्ड, सर्ग-15, श्लोक-50
[8]*वाल्मीकि रामायण,* युद्धकाण्ड, सर्ग-49, श्लोक-6
[9]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-112, श्लोक-26
[10]*वाल्मीकि रामायण,* सुन्दरकाण्ड, सर्ग-26, श्लोक-8
[11]*वाल्मीकि रामायण,* सुन्दरकाण्ड, सर्ग-37, श्लोक-62
[12]*वाल्मीकि रामायण,* युद्धकाण्ड, सर्ग-119, श्लोक- 14-15-16
[13]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-109, श्लोक-17
[14]*वाल्मीकि रामायण,* बालकाण्ड, सर्ग-2, श्लोक-90 से 93 पर्यन्त
[15]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-17, श्लोक- 13-14
[16]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-1, श्लोक-10 एवं 12 से 14 पर्यन्त
[17]*वाल्मीकि रामायण,* युद्धकाण्ड, सर्ग-1, श्लोक-14
[18]*वाल्मीकि रामायण,* किष्किन्धा काण्ड, सर्ग-8, श्लोक- 8-9
[19]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-17, श्लोक-14
[20]*वाल्मीकि रामायण,* अरण्यकाण्ड, सर्ग-9, श्लोक-28
[21]*वाल्मीकि रामायण,* अरण्यकाण्ड, सर्ग-10, श्लोक-3
[22]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-174, श्लोक-18
[23]*वाल्मीकि रामायण,* अयोध्याकाण्ड, सर्ग-67, श्लोक- 8 से 38 पर्यन्त
[24]*वाल्मीकि रामायण,* पृष्ठ संख्या 2, पंक्ति-5

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,46-52
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2016

दलित स्त्री विमर्श : संघर्ष एवं उत्कर्ष

शिल्पी जायसवाल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *दलित स्त्री विमर्श : संघर्ष एवं उत्कर्ष* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शिल्पी जायसवाल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव व धार्मिक धर्मग्रन्थों के कारण दलित महिलाओं को दमन व संघर्ष का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वे आधारभूत सुविधाओं से वंचित रह जाती हैं, किंतु इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान द्वारा संवैधानिक संरक्षण प्रदान किये जाने से दलित महिलाएं प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हैं। प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य दलित महिलाओं के वंचन से विकास की ओर जाने वाले विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालना है।

कुंजीशब्द : Gender, मनुस्मृति, दलित महिलायें, डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर, भारतीय संविधान

Gender एक सामान्य अवधारणा है जो कि उस सामाजिक भूमिका, व्यवहार, प्रक्रियाओं और विशेषताओं का उल्लेख करता है जो कि विशेषतया पुरूष व महिलाओं के लिए उचित ठहराया गया है। Gender मुख्यतया दो प्रकार के लिंगों की चर्चा करता है- अर्थात् पुरूष एवं महिला। जैविक रूप से दोनों के ही विभिन्न भूमिका होती है। भारतीय संदर्भ में महिलाओं की भूमिका घर के प्रति जिम्मेदारियों के प्रतिपादन करने से सम्बन्धित होती है तो पुरूषों की भूमिका धन अर्जित करने के संदर्भ में होती है। इन सभी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति कमजोर व वंचित रहती है।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

भारत में लैंगिक भेदभाव कोई नवीन घटना नहीं है बल्कि यह प्राचीन काल से एक प्रथा के रूप में चला आ रहा है। इस समाज में महिलायें प्रत्येक प्रकार के भेदभाव का सामना करती है जिसके परिणामस्वरूप वे आधारभूत सुविधाओं, जैसे शिक्षा

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : shilpijaiswal94@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से वंचित रह जाती है।[1] उन पर कई सारे प्रतिबंध भी लगाये गये हैं, जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय-9 के श्लोक-3 में वर्णित है कि *पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।* अर्थात् बाल्यावस्था में स्त्री की रक्षा पिता करता है, यौवनावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करता है। वह सदा (किसी न किसी के) अधीन रहती है क्योंकि वह स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।[2] इसके अतिरिक्त स्त्रियों की स्थिति को निम्न करने के संदर्भ में मनस्मृति के पंचम अध्याय के श्लोक-150 में वर्णन किया गया है कि *बाला वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता। न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि।।* अर्थात् स्त्री चाहे बालिका हो, युवती हो या वृद्धावस्था में हो, उसे अपने घर में कभी स्वयं कोई कार्य अपनी इच्छा से नहीं करना चाहिए।[3] मनु के इन शब्दों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समयावधि में महिलाओं की प्रस्थिति क्या रही होगी। यद्यपि वर्तमान समय तक कई शताब्दियाँ बीत चुकी है, काफी कुछ परिवर्तित हो चुका है, तकनीकियाँ विकसित हो चुकी है, वैश्वीकरण का युग आ चुका है, किंतु यदि कोई स्थिति परिवर्तित नहीं हुई है तो वह महिलाओं की स्थिति है।[4] नारी विविध रूपों में सृष्टिकर्ता की महान रचना है किंतु वे हमेशा पुरूषों द्वारा उपेक्षित की जाती है। सीमोन द बुआ का यह कहना है कि महिला जन्म नहीं लेती वरन् बना दी जाती है।[5] ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो'' कहने वाला समाज ही नारी को अपनी दासी समझता है और इसी विचारधारा के कारण वह नारी का, चाहे वह किसी भी वर्ण या जाति की क्यों ना हो, शोषण करता है। सवर्ण स्त्रियाँ भी इस शोषण व उत्पीड़न से अछूती नहीं है, इन परिस्थितियों में दलित महिलाओं को दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि एक तो वह नारी होती है दूसरा दलित। अक्सर देखने में आता है कि दलित समाज की नारी ही यौन शोषण की अत्यधिक शिकार होती है। सवर्ण समाज ने जहाँ मनुवादी व्यवस्था के चलते उसके छोटी जाति के होने के कारण उसे न तो कभी इंसान समझा और न मानवाधिकारों का अधिकारी।[6]

भारतीय समाज में दलित महिलाओं की स्थिति

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य दलित महिलाओं के उस परिस्थिति का वर्णन करना है जिनमें वे दमन, संघर्ष और अत्याचार का सामना प्रतिदिन करती है। दलित महिलाओं को इन अभावों का सामना गरीबी, आर्थिक प्रस्थिति या शिक्षा के अभाव के कारणवश नहीं करना पड़ता बल्कि ये तो उच्च वर्ग द्वारा किये गये शोषण व अत्याचार का परिणाम होता है, जिसे हिन्दू धर्म ग्रन्थों द्वारा वैधता प्रदान की गयी है।[7] जैसा कि भगवत् गीता में अध्याय-9 के श्लोक-32 में वर्णित किया गया है कि- शूद्र, वैश्य और महिलाएं एक ही श्रेणी में अर्थात् पाप योनि में उत्पन्न होते हैं।[8]

प्राचीन भारत में (3200-2500 ई0पू0) जब जाति व्यवस्था विद्यमान नहीं थी, उस समय में महिलाएं, पुरूषों की अपेक्षा शिक्षा व विचारशक्ति में श्रेष्ठ स्थिति में थी। उनकी इच्छानुसार ही उनका विवाह होता था, वह अपनी इच्छानुसार धार्मिक प्रक्रियाओं में उपस्थित रहती थी, युवा विधवाओं का पुनर्विवाह प्रचलन में था, किंतु जब हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण प्रारम्भ हुआ, जिनमें मनुस्मृति, अथर्ववेद, विष्णुस्मृति इत्यादि जैसे अन्य धर्मग्रन्थ सम्मिलित थे, इनका ब्राह्मणों द्वारा कठोरता के साथ अनुपालन करने से समाज में पुरूषों एवं महिलाओं के मध्य असमानता उत्पन्न होने लगी। डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर ने, जो कि भारतीय संविधान के निर्माता है, अपने लेख "The Rise and fall of Hindu Women" में इस बात को स्पष्ट किया है कि हिन्दू धार्मिक ग्रन्थ ही वह कारण है जिसके कारणवश भारत में महिलाएं कठिनाइयों का सामना कर रही है।[9] उन्होंने अपने इस लेख में इस बात को स्पष्ट किया है कि हिंदू नारी के पतन के लिए हिन्दू धर्म ही सबसे बड़ा कारण है। फिर वह हिन्दू नारी सवर्ण हो या अवर्ण।[10] मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों ने जाति व्यवस्था द्वारा व्यक्तियों के मध्य विभाजन किया और पुरूष व महिलाओं के मध्य असमानता को प्रोत्साहित किया।[11] भारतीय नारी का सर्वाधिक शोषित हिस्सा दलित नारी है। यदि इनके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखा जाये जो यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में आर्यों द्वारा युद्ध में जीती हुई एवं पराजित द्रविड़ महिलाओं को दासियों के रूप में रखा जाने लगा। यदि उपलब्ध पुराणों में दलित महिलाओं की स्थिति का अवलोकन किया जाये तो बहुत से पुराणों में देवदासी प्रथा का उल्लेख मिलता है।[12] वैदिक धर्मग्रन्थों में देवदासी प्रथा, जिसे Temple Prostitution के नाम से भी जाना जाता है, उचित ठहराया गया। इस प्रथा को उच्च हिन्दू जाति द्वारा भी समर्थन प्रदान हुआ और यह प्रथा भारत के कुछ भागों में आज भी विद्यमान है। 1992 में आयी Human Right Watch Report में

यह स्पष्ट किया गया कि लगभग 50,000 लड़कियाँ प्रतिवर्ष हिन्दू संगठनों द्वारा खरीदी जाती हैं, जिन्हें बाद में देवदासी बनाया जाता है। इन लड़कियों को ''भगवान की सेविका'' की संज्ञा दी जाती है व इनका शारीरिक शोषण किया जाता है।[13] 1026 में जब महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को लूटा तो उसमें 500 देवदासियां थी, तंजोर मंदिर में 400 देवदासियां थी। अन्याय पर आधारित मनुवादी समाज व्यवस्था में दलित नारी की स्थिति और भी विकट हो गयी। दलित समाज में नारी की स्थिति और भी दयनीय रही, चूंकि उसे दलित पुरूषों के ही दमन का नहीं वरन् सवर्ण पुरूषों के दमन का भी शिकार होना पड़ता था। दलित समाज अर्थात् समाज के चौथे वर्ण शूद्र समाज को मनु ने पहले ही मानवाधिकारों से वंचित कर दिया था, इस कारण वे सवर्ण पुरूषों द्वारा दलित महिलाओं के दमन का विरोध भी नहीं कर पाते थे।[14] मनुस्मृति के नियम व अन्य वैदिक धर्मग्रन्थों ने उन सभी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक व व्यक्तिगत मार्गों को अवरूद्ध कर दिया जिसके माध्यम से दलित महिलाएं उन्नति कर सकती थी। आज के इस आधुनिक समय में भी दलित महिलाओं का शोषण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति राष्ट्रीय आयोग 2000 के अनुसार भारतीय सरकार के विधानों के बावजूद 75 प्रतिशत दलित बालिकाओं को प्राथमिक स्कूल छोड़ना पड़ता है।

दलित महिलाओं के शिक्षा के निम्न स्तर पर जाने के निम्न कारण हैं; (1) शैक्षिक स्रोतों का अभाव विशेषतया ग्रामीण इलाकों में। (2) स्कूल व कॉलेजों का निजीकरण, (3) अत्यधिक गरीबी, जिसके कारणवश दलित निजी स्कूलों के फीस का खर्च वहन करने में असमर्थ रहते हैं। (4) शिक्षित लड़कियों के संदर्भ में दहेज की बढ़ती माँग, (5) उच्च जाति के छात्रों व शिक्षकों द्वारा दलितों को अपमानित करना।

परिणामस्वरूप हम यह देखते हैं कि दलित महिलाओं के शिक्षा का प्रतिशत काफी कम पाया जाता है।[15]

डॉ0 अम्बेडकर : दलित वर्ग के पथ-प्रदर्शक

दलित महिलाएं वर्तमान में डॉ0 अम्बेडकर से काफी प्रेरित है। दलित महिलाओं का सामाजिक संघर्ष सर्वप्रथम पारिवारिक संघर्ष से जुड़ा होता है। यहाँ तक कि दलित वर्ग के पुरूषों की मनोवृत्ति विकसित नहीं हुई है। दलित महिला तभी सशक्त हो सकती है जब तक कि उन्हें स्वयं के परिवार का समर्थन व सहयोग प्राप्त नहीं होता। दलितों की उन्नति के संदर्भ में राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्दसरस्वती, महात्मा गाँधी तथा भीमराव अम्बेडकर का नाम उल्लेखनीय है जो कि दलितों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व शैक्षिक स्थिति को सदृढ़ करने में प्रयासरत थे।

वे अम्बेडकर ही थे जिन्होंने शोषित वर्ग को जागृत किया। अम्बेडकर को आधुनिक मनु की भी संज्ञा दी गयी है क्योंकि उन्हें भारत के दलित वर्ग, जो कि भेदभाव व अत्याचार से पीड़ित है, का उद्धारक माना गया है। आधुनिक भारत में महामानव ज्योतिबा फुले से लेकर डॉ0 अम्बेडकर तक सभी ने दलित नारी के उत्थान के लिए, उनमें शिक्षा के प्रति अभिरूचि पैदा करने के लिए, उनमें अपने अधिकारों के प्रति सजगता लाने के लिए, उनमें अपने अस्तित्व की चेतना जगाने के लिए हर तरह के प्रयास किए और आज भी उनकी प्रेरणा से संपूर्ण भारत में दलित नारी मुक्ति के विभिन्न आंदोलन संचालित किए जा रहे हैं, विभिन्न प्रकार के उपक्रम चलाए जा रहे हैं।[16] दलित आंदोलन की मुक्ति की मुहिम में स्त्री की मुक्ति सबसे पहले हैं क्योंकि परिवार की धुरी होने के कारण वह समाज के विकास व प्रगति का आधार है। डॉ0 अम्बेडकर के चिंतन में दलित आंदोलन ने इसे अच्छी तरह समझा है कि स्त्री की उपेक्षा करके या उसे दबाए रखकर कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता है, कम से कम दलित समाज तो बिल्कुल भी नहीं। यह तभी हो सकता है जब वह अपने ही पति और परिवार की उपेक्षा, अपमान व उत्पीड़न से मुक्त हो।[17] ''दलित समाज ने कितनी प्रगति की है, इसे मैं दलित स्त्री की प्रगति से तौलता हूँ।'' डॉ0 अम्बेडकर का यह कथन दलित महिलाओं की सशक्तिकरण से सम्बन्धित है। डॉ0 अम्बेडकर के संपूर्ण जीवन दर्शन पर बात करें तो यह अतिशयोक्तिपूर्ण तथ्य नहीं माना जा सकता है कि स्त्री और दलित स्त्री, उनके व्यक्तित्व और उनके दर्शन का अमिट अंग है। डॉ0 अम्बेडकर की पारिवारिक जीवन की चर्चा करें तो मां के न होने के कारण उनका पालन पोषण उनकी बुआ ने किया अतः पारिवारिक जीवन में बहनों और बुआ के प्रेम ने बालक भीमराव को हमेशा स्त्रियों का मददगार बनाने में मदद की।[18]

डॉ0 अम्बेडकर ने नारी को उस बंधन से मुक्त किया, जिसका वर्णन मनुस्मृति में किया गया है कि नारी को खर्च करने पर भी प्रतिबंध है। इस प्रकार हिन्दू नारी पूर्णरूपेण अपने पति पर आश्रित बना दी जाती थी, परन्तु डॉ0 अम्बेडकर ने इस संदर्भ में इस कु-रीति को दूर करने हेतु हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, (जो हिन्दू कोडबिल का एक भाग है) के द्वारा नारी को सम्पत्ति सम्बन्धी पूर्ण अधिकार दे दिए हैं। इस अधिनियम में सम्पत्ति के विषय में पुरूष और स्त्री में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा गया है। इस पश्चात् यदि मनुस्मृति के 9वें अध्याय के श्लोक-3 की बात की जाये जिसमें वर्णित है कि स्त्रियों की बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र रक्षा करता है, स्त्रियां कभी स्वतंत्रता योग्य नहीं है तो इस संदर्भ में डॉ0 अम्बेडकर के दृष्टिकोण को देखें तो उन्होंने इस काले कानून को जड़ से समाप्त करने की प्रतिज्ञा ली और पुरूष तथा स्त्री को समान अधिकार देने वाले विधान की रचना की। भारत में वर्तमान विधि संहिता को देखा जाये तो उसके अन्तर्गत स्त्री और पुरूष में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया है। जो मौलिक अधिकार पुरूषों को प्राप्त है, वही समान रूप से स्त्रियों के लिए भी है।[19] डॉ0 अम्बेडकर की मान्यता थी कि सामाजिक क्रांति में नारी को भी पुरूष वर्ग की सहयोगी बनना चाहिए। बाबा साहब ने दलितोद्धार मुहिम की शुरूआत 20 जुलाई 1924 को बंबई में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना से की। इस सभा का उद्देश्य अस्पृश्यता निवारण आंदोलन को आगे बढ़ाते हुए दलित बस्तियों में स्कूलों तथा छात्रालयों की स्थापना करना था।[20] अम्बेडकर ने नारी को वो प्रतिष्ठा दी है, जो पुरूषों को प्राप्त था। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ मनु ने नारी को विषम परिस्थितियों में छोड़ा था तो वहीं डॉ0 अम्बेडकर ने नारियों को इस विषम परिस्थितियों से मुक्त कर भारतीय संविधान के माध्यम से समानता प्रदान की है।[21] स्वतंत्र भारत के संविधान में संविधान निर्माता डॉ0 भीमराव अम्बेकर जी ने भारतीय समाज व्यवस्था में सुधार लाने के लिए अनेक कानून बनाये हैं जो नारी के अस्तित्वहीन जीवन को महत्व प्रदान करते हैं। कानून निर्माण से नारी समाज को जो सुविधाएँ और विकास के अवसर मिले हैं, वे सब डॉ0 अम्बेडकर की देन है। उन्होंने नारी अधिकार और सम्मान को बहुत महत्वपूर्ण माना। वे जानते थे कि केवल आर्थिक सुदृढ़ता से दलितों का उद्धार नहीं हो सकता। अतः कानून के रूप में स्थाई रूप से उन्हें अधिकार दिलाकर वे दलित नारी को उनकी दीन-हीन दशा से मुक्त करके उन्हें कानूनी रूप से अधिकार सम्पन्न बनाना चाहते थे।[22]

संवैधानिक प्रावधान तथा दलित महिलाओं हेतु संरक्षण की व्यवस्था

दलित महिलाओं के संरक्षण हेतु डॉ0 अम्बेडकर ने संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था की है जिसमें परिणामस्वरूप हम देख सकते हैं कि दलितों व दलित महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।

न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व भारतीय संविधान की मूलभूत सिद्धान्त है। भारतीय संविधान सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, समान स्थिति, समान अवसर, न्यायिक समानता, विचारों की स्वतंत्रता, विश्वास, व्यवसाय, संगठन की स्थापना इत्यादि अधिकार प्रदान करता है। हमारा संविधान दलितों के सामाजिक भेदभाव व आर्थिक अन्याय को दूर करने हेतु प्रतिबद्ध है। कुछ ऐसे संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था भारतीय संविधान में की गई है जो उन्हें संरक्षण प्रदान करता है और उनकी सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति में सुधार करने के संदर्भ में प्रतिबद्ध है। ऐसे महत्वपूर्ण प्रावधान निम्नलिखित है :

अनुच्छेद 15 :

(भाग 1) राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी कि आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
(भाग 2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर :

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या
(ख) पूर्णतः या आंशिक राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।
(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से नहीं रोकेगी।
(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद-29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबन्ध करने से निवारित नहीं करेगी।[23]

भारतीय संविधान के साथ-साथ हम यह देखते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इसी प्रकार की उपबन्ध की व्यवस्था की गयी है।

महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव का निषेध (Elimination of Discrimination Against Women (CEDAW)) पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय का भारतीय सरकार द्वारा समर्थन किया गया। इस अभिसमय के अनुच्छेद-4.1 के द्वारा राज्य को यह निर्देशित किया गया कि वह ''अल्पकालिक विशिष्ट मानक'' को अनुमति प्रदान करे जिसका उद्देश्य पुरूष व महिलाओं के मध्य वास्तविक समानता को बढ़ाना है[24] इसके साथ ही हम यह देखते हैं कि भारतीय संविधान में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के संदर्भ में अनुच्छेद-16 भी महत्वपूर्ण है। अनुच्छेद-16 का उपबन्ध यह कहता है कि, ''कोई नागरिक केवल धर्म, मूलबंध, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में अपात्र नहीं होगा या उससे विभेद नहीं किया जायेगा।''

इसके साथ ही इसी अनुच्छेद के उपबन्ध-4 में यह व्यवस्था की गयी है कि, ''राज्य पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है या पदों के आरक्षण के लिए उपबन्ध कर सकती है।

ऐसा उन लोगों को सामाजिक-आर्थिक समानता प्रदान करने के लिए है, जो घाटे में है।''

इसके साथ ही अनुच्छेद-17 भी दलितों को संरक्षण प्रदान करता है।

''अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। ''अस्पृश्यता'' से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

संसद को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह विधि द्वारा इस अपराध के लिए दंड विहित करे (अनुच्छेद-35)। इस शक्ति के प्रयोग में संसद अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम-1955 अधिनियमित किया था। इसका संशोधन और पुनः नामकरण होकर अब यह (1976 से) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम-1955 हो गया है।[25]

उपर्युक्त उपबन्धों के साथ ही साथ अनुच्छेद-44 की भी व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद-44 के अन्तर्गत ''नागरिकों के लिए एक समान नागरी विधि संहिता'' का प्रावधान किया गया है। इसके द्वारा भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान कानून संहिता का लाभ देने के लिए प्रयत्नशील रहेगा। इसके आधार पर एक समान कानून संहिता लागू होने पर सभी को कानून के समक्ष एक समान माना जायेगा, धन, जाति और पद के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। स्त्री व पुरूष के लिए भी एक समान कानून लागू होने पर उनके बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। इस तरह संविधान समानता का अधिकार प्रदान करता है। इसके साथ ही अनुच्छेद-46 की भी व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद-46, ''अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।'' इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य जनता के दुर्बल कमजोर वर्गों के विशेषतया अनुसूचित जातियों-जनजातियों के शिक्षा और आर्थिक हित संबंधी हितों की विशेष सावधानी ने अभिवृद्धि करेगा। सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा। इस तरह भारतीय संविधान कमजोर वर्गों के हितों के साथ सामान्य जनहित की भावना से परिपूर्ण है। संविधान मूलतः जाति व्यवस्था, आर्थिक शोषण, असमानता, कमजोर वर्ग के स्त्री-पुरूषों के उत्पीड़न, अस्पृश्यता का निषेध करता है।[26]

इस प्रकार भारतीय समाज की विषमतावादी, लिंगभेद पर आधारित समाज व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए डॉ0 अम्बेडकर ने अपने विचार और बुद्धि से समाज व्यवस्था को नया रूप दे दिया है। भारतीय संविधान में स्त्रियों को समता, स्वतंत्रता, समान सुविधाओं से जुड़े अनेक अधिकार देने के बाद भी डॉ0 अम्बेडकर ने ''हिन्दू कोड बिल'' का प्रारूप बनाया। इसमें महिलाओं के लिए अनेक प्रकार के अधिकारों का प्रावधान था।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित महिलाओं के सुखमय जीवन और सुखद भविष्य के लिए आवश्यक है कि वे डॉ0 अम्बेडकर द्वारा सुझाए गए मूल मंत्र- ''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।'' को अपने जीवन में धारण करें। संतोषजनक बात यह है कि भारतीय संविधान के कारण मनुस्मृति की गलत धारणाएं अब दूर हो रही है। दलित पुरूष और दलित स्त्रियों को ज्योतिराव फुले, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों को अपनाना चाहिए। बुद्ध ने स्त्री को पुरूष से श्रेष्ठ माना है इसलिए उनके सिद्धान्त एवं विचारों को अपनाना उचित होगा, उनका मानना था दलित वर्ग

का यदि कोई सुधारक हो सकता है तो वह स्वयं दलित ही हो सकता है। यदि दलित स्त्री अपना नेतृत्व स्वयं करना चाहती है तो यह दलित समाज के लिए अच्छे संकेत है लेकिन अपनी अस्मिता की यह लड़ाई दलित पुरूषों का विरोध करके या सारे दलित पुरूषों को स्त्री विरोधी मानकर नहीं लड़ी जा सकती। दलित महिलाओं को ईमानदार सोच और व्यवहार वाले पुरूषों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए, उनसे सहयोग लेना चाहिए। इसके साथ ही यह स्पष्ट है कि महिलाओं विशेषकर दलित महिलाओं की उन्नति एवं संरक्षण के लिए जो प्रावधान भारतीय संविधान में किया है उससे भी दलित महिलाओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। किन्तु इन सब के बावजूद भी आवश्यकता है कि समाज के सवर्ण समाज की संकुचित विचारधारा स्वस्थ हो व समाज में सभी वर्गों के मध्य सौहार्द्र उत्पन्न हो।

संदर्भ-सूची

[1]ANDREY SHASHTRI, "*Gender Inequality and Women Discrimination*". Pp. – 27-28 stable URL – http/www. iosrjournals.org/iosr-jhss/paper/vol19_issue11/…7/E0191172730.pdf

[2]सुरेन्द्रनाथ सक्सेना (2009) -*''मनुस्मृति''*, अनु प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 347

[3]वही, पृष्ठ संख्या 214

[4]ANDREY SHASTRI, "*Gender Inequality and Women Discrimination*." P – 28 stable URL-www. iosrjournals. org/iosr-jhss/paper/vol19_issue11/…7/E0191172730.pdf

[5]डॉ0 ज्ञान प्रकाश गौतम (2011) -*''दलित महिला : सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण''* कला प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 10

[6]ज्ञानेन्द्र रावत (2006) -*''औरत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'',* विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 127

[7]SONIA MAHEY, "*The status of Dalit Women in India's Caste Based System*" pp. 149 stable URL http//www. roundfableindia.co.in/index.php?...com…dalit-women-in-india's)caste-based-system&catid=126&Itemid=133

[8]*भगवत गीता,* 9/32

[9] SONIA MAHEY, "*The status of Dalit Women in India's Caste Based System*" pp. 149 stable URL http// www. roundfableindia.co.in/index.php?...com…dalit-women-in-india's)caste-based-system&catid=126&Itemid= 133

[10]डॉ0 मंजू सुमन (2004) -*''दलित नारी :एक विमर्श'',* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 106

[11]SONIA MAHEY, "*The status of Dalit Women in India's Caste Based System*" p. 150 stable URL http //www. roundfableindia.co.in/index.php?...com…dalit-women-in-india's) caste-based-system&catid=126&Itemid = 133

[12]डॉ0 ज्ञान प्रकाश गौतम -*''दलित महिला : सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण''* कला प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृष्ठ संख्या 16-17

[13]SONIA MAHEY, "*The status of Dalit Women in India's Caste Based System*" pp. 152-53 stable URL http//www.roundfableindia.co.in/index.php?...com…dalit-women-in-india's)caste-based-system &catid=126 &Itemid=133

[14]डॉ0 ज्ञान प्रकाश गौतम (2011) -*''दलित महिला : सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण''* कला प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 18

[15]SONIA MAHEY, "*The status of Dalit Women in India's Caste Based System*" pp. 151-52 stable URL http//www.roundfableindia.co.in/index.php?...com…dalit-women-in-india's)caste-based-system &catid=126 &Itemid=133

[16]डॉ0 मंजू सुमन (2004) -*''दलित नारी : एक विमर्श'',* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 199

[17]वही, पृष्ठ संख्या 186

[18]एस. विक्रम, (2010) -*''दलित महिलाएं : इतिहास, वर्तमान और भविष्य'',* नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 50

[19]ज्ञानेन्द्र रावत, (2006) -*''औरत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'',* विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 216-218

[20]डॉ0 मंजू सुमन, (2004) -*''दलित नारी :एक विमर्श'',* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 163

[21]ज्ञानेन्द्र रावत, (2006) -*''औरत : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'',* विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 220

[22]डॉ0 ज्ञान प्रकाश गौतम, (2011) -*''दलित महिला : सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण''* कला प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 133

[23]डॉ0 दुर्गा दास बसु, (2007) -*''भारत का संविधान-एक परिचय'',* वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या 92

[24]DEVAKI JAIN &C.P. SUJAYA, (2014) (ed.), *"Indian Women – evisited",* Publications division, New Delhi, 2014. P – 5

[25]डॉ0 दुर्गा दास बसु, (2007) -*''भारत का संविधान-एक परिचय'',* वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 94-97

[26]डॉ0 ज्ञान प्रकाश गौतम, (2011) -*''दलित महिला : सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण''* कला प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 137

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,53-60
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 मार्च 2016

रीतिमुक्त नीति काव्यधारा में सांस्कृतिक उन्नयन

डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रीतिमुक्त नीति काव्यधारा में सांस्कृतिक उन्नयन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

संस्कृत साहित्य में नीतिकाव्य रचना की एक विशाल एवं समृद्ध परंपरा थी, जिसका हिंदी कवियों पर भी पर्याप्त आभाव पड़ा था। भक्तिकाल में भी नीति संबंधी प्रचुर सामग्री मिल जाती है। कबीर, तुलसी, रहीम आदि कवियों की नीतिविषयक सूक्तियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं। भक्तिकाल की नीतिकाव्य परंपरा ही रीतिकाल तक आते-आते अधिक समृद्ध एवं जनप्रिय हो गई थी। रीतिकाल में नीतिविषयक रचनाएँ करने वालों में वृन्द, गिरिधर कविराय, घाघ, वैताल, दीनदयाल गिरि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों की रचनाओं में जीवन के अनेक प्रभावशाली अनुभव चुमती हुई शैली में कहे गये हैं। यद्यपि इस साहित्य में चमत्कार का पुट अवश्य मिल जाता है। परंतु इनसे रस की अनुभूति नहीं होती। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने इसे कविता न कहकर सूक्ति साहित्य कहा है। विषय की विविधता और सूझ की विचित्रता के कारण यह जनता का कण्ठहार बन गया है। इसमें कण्ठस्थ हो जाने का गुण भी है, जिसने इसे सर्वप्रिय बना दिया है। उचित व्यवहार का नाम ही नीति है, तब इसे मानने में भी कोई संकोच न होना चाहिए कि नीति के प्रतिपादक काव्य को नीतिकाव्य कहते हैं। परंतु कुछ लोग नीतिप्रतिपादक काव्य को दो कारणों से नीतिकाव्य कहना उचित नहीं समझते। प्रथम काव्य का उद्देश्य आनंद प्रदान है, जबकि नीतिकाव्य का व्यवहारशिक्षा द्वितीय, काव्य सरस कृति को कहते हैं जबकि नीतिकाव्य नीरस पद्य वा सूक्ति मात्र होते हैं। गंभीर दृष्टि से देखने पर दोनों आक्षेप निराधार प्रतीत होते हैं। प्रथम आक्षेप का उत्तर यह है कि जब परमाणु से भानुपर्यंत प्रत्येक विषय पर काव्यरचना संभव है, तब व्यवहारशिक्षा को काव्य का विषय बनाने में आपत्ति क्यों? आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजनयों निर्दिष्ट किए हैं *काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कांतासंमिततयोपदेशयुजे।।* (काव्यप्रकाश, 1/2)

अर्थात् काव्यरचना यश, धन, व्यवहारज्ञान, अमंगलनाश, लोकोत्तर आनंद तथा कांतासंमित उपदेश के लिए की जाती है। इससे स्पष्ट है कि काव्यरचना का उद्देश्य आनंद प्रदान ही नहीं, व्यवहारज्ञान और कांतासंमित उपदेश भी है और ये दोनों नीतिकाव्य के प्रधान लक्ष्य है। द्वितीय आक्षेप भी निराधार हैं क्योंकि नीतिकाव्य पद्य वा सूक्ति मात्र ही नहीं होते, उत्तम,

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मध्यम वा अधम काव्य भी होते हैं। यह तो कवि की प्रतिभा व अभ्यास पर निर्भर है कि वह नीति की बात को पद्य में अभिव्यक्त करने में समर्थ है, सूक्ति में या काव्य में।

नीतिकाव्य दो प्रकार की कृतियों में उपलब्ध होता है। प्रथम, उन कृतियों में जिनका मुख्य विषय तो कोई ग्रन्थ हो परंतु नीति आनुषंगिक रूप से समाविष्ट हो गई हो। उदाहरणार्थ रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि संस्कृत काव्यों में और पृथ्वीराज-रासो, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका आदि हिंदी काव्यों में नीतिकाव्य सहज सुलभ है। दूसरे, उन रचनाओं में जिनका प्रणयन व्यवहार की शिक्षा देने के लिये ही किया जाता है, यथा संस्कृत में चाणक्यनीति, नीतिशतक आदि और हिंदी में वृंदसतसई, बाँकीदास कृत, कृपणदर्पण है।

मुक्तक नीतिकाव्यधारा के नीतिकाव्यों में प्रत्येक पद्य सर्वथा स्वतंत्र होता है तथा निज आशय के स्पष्टीकरण के लिये पूर्व वा परवर्ती पद्यों की अपेक्षा नहीं रखता। रहीम, वृंद, बाँकीदास, आदि के नीति दोहे इसी वर्ग में गणनीय हैं। अधिकतर नीतिकाव्य मुक्तक रूप में ही उपलब्ध होते हैं और प्रायः मुक्तकों की संख्या के नाम पर उन काव्यों का नामकरण कर दिया गया है; जैसे- अक्षरबत्तीसी, कर्मछत्तीसी, अक्षरबावनी, उपदेशसतरी, कीर्तिशतक आदि।

निबंधात्मक नीतिकाव्य; नीति की कुछ कृतियाँ ऐसी हैं, जिन्हें न मुक्तक कह सकते हैं, न प्रबंध। वे न मुक्तकों के समान पूर्वापर निरपेक्ष होती है और न प्रबंधों के समान सुश्रृंखलित और विस्तीर्ण। पंचेन्द्रियसंवाद और सास बहू का झगड़ा इसी प्रकार की नीति रचनाएँ हैं।

प्रबंधात्मक नीतिकाव्य; इस प्रकार के नीतिकाव्य प्रायः कथारूप में दृष्टिगत होते हैं। किसी काव्य में एक कथा है तो किसी में एकाधिक; परन्तु रचना सभी की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही की गई है। दंपतिवाक्यविलास और सप्तव्यसनचरित इसी प्रकार के नीतिकाव्य हैं।

रीतिकालीन नीतिकाव्य-धारा के उन्नयन के पीछे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी बहुत बड़ा योगदान था।

राजनीतिक परिस्थिति

सन् 1658 में शाहजहाँ बीमार पड़ा और उसके जीवन काल में ही उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गया। यह युद्ध रीतिकाल के आरंभ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। शाहजहाँ के बड़े पुत्र दाराशिकोह को रौंद कर औरंगजेब ने गद्दी हथिया लीं लेकिन औरंगजेब का काल अशांति एवं कलह में ही बीता। उसके सामने ही आगरा, अवध और इलाहाबाद के सूब्रों में विद्रोह हुए। आगरा में जाटों ने अवध में राजपूतों ने, इलाहाबाद में जमींदारों ने खुला विद्रोह कर दिया। बुन्देलखंड में चम्पतिराय के पुत्र छत्रसाल और महाराष्ट्र में मराठा शिवाजी ने स्वतंत्र रूप से सिर उठाया। जसवंत सिंह के मरते ही मेवाड़ और मारवाड़ ने मुगलों के खिलाफ हल्ला बोल दिया। मुगल साम्राज्य दिल्ली आगरा तक सीमित हो गया। इस समय का इतिहास भी दरबारों- अंतः पुरों के षड्यंत्रों का इतिहास ही बनकर रह गया। इस प्रकार पूरा देश युद्धों और गृह कलह से पीड़ित हो उठा जिसके कारण व्यवस्था पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई। औरंगजेब को व्यक्तित्वहीन संताने पैदा हुई, जो कर्मचारियों के हाथों खिलौना बनकर टूट गए।

सामाजिक परिस्थिति

आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था- उत्पादक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अन्तर्गत कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे तथा उपभोक्ता वर्ग के अन्तर्गत राजा से लेकर उनका दरबान और दास तक शामिल था। इन दोनों के बीच एक बड़ा अन्तर था एक शासित था, दूसरा शासक, एक शोषित था, दूसरा शोषक।

सामाजिक पतन का यह काल नैतिक मूल्यों के पतन का काल भी था। हिंदू मुसलमान दोनों जर्जीरेत होकर नैतिक बल खो बैठे थे। जहाँदार शाह जैसे बादशाहों ने मुगल गौरव को मिट्टी में मिला दिया था। उसकी रखैल लाल कुंवर स्वयं सम्राट

तथा अमीरों को भरे दरबार में अपमानित कर देती थी। दरबार छल-कपट के केंद्र थे। वेश्याओं को सामंतों पर शासन करने का अवसर मिल गया था। नैतिक बल से हीन सम्राट, अमीर भाग्यवादी बन गये थे। विलास की रंगीनी में निराशा की कालिमा जीवन को घेर कर बैठ गई थी।

कविता पर इसका सीधा असर पड़ा। डॉ0 नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति का सटीक मूल्यांकन किया है। ''भीषण राजनीतिक विषमताओं ने बाह्य जीवन के विस्तृत क्षेत्र में स्वस्थ अभिव्यक्ति और प्रगति के भी मार्ग अवरूद्ध कर दिए थे। निदान लोगों की वृत्तियाँ अंतर्मुखी होकर अस्वस्थ काम-विलास में ही अपने को व्यक्त करती थीं।''[1]

धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थिति

इस युग का धर्म अंधविश्वास का पर्याय बन गया। अशिक्षित जनसमुदाय के लिए भक्ति-भावना धर्म के बाह्यंगों तक सीमित थी। ये अपने अंधविश्वास के कारण संतों और पीरों के पास जाते थे और सब प्रकार की रीतियों और अंध परंपराओं का पालन करते थे। ये संत और पीर भोली-भाली जनता का खूब शोषण करते थे। इन विषय परिस्थितियों के बीच भी संस्कृति के नैतिक मूल्य कहीं न कहीं संघर्षरत थे क्योंकि सांस्कृतिक मानदण्डों के अनुरूप संस्कृति के उपर कितने भी बाह्य प्रभाव क्यों न पड़े किन्तु वह आन्तरिक रूप से अपने स्वरूप को बनाये रखने में सदैव प्रयत्नशील रहती है और अवांक्षित सामाजिक परिवर्तनों के प्रति निषेधात्मक प्रतिरोध बनाये रहती है, यही कारण है कि पूर्व के समृद्ध भक्ति काल में भी नीतिकाव्य प्रभावी रहा उसी प्रकार रीतिकाल में भी समाज के प्रति अनुत्तरदायी कवियों ने भी कहीं न कहीं सांस्कृतिक प्रभाव के चलते सामाजिक नियमों को कविताओं के माध्यम से कहने से स्वयं को रोक नहीं पाते थे।

यही कारण है कि रीतिमुक्त निति काव्यधारा की परम्परा प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक सदैव चलती रही।

सत्य और शिव की कल्याणमयी प्रतिभा को प्रतिष्ठित करने वाली नीति, धर्म की आधारशक्ति मानी जाती है। इस आधार पर कह सकते हैं कि प्रौढ़ विचार पक्ष तथा प्रबल और मूल्यों वाली नीति, साधारण मानव जीवन को प्रत्येक दिशा में प्रगति पर ले जाती है। महाकवि रहीम के नीतिकाव्य के विषय भी जीवन की विविधताओं की तरह अनन्त हैं। उनमें व्यावहारिकता और गंभीरता एक साथ मिलती है। कवि ने एक स्थान पर शरीर की क्षणभंगुरता को रेत की गठरी से आंका है, ''रहीमन ठठरी धूरि की रही पवन तें पूरि। गाँठ युक्ति की खुल गयी अन्त धूरि की धूरि।।''

रहीम ने जीवन की असारता के साथ-साथ प्रेम की निष्कलुषता, अस्थिरता तथा वैभव विलास के प्रति उदासीनता आदि भावों को भी उभारा है।

''जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग। चन्दन विष व्याप्त नहीं लपटे रहे भुजंग।।''

उपकार करने वाले का भी अपना भला पहले होता है। प्रेम के विषय में अपने ही सिद्धांत और मानदंड हैं, ''रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय। टूटे तें फिर न जुरै, जुरै गाँठ परि जाय।।''

रीतिकाल में दरबारी काव्य लिखने की भी एक विशिष्ट परंपरा रही है। देव ने भी अपने आश्रयदाताओं की स्तुति में बहुत कुछ लिखा है, परन्तु जिस प्रकार वृद्धावस्था में पहुँचकर वह श्रृंगार के स्थान पर भक्ति के पद रखने लगे थे; उसी प्रकार गुणगान से भी उन्होंने अपनी कलम खींच ली थी। उनको विश्वास हो गया था कि स्वार्थवश अर्थलोलुप होकर आश्रयदाताओं का गुणगान करना एक सच्चे कवि को शोभा नहीं देता। इस संबंध में उनका एक प्रसिद्ध सवैया इस प्रकार है, ''जाके न काम न क्रोध विरोध/ न लोभ छुवे नहिं छोभ को छांहों। मोह न जाहि रहे जग बाहिर/ मोल जवाहिर तो अति चाहौं। बानि पुनीति ज्यों देवधुनी/ रस आरद सारद के गुन गाहौं। सील ससी सविता छविता कविताहि रचे कवि ताहि सराहौं।।''

बिहारी ने भक्ति के साथ-साथ नीति परक दोहे भी रचे हैं। जगह-जगह इन दोनों में धन अथवा स्वर्ण की निंदा है। कभी-कभार शासन भार से भयभीत और दुःखी जनता की भी वे चर्चा करते हैं। नीच मनुष्यों के अपरिवर्तनशील स्वभाव का उन्हें अच्छा अनुभव है, यथा, ''कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय। वा खाए बैराय जग, या पाये बौराई।।''

स्वर्ण आदमी को पागल बना देता है- उसका लोभ नाश का कारण है। नीच प्रकृति के व्यक्ति के लिए उनका विचार है कि वह अपरिवर्तनशील होता है, ''कोटि जतन कोअ करौ, क्यों न बढ़े दुख दंदु। अधिक अंधेरों जग करंत, मिलि मावस रवि चंदु।।''

भारतीय साहित्य में नीति की एक लम्बी परम्परा रही है। नीति परम्परा में अनुभव भरा पड़ा है। ऐसा ठोस अनुभव जिसे लेकर जीवन को ठोस दिशा मिल सकती है।

बिहारी के नीतिपरक दोहों में जीवन को एक निश्चित दिशा देने की बात कही है। मानव की विभिन्न स्वभाव विशेषताओं का वर्णन भी किया है। मनुष्य स्वर्ण अथवा धन का लालच कभी न करे क्योंकि उससे मनुष्य का नाश हो सकता है। कु-संगति से बचने को भी बिहारी कहते हैं। बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचार लोकानुभाव पर आधारित है। बिहारी केवल नीति की शुष्क बाते नहीं कहते बल्कि नीति को कौशल से नया भाव-रूप देकर प्रस्तुत करते हैं। केवल तथ्यों का कथन करना ही उद्देश्य नहीं था- अच्छी कविता लिखना भी उनका उद्देश्य था।

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख नीति कवि

(1) जसराज (जिनहर्ष); जैनमुनि शांति हर्ष के शिष्य, लगभग 100 पुस्तकें लिखीं। नीतिविषयक तीन ग्रन्थ हैं :

(i) उपदेश बत्तीसी' (सं0 1713) : में काया स्वरूप, माया त्याग, मानदूषण, क्रोधदूषण अदत्तादान आदि विषय पर छंद रचना है।

(ii) मातृका बावनी (सं0 1738) : सत्तावन सवैयों में-भाग्य, उधम, दान, भूर्ख का वर्णन, भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज, पधरचना, वर्णमाला के क्रमानुसार। साहित्यिक सौष्ठवयुक्त।

(iii) 'कवित बावनी' (सं0 1748) : छप्पय बद्ध रचना, भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी।

(2) सुखदेव; व्यापारी कवि, ग्रंथ- 'वाणिज्यनीति' (सं0 1717), दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि में निबद्ध इस रचना में 348 पद्य हैं, जिनके शीर्षक 'नौन लैबे को विचार', 'उधार दैबे को विचार', 'व्यापारियों के साथ सामान्य पाठक' के लिए उपयोगी।

(3) हेमराज; सांगानेर-निवासी ग्रंथ, 'उपदेश शतक' (सं0 1725), 101 पद्यों में अधिकतर दोहे, कुछ सोरठे हैं। ब्रह्मचर्य का महत्त्व, आदान का कु-परिणाम, जन्म, विवाह, मरण में समानता आदि विषयों में चर्चा है। काव्यत्व की दृष्टि से सुन्दर रचना।

(4) भैया भगवतीदास; आगरा-निवासी, इनकी 67 रचनाएँ 'ब्रह्मविलास' में संगृहीत हैं, जिनमें 'पंचेन्द्रिय संवाद', 'दृष्टान्तपच्चीसी', 'मन बत्तीसी', 'वाइपरीक्षा', 'फुटकर पद्यो' में नीति कथन हैं।

(1) पंचेन्द्रिय संवाद (सं0 1751): 152 पद्यों में प्रत्येक इन्द्रिय सर्वश्रेष्ठ होने का दावा वर्णित है। अन्त में मन को राजा बाकी इन्द्रियों को सेवक बताया है। दोहा, सोरठा, ढाल, राग आदि में रचना है। इसके संवाद रोचक हैं।

(2) दृष्टान्त पच्चीसी (सं0 1752): 26 दोहों में अहिंसा, शील, दान, अपरिग्रह का महत्त्व दृष्टान्तों के माध्यम से निरूपित किया गया है।

(3) मनबत्तीसी : 34 पद्यों में मन को वश में करने की प्रेरणा दी गई है- (1) 27 दोहे, (2) अरिल्ल 4 चौपाई व 1 चौपाई है।

(4) बाईस परीक्षा : स्त्री के आकर्षण, मानापमान से दूर रहने वाले, धूप, वर्षा, भूख-प्यास रहने वाले सच्चे साधु की पहचान है। फुटकर पद्यों में नीति विषयक कथन है।

(5) लक्ष्मी वल्लभ : जैन मुनि, संस्कृत, हिन्दी, सिंधी, राजस्थानी के विद्वान, 78 कृतियों में 9 हिन्दी की, जिनमें 'दूहाबावनी' में 58 दोहों में नीति कथन है। (2) 'सवैया बावनी' संभवतः समस्यापूर्ति के लिए लिखे गए है। (3) 'कवित्त बावनी' 58 छप्पयों में भावमहिमा, लज्जा महत्त्व पर सुन्दर पद्य हैं आदि रचनाएँ नीतिकाव्य है।

(6) वृंद : ये मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ़ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। संवत् 1761 में ये शायद कृष्णगढ़ नरेश के साथ औरंगजेब की फौज में ढाके तक गए थे। इनके वंशधर अब तक कृष्णगढ़ में वर्तमान हैं। इनकी

'वृंदसतसई' (संवत् 1761), जिसमें नीति के सात सौ दोहे हैं, बहुत प्रसिद्ध हैं। खोज में 'श्रृंगारशिक्षा' (संवत् 1748) और 'भावपंचाशिका' नाम की दो इस संबंधी पुस्तकें और मिली हैं पर इनकी ख्याति अधिकतर सूक्तिकार के रूप में ही है। वृंदसतसई के कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं, ''भले बुरे सब एक सम, जौं लौं बोलत नाहिं। जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं।। हितहू कौ कहिए न तेहि, जो नर होत अबोध। ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाए क्रोध।।''

(7) धर्मसिंह : राजस्थान 'निवासी' जन्म सं0 1700, जिन रत्नसूरि से दीक्षित हो धर्मसिंह से धर्मवर्धन हो गये। छः नीतिकाव्य- (1) 'गुरु-शिष्य-दृष्टान्त छत्तीसी', (2) 'विशेष छत्तीसी', (3) 'धर्मबावनी', (4) 'प्रस्ताविक कुंडलियाँ बावनी', (5) छप्पय बावनी', (6) स्फुट पद्य। प्रथम दो अनुपलब्ध, धर्माबावनी में 57 पद्य, कवित्त, सवैया छन्द का प्रयोग, चुभती कहावतों का प्रयोग, कुंडलियाँ बावनी में 57 कुंडलियाँ छन्द है। इसमें पड़ोस, आठ अघ, सात सुख-दुःख अन्नस्वभाव कृपन की सम्पदा पर चर्चा है। फुटकर पद्य ज्यादा सुन्दर हुए हैं।

(8) बैताल : नीतिकाव्यकार बैताल का समय 1782 ई0 के बाद और 1829 ई0 से पहले माना जा सकता है। ये जाति के बन्दीजन थे और कहा जाता है कि चरखीवाले विक्रमसाह की सभा में रहा करते थे। बैताल ने अपनी कुण्डलियाँ 'विक्रम' को सम्बोधित करते हुए लिखी है। इनकी भाषा सरल है तथा कथन-शैली अनूठी है। उदाहरण, ''बाम्हन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै। पूत वही मरि जाय, जो कुल में दाग लगावै।। अरू बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइए। बैताल कहै विक्रम सुनो एते मरै न रोइए।।''

(9) सम्मन : जाति से ब्राह्मण थे। इनका जन्म 1777 ई0 में हुआ था और इनका निवास-स्थान मल्लावां (जिला हरदोई) था। इनके नीति सम्बन्धी दोहे ग्रामीण जनता में बहुप्रचलित हैं। भाषा सरल और सीधी होते हुए भी मर्म को स्पर्श करती है। मनुष्य का जीवन दिनों के फेर से अच्छा-बुरा बनता रहता है- इस भाव के दोहे बड़े मर्मस्पर्शी हैं और स्त्रियों की जिह्वा पर आज भी निवास करते हैं। मीठे भाषण के सम्बन्ध में सम्मन कहते हैं, ''सम्मन मीठी बात सों, होत सबै सुख पूर। जेहि नहिं सीखी बोलिवो, तेहि सीखो सब धूर।।''

(10) घाघ : कन्नौज निवासी दूबे ब्राह्मण घाघ का जन्म संवत् 1753 कहा जाता है। इनकी लोकोक्तियों से विदित होता है कि इन्हें कविता, ज्योतिष व नीति का अच्छा ज्ञान था। इनकी नीतिविषयक एक सौ के लगभग लोकोक्तियों से इनके गंभीर अनुभव का परिचय सहज प्राप्य है। साहित्यिक सौष्ठव के अभाव के कारण इनके पद्य भले ही विद्वद्ग्राह्य न हों ग्रामीण जनता के कंठ व श्रोत का सदा ही श्रृंगार रहेंगे।

(11) जिनरंगसूरी : जिनराज सूरि के शिष्य, ग्रंथ- 'रंगबहुत्तरी' (18वीं शती पूर्वार्द्ध) 72 दोहे में कपटी और स्त्री का मन, प्रेमहीन मनुष्य पशुतुल्य, यशस्वी जीवन की प्रशस्यता आदि का वर्णन राजस्थानी प्रभावित ब्रजी में किया हैं।

(12) बालचंद : विनय प्रमोद पाठक के शिष्य, ग्रंथ- 'सवैया बावनी', - (18वीं शती के मध्य) शैली अनूठी, भाषा प्रवाहपूर्ण है।

(13) अक्षरअनन्य : जन्म सं0 संभवतः 1710, ग्रंथ- 'निर्धारशतक' नीतिकथन है, प्रत्येक दोहे का चतुर्थ चरण- कहि अनन्य निर्धार है। सामान्य रचना।

(14) देवीदास : बुंदेलखण्ज्ञ-निवासी, करौली के राजकवि, जन्म सं0 1712, ग्रन्थ प्रेमाध्यान काव्य का विषय प्रेम है। सांसारिक प्रेम को भी मोक्षप्रद कहा है। रीतिकालीन रचना, लक्षण दोहों में उदाहरण बड़े छन्दों में। बहुत साहित्यिक नहीं।

(15) केशवदास जैन : मुनि लावण्यरत्न के शिष्य, दीक्षा नाम कुशलसागर। ग्रंथ- केशवबावनी (सं0 1736), भाग्यरेखा पर बल दिया गया है।

(16) गोपाल चानक : पिता गंगाराम, पुत्र का नाम माखनलाल। गोपालदास और माखनलाल, दोनों रतनपुर (विलासपुर, मध्य-प्रदेश) के राजा राजसिंह के चाणक थे। चार नीतिकाव्य इनके उपलब्ध हैं- (1) 'वीरशतक', (2) 'कीर्तिशतक', (3) 'कर्मशतक', (4) 'पुण्यशतक'। रचनाकाल 18वीं शती का उत्तरार्ध। वीरशतक 38 पद्योवाला त्रिविध सात्विक, राजस और तामस वीरधर्मों का उल्लेख, भाषा ओजस्विनी कवित्त, छप्पय, दोहा, चौबोला छन्दों का प्रयोग। कीर्तिशतक 82 पद्य, में आरम्भ में अवतारों के कीर्तिवर्णन, बाद में कीर्तिमान जीवन की सफलता, कीर्ति प्राप्ति का उपाय, कीर्तिकामीं राजाओं के 32 गुणों की चर्चा है। सवैया, कवित्त, दोहा, चौबोला का प्रयोग।

कर्मशतक; इसमें विभिन्न गुणों का पारस्परिक संवाद है, उपदेश पर बल है। भाषा परिमार्जित ब्रज है। खूब तमासा आदि वाक्यांशों पर बहुलता से प्रयोग। रचना प्रभावशाली है।

पुण्यशतक में 27 पद आरम्भ में पुण्याचारण के सुफल, पुण्यात्माओं के महत्व के बाद तत्कालीन पुण्यक्षय पर कवि खेद प्रकट करता है। प्राचीन पुण्यात्मा राजाओं की प्रशंसा, सम-सामयिक राजाओं की उच्छृंखलता वर्णित करने के बाद अपने आश्रयदाता की स्तुति से कृति को समाप्त करता है।

(17) रघुराम : अहमदाबाद निवासी, ग्रंथ- 'सभासार नाटिक' (सं0 11757) 329 पदों में रचना-देववंदना के बाद, कवि का अपना परिचय फिर शिष्य-गुरु के प्रश्नोत्तर रूप में नीति पर बल। कपटी, समाचतुर, समाबिगाड़, गाफिल आदि व्यक्ति के लक्षण शिष्य पूछता हैं, गुरु दोंहे में उसका लक्षण बताकर कवित्त आदि में उदाहरण देता है। चौपाई, दोहा, सोरठा, सवैया (कवित्त) छन्दों का प्रयोग। विषय की व्यापकता, सरसता, भावमयता की दृष्टि से अनुपम ग्रंथ। ब्रजभाषा में गुजराती कवि द्वारा नीतिकाव्य रचना स्तुत्य है।

(18) किसन : जैन कवि, ग्रंथ 'किसनबावनी' (सं0 1763), 52 कवित्तों की सुन्दर रचना, रचना सरल, मधुर भावों की दृष्टि से रोचक हैं।

(19) भूमधरदास : आगरा के खंडेलवाल जैन, ग्रंथ- 'पार्श्वपुराण', 'जैन शतक' और 'पद संग्रह'। जैन शतक नीतिकाव्य है। (रचनाकाल 18वीं शती का उत्तरार्ध) आरम्भिक 16 तथा अंतिम 20 पद साम्प्रदायिक हैं पर बीच के 64 सुन्दर नीतिपद्य हैं। रचना सरस व भावपूर्ण हैं।

(20) चाचाहित वृंदावनदास : पुष्कर के गौड़ ब्राह्मण, ग्रंथ- 'कलिचरित्रवेलि' (सं0 1812) 103 सोरठों में, पारिवारिक, सामाजिक सभी नीतियों का कथन है। विवाह-समस्या पर प्रकाश डाला है। ब्रजभाषा सरल पर प्रभावपूर्ण है।

(21) गिरिधर कविराय : जाति के भाट, जन्म सं0 1770, किसी राजा के निर्वासित किए जाने पर अपनी पत्नी के सहयोग से 'कुंडलियाँ' लिखीं। लगभग साढ़े चार सौ कुंडलियाँ छन्द हैं। शेष में दोहे, सोरठे, कवित्त और छप्पय छंद का प्रयोग है। रचना तीन, भागों में विभक्त हैं। प्रथम में नीति, द्वितीय में अध्यात्य, तृतीय में अध्यात्म ही है लेकिन यह परिशिष्ट प्रतीत होता है जिसके कुल 18 पद्यों में दोहे, कवित्त, छप्पय तो है पर एक भी कुंडलिया छन्द नहीं हैं। प्रत्येक प्रकार नीति पर लिखा है, इनकी कुछ अन्योक्तियाँ बाकी सरस हैं। भाषा ब्रज है, अरबी, फारसी, संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग। रचना सरस, रोचक है। इसके पद सामान्य जनता में भी लोकप्रिय हैं।

(22) विनय भक्ति : आरम्भिक नाम वस्तपाल, मुनि भक्ति भद्र से दीक्षित होने पर नाम 'विनयभक्ति' हो गया। ग्रंथ- 'अन्योक्ति बावनी' नीतिकाव्य है, जिसमें 62 कवित्त सवैये हैं। छः पद्यों में मंगलाचरण के बाद देव, पशु, पक्षी, नदी, मारवाड़ आदि पर अन्योक्ति है। रचना अच्छी है।

(23) जसुराम चारण : ग्रंथ 'राजनीति' (सं0 1814)। कवि ने पहले राजनीति को आठ अंगों में बाँटा है। फिर उनके कर्तव्यों का उल्लेख है। नीतिकाव्य में राजनीति का भी थोड़ा-बहुत उल्लेख रहता है। यह रचना पूरी राजनीति विषयक है। काव्य की दृष्टि से साधारण रचना।

(24) योगिराज ज्ञानसार : जन्म सं0 1801 'जंगलेवास ग्रम (बीकानेर)' प्रारम्भिक नाम नराण था नाराण था। मुनि जिन लाभ सूरि से दीक्षित होने पर इनका नाम ज्ञानसार रखा गया। ग्रंथ- 'संबोध अष्टोत्तरी', 'प्रास्तविक अष्टोत्तरी'- इनके दो नीति काव्य हैं। 'संबोध अष्टोत्तरी' में 108 सोरठे, उपयोगी विषय खानपान, मकान, कंजूस, नीच से प्रेम पर चर्चा, सूक्तियों का प्रयोग, भाषा राजस्थानी प्रास्ताविक अष्टोत्तर में निःस्पृह नर की निडरता, इच्छा से फल की अप्राप्ति, अनिच्छा से प्राप्ति, पराधीनता से आत्मा का हनन। भाषा ब्रज, सुन्दर रचना।

(25) नाथूराम (नथिया) : राजस्थानी कवि समय 19वीं शती का पूर्वार्द्ध। ग्रंथ- (1) 'सिधसागर', (2) 'कुडलियाँ'। सिधसागर में 154 सोरठे में धन के गुणदोष, गुण की महत्ता द्यूतहानि पर चर्चा। 'भाषा डिंगल', 'संस्कृत का भी प्रभाव'/ कुंडलियों में सात कुंडलियाँ हैं। ब्रजभाषा, रचना-भाषा-प्रवाह दृष्टि से उत्कृष्ट है।

(26) महाकवि गणपति 'भारती' : माथुर चौबे, जयपुर-नरेश सवाई प्रतापसिंह के सभा कवि। दस ग्रंथ पर (1) 'नयपच्चीसी', (2) 'प्रीतिमंजरी', (3) 'अन्योक्ति काव्य', (4) 'वीर हजारा' नीतिकाव्य है। अन्योक्ति वर्णन नाम से खंडित प्रति जिसमें साढ़े

तीस अन्योक्तियाँ हैं, मिली है। संभव है वही अन्योक्ति काव्य हो, रचना अनुप्रासमयी ब्रज में कवित्त सवैया को सूर्य, सोम, सिंह आदि अप्रस्तुतों के द्वारा राजा तथा तत्सम्बन्धियों के व्यवहार का सुन्दर ढंग से वर्णन। प्रत्येक अन्योक्ति के बाद एकाध गद्य पंक्ति में उसका आशय स्पष्ट कर दिया गया है।

(27) स्यामदास : ग्रंथ-'हितउपदेश', 29 पत्र हैं, जिनमें दो लुप्त हैं। सं0 1844 में पूर्ण हुई। रचना सांप्रदायिक बातों से मुक्त हैं। इसमें लोकाचरण राजनीति की बातें हैं। दो बातें और तीन बातें आदि शीर्षकों से ग्राह्य व त्याज्य बातों का उल्लेख। तुकबंदी का निर्वाह है। विषय की दृष्टि से अच्छी है पर काव्यत्व नहीं।

(28) कृपाराम बारहट : 19वीं शती का पूर्वार्द्ध, जोधपुर के खराड़ी ग्राम में। सीकर के राजा लक्ष्मणसिंह के पास रहते थे। 'राजिया के सोरठे' नाम से इनके 175 फुटकर सोरठे मिलते हैं। चारणों का मत है कि राजिया इनका नौकर था, उसकी सेवा से रूग्ण कृपाराम स्वस्थ होने पर राजिया का नाम अमर करने के लिए 500 सोरठों की रचना की जिसमें से पौने दो सौ ही उपलब्ध हैं। प्रत्येक में राजिया को सम्बोधित किया गया है। इन सोरठों में नीति व उपदेश की बातें मार्मिक ढंग से कही गई हैं। सोरठे भावपूर्ण व सुन्दर हैं। डिंगल भाषा, गुजराती, सिंधी, ब्रजी के शब्द का भी प्रयोग।

(29) बाँकीदास : चारण फतहसिंह के पुत्र बाँकीदास का जन्म जोधपुर राज्य के भद्राग्राम में सं0 1828 में। इनकी 26 पुस्तकों में 19 नीति विषयक हैं।

(30) मानरंग लाल : कन्नौज निवासी, जैन कवि ग्रंथ 'सप्तव्यसन चरित्र' (19वीं शती, कथा संग्रहात्मक काव्य) का उत्तरार्ध। प्रारम्भिक 29 पद्यों में जैन तीर्थकारों का स्तवन, बाद में धूत, मांस, सुरा, वेश्या, चोरी आदि से सम्बन्धित कथाएँ हैं। भाषा परिमार्जित अलंकृत ब्रजी है। सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा छप्पय, कवित्त छन्द का प्रयोग है। 'सुन्दर' नीतिकाव्य है।

(31) रघुनाथ : 'दृष्टगंजन पंचावनी' (सं0 1889)। प्रथम के 18 पद्य लुप्त। दुष्टों के स्वरूप का वर्णन, उनके नाश की प्रार्थना, भाषा प्रवाहपूर्ण ब्रजी। कवित्त छप्पय, सवैया छन्दों का प्रयोग, वीभत्स व भयानक रसों की व्यंजना।

(32) बुधजन : जयपुर के खंडेलवाल जैन, निहालचंद्र के तृतीय पुत्र बुधजन का वास्तविक नाम भदीचंद या विरधीचंद, पं0 माँगीलाल के शिष्य थे; दीवान अमरचंद के मुख्य मुनीय, ग्रंथ- 'बुधजन सतसई' (सं0 1879) में चार भाग- (1) देवानुराग शतक, (2) सुभाषित नीति, (3) उपदेशाधिकार, (4) विरागभावना। द्वितीय व तृतीय भाग नीति विषयक हैं- सब प्रकार की नीति का उल्लेख पर सरसता का अभाव। भाषा ब्रज, राजस्थानी का पुट भी है। अलंकारों से युक्त रचना।

(33) विश्वनाथ सिंह : जन्म सं0 1846, रीवाँ- नरेश, (1) 'ध्रुवाष्टक', (2) 'उत्तम-नीतिचन्द्रिका', (3) 'अबाधनीति'। ध्रुवाष्टक में राजनीति पर आठ सवैये हैं, जिसमें राजा की दरिद्रता, राज्यनाश, राज अशांति, अपयश, संपत्ति आदि के कारण का उल्लेख, भाषा- ब्रज।

(34) बाबा दीनदयाल गिरि : जन्म सं0 1859 वाराणसी में स्वर्गवास सं0 1915, शैव, सन्यासी- पाँच ग्रन्थों में दो नीतिकाव्य- (1) 'दृष्टान्त तरंगिनी', (2) 'अन्योक्तिकल्पद्रुम', 'दृष्टान्ततरंगिनी' में 206 दोहे, रचना सं0 1879 पूर्वदल में नीति का उल्लेख, उत्तरदल में दृष्टान्त द्वारा उसकी पुष्टि। सुन्दर सूक्तिमयी रचना। अन्योक्ति कल्पद्रुम (सं0 1912), वैयाक्तिक, सामाजिक, आर्थिक नीति का प्राधान्य पर पारिवारिक नीति का उल्लेख नहीं। सरस, भावपूर्णरचना मुहावरे, लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग। इसमं 272 पद्य है, जिनमें 247 कुंडलियाँ, 13 दोहे, 2 कवित्त, 5 मालिनी, 5 सवैया छन्द हैं। भाव, भाषा दोनों दृष्टियों से श्रेष्ठ रचना है।

(35) गुपाल कवि : वृंदावनवासी प्रवीनराय के पुत्र गुपाल, ग्रंथ- 'दंपत्ति काव्य विलास' (सं0 1885) में पति-पत्नी के संवाद रूप में पाठकों के बुद्धिविलास व व्यवसाय में हानि से बचने की बात वर्णित है। प्रस्तुत काव्य 21 प्रबंधों में विभक्त। प्रत्येक प्रबन्ध अनेक वर्गों में विभक्त है। हिन्दी के गृहीत सभी नीति विषयों का ब्यौरेवार वर्णन। प्रवाहपूर्ण ब्रजी भाषा। काव्य सरल। अर्थालंकारों की अपेक्षा, शब्दालंकारों पर बल/ कवित्त, सवैया, दोहा, छन्द का प्रयोग। भाव व भाषा दोनों दृष्टियों से सुन्दर नीतिकाव्य है।

(36) केसौदास : (जीवन परिचय अज्ञात), ग्रंथ- दीपक बत्तीसी (19वीं शती अनुमानित), 32 दोहे, भाषा राजस्थानी। अन्योक्ति- प्रधान, कृति में दीपक के गुण-दोषों का उल्लेख पतंग के अनन्यप्रेम का भी वर्णन हैं। भाषा सौष्ठव, रचना सुन्दर है।

(37) भडुरी : (जीवन परिचय अज्ञात), राजस्थानी ज्योतिषी थे, कृषि और वृष्टि के विशेषज्ञ। इनकी दो सौ के लगभग कहावतें हैं। जो दोहा, चौपाई, छन्दों में है, पंजाब और राजस्थान में विशेष लोकप्रिय।

(38) मानिकदास : अहमदाबाद के विद्वान पाटीदार बाद में साधु हो उज्जैन बस गये। पाँच ग्रंथों में 'संतोष सुरतरु' नीति विषयक कथन है, 111 दोहे हैं। साधारण कोटि के दोहे और टीका पंडिताऊ गद्य में हैं।

(39) मनराज : (जीवन परिचय अज्ञात), 'मनरामविलास' जैनप्रसिद्ध नीति विषयों का उल्लेख, 19 पद्यों में दोहा, सवैयाँ, कुंडलियाँ छन्दों का प्रयोग हैं। भर्तृहरि के नीति व वैराग्य शतक का प्रभाव भाषा ब्रजी पर राजस्थानी प्रभाव है। सूक्तिकोटी की रचना है।

(40) 'मूर्खभेद चौपाई' : (कवि अज्ञात) कवि ने सगुण प्रकाश तथा बुद्धि विस्तार के उद्देश्य से लिखा है। इसमें बिना उधम किए धन की इच्छा करनेवाले, वेश्यावचनों पर विश्वास करने वाले को मूर्ख बताया है।

(41) 'त्रिया विनोद चरित्र' : (कवि अज्ञात), कथा-शैली पंचतंत्र के समान, पातिव्रत्य की शिक्षा देना काव्य का लक्ष्य था। साहित्यिकता नहीं।

(42) 'दातार सूर नो संवाद' : (कवि अज्ञात), 25 पद्यों में दाता और शूर दोनों को अपने को श्रेष्ठ बताते हुए झगड़ा करना समस्या-हल के लिए 'रायातिलक' रायसिंह के पास पहुँचना जो दाता को शूर से श्रेष्ठ बताता है। राजस्थानी भाषा में अच्छी रचना है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वीर गाथा काल और भक्ति काल की अपेक्षा रीतिकाल में सर्वाधिक कवियों द्वारा नीतिकाव्य लेखन का कारण स्पष्ट है कि जैसे आकृति अपने उपादानों के अपक्षय के उपरान्त उसकी पूर्ति हेतु सकृय हो जाती है, उसी प्रकार मानव मूल्यों एवं संस्कृति का जब सर्वाधिक क्षय रीतिकाल में हुआ तो संस्कृति उसकी पूर्ति हेतु प्रयत्नशील हुई और मानव मन एवं समाज में अपनी अदृश्य उपस्थिति के द्वारा सामाजिक सिद्धान्तों एवं सांस्कृतिक मूल्यां एवं संस्कृत के क्षय की पूर्ति हेतु प्रतिरोध की क्षमता में वृद्धि की जिससे तत्कालीन समाज में नीति विषयक लेखन के लिए अनुपयुक्त विषम परिस्थितियों में भी नीति कवियों की संख्या में वृद्धि हुई यह प्राकृतिक नियम है कि जिसका जितना ज्यादा छय होता है, उसकी पूर्ती हेतु प्रकृति उतनी ही सकृयता से उसका भरण भी करती है।

संदर्भ ग्रंथ

[1]रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या 15

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,61-63
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 जून 2016

''रामचरितमानस में निरुपित शिक्षा-संस्कृति, नीति एवं राष्ट्रीयता के तत्व''

जय प्रकाश नारायण*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"रामचरितमानस में निरुपित शिक्षा-संस्कृति, नीति एवं राष्ट्रीयता के तत्व"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *जय प्रकाश नारायण* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

राम का नाम हमारी संस्कृति की पहचान है। वे मानवीय मूल्यों के अभिव्यक्ति लोक-व्यवहार और जीवनादर्शों के चरम प्रतिमान, शील-शक्ति-सौन्दर्य के साक्षात् विग्रह, धैर्यवान, सत्यव्रत, धर्म के मूर्तिमान स्वरूप तथा उदात्त गुणों के सर्वोच्च शिखर हैं। राम का पूत चरित्र भारत के जनमानस के चिन्तन में, हृदय-हृदय के हर स्पंदन में, शरीर के रोम-रोम में रचा-बसा है। राम हमारी धरती के पावन चंदन, देश के महनीय गौरव और दिव्यतम अवदान हैं। भारतीय संस्कृति ही अपर शब्दों में राम की संस्कृति है। भारत की संपूर्ण राष्ट्रीयता राम की चरितगाथा से अविच्छिन्न भाव से जुड़ी-गुंथी है। राम कथा ही ऐसी अमृत कथा है जो सारे देशवासियों के मन-प्राण में घुल गयी है, रच-बस गयी है। प्रांतगत और भाषागत संकीर्णताओं, से पार रामकथा कश्मीर से कन्याकुमारी, गुजरात से अरूणांचल प्रदेश तक प्रचलित-प्रवाहित है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में रामकथा वर्णित-अनुगुंजित है। इस रामकथा के सूत्रधार तथा प्रथम उद्गाता महर्षि वाल्मीकि हैं जिन्होंने राम के बहु-आयामी लोकोत्तर चरित्र का अनेकशः प्रिय-मांगलिक संगायन किया। किन्तु, राम का जो मर्यादावादी पुरूषोत्तम रूप आज के जन-जन के मानस में प्रतिष्ठित दिखता हैं, उसका चरित्रांकन-काव्यायन महाकवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास की अनूठी देन है।[1]

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम के व्यक्तित्व को इतने उदात्त और मंगलकारी रूप में प्रस्तुत किया है कि शताब्दियों के अन्तराल के बाद भी उनका 'रामचरित मानस' मानव मूल्यों की अनुपम निधि के रूप में सर्व-मान्य है। तुलसी ने रामकथा को मानवीय मूल्यादर्शों की महामंजूषा बना दिया है। मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत मानव-जीवन का संपूर्ण आचरण, व्यवहार, विचार चिन्तन, ज्ञान-विज्ञान, कला-साहित्य-धर्म और दर्शन तथा सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना समाहित मानी जाती है। तुलसी ने राम कथा के प्रसंगों और पात्रों के मध्य से 'रामचरितमानस' को एक ऐसी आचार-संहिता का रूप दिया है जो प्रत्येक देश, प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थिति-परिस्थति में प्रत्येक मनुष्य के लिए आचरणीय-अनुकरणीय, चिन्तनीय-माननीय और ग्रहणीय है। राम के चरित्र

* प्रधानाचार्य, पी. सी. पी. एम. इण्टर कॉलेज दरियापुर [छीछा] फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

को तुलसी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उससे हमारे वस्तुवादी-भौतिकवादी जीवन की प्रत्येक समस्या का आज भी समाधान हो जाता है।[2]

तुलसी समन्वयवाद के महान संपोषक और प्रतिस्थापक थे। उन्होंने जातिगत, विचारगत, पंथगत, धर्मगत, व्यवहारगत विभिन्न धाराओं-वादों-संस्कृतियों का समन्वय निरूपित और चरितार्थ किया है।[3] जैसे समुद्र में अनेक नदियां स्वतः आकर मिल जाती हैं, 'मानस' में अनेक विचारधाराएँ, अनेक दर्शन, अनेक संस्कृतियाँ सहजभावेन आकर समाहित हो जाती हैं। इसमें नर-वानर संस्कृति, सुर-असुर संस्कृति, जल-भू संस्कृति, पवन-पावक संस्कृति, और सबसे बढ़कर परमव्योम की पारलौकिक संस्कृति-इनसे भी संस्कृतियों का एक स्थान पर संगम दृष्टिगत-समंजित दिखता है। इस समन्वयात्मक सांस्कृतिक-संश्लेषित संपदा को रामकथा जैसी अमोल वस्तुधारा ही अपने में तिरोहित-विलयित कर पाती है।[4] सच तो यह है कि रामकथा युगीन और साम्प्रतिक जन-मन की पीड़ा-क्रीड़ा कथा है। राम और सीता कभी भी अपनी पीड़ा से पीड़ित नहीं थे वस्तुतः वे दूसरों की पीड़ा से अधिक व्यथित थे। उनकी संपूर्ण व्यथा, जागतिक व्यथा निवारण के लिए थी। इसी व्यथा की कथा वाल्मीकि-वाणी में 'रामायण' किंवा 'राम के अयन' का रूप धारण कर सकी थी, जिसे ही कालान्तर में तुलसीदास ने 'मानस' के रूप में प्रस्तुत किया। आदि कवि का काव्यार्थ मानवता की खोज है, जबकि गोस्वामी की गवेषणा जन-मानस की गहराई और सुधराई दृष्टिगत होती है।[5]

तुलसी के काव्य प्रतिमान और उनकी शिक्षा-संदेश सरिता का स्वरूप उदात्त कोटि का है। उनका काव्यादर्श सर्वजनसापेक्ष, सर्वजन विषमता अधताहारी तथा अशान्तियों का निवारक एवं सुरसरि सम सर्वहितसाधक है, जैसा कि उन्होंने स्पष्ट स्वीकार भी किया है *कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कँह हित होई।।*

उनकी कविता 'स्वान्तः सुखाय' है जिसका संकल्पित लक्ष्योद्देश्य समाज-बहुजन कल्याण हैं। उनकी चेतना लोकमंगल-उन्मुखी, शिक्षा-नीति सर्वजन मंगलकारिनि है। समन्वय-भाव उनके जीवन-दर्शन का अभिप्रेत है। उनका काव्य-संदेश, उनकी शिक्षा-जन-जन को हर्ष-विषाद, विषमता-विद्रूपता, अन्याय-अत्याचार से जूझने की प्रेरणा शक्ति प्रदान करता है। वे अपने पाठक समुदाय को स्वर्णिम आलोक से संयुजित करना चाहते थे उनकी समझ में 'मानस' एक ओर तो वर्तमान का नियामक है, दूसरी और भावी समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत भी है।[6]

'रामचरितमानस' ग्रंथरत्न है। वह मानव मात्र की संपत्ति है। इसके अध्ययन मात्र से मनुष्य, सच्चा मानव बन जाता है, पापी पुण्यात्मा, क्रोधी शान्त, निर्दयदयालु, उद्धत नम्र, तथा महानास्तिक तक परम आस्तिक बन जाता है।[7] इन गुणों से सिद्ध होता है कि गोस्वामी जी देश के युगीन नेता और एक बड़े समाज सुधारक थे।

तुलसीदास ने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक एवं राजनातिक अधोगति को बड़े नजदीक से देखा था। वे जानते थे कि मात्र निवृतिपरक ज्ञानोपदेश से समाज में व्यवस्था एवं संतुलन नहीं लाया जा सकता। उसमें आत्मविश्वास-आत्मबल जागृति के लिए भक्ति ज्ञान एवं कर्म समन्वित जीवन दर्शन की आवश्यकता थी। इसी हेतु तुलसी ने रामकथा का आश्रय ले, ऐसे आदर्शो की प्रतिष्ठा की जो युग के लिए सर्वथा ग्राह्य बना।

तुलसी का रामराज्य मात्र सामंती व्यवस्था का प्रतिमान न था, वह लोक-वेद की मान्यताओं, जन-विचारों का समर्थक है। राम ने अपनी प्रजा से स्वयं कहा है *जौ अनीति कछु भाषौं भाई,/ तौ मोहि वरजेहु भय बिसराई।*

जीवन में स्वीकृत नीतिसम्मत मूल्यों-मान्यताओं के प्रति तुलसी में अगाध श्रद्धा है। स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए लोक एवं वेद के सह-अस्तित्व को स्वीकार करने के साथ ही परम्परा एवं संस्कृति-सभ्यता में तुलसी ने अपनी आस्था व्यक्त कर, अपने व्यापक जीवन-दर्शन का परिचय दिया है।[8]

तुलसी हमारी वर्तमान संस्कृति के प्रणेता और मानवता के अमर संदेश वाहक थे उन्होंने जीवन के संस्कार हेतु जो निष्कर्ष निकाले, वे मुख्यतः मानस के विभिन्न प्रसंगों में संगुफित हैं। 'मानस' के प्रमुख पात्र विभिन्न परिस्थितियों में आदर्श और संतुलित व्यवहार करते प्रदर्शित हैं, यही कारण है कि आज की उदात्त मूल्यह्रासमान परिस्थिति में भी 'मानस' हमें निराशा, कुण्ठा से निकलकर जीवन संघर्ष में संलग्न होने की प्रेरणा देता है, अन्याय के विरूद्ध क्रांति को प्रोत्साहित करता है, समष्टि के लिए व्यष्टि के त्याग का परम संदेश देता है। तुलसी के राम अन्याय के विरूद्ध शस्त्र उठाने के लिए ही अवतरित हुए थे। रामावतार का उधेश्य ही रहा अधर्म-अनीति-अत्याचार का नाशकर देवत्व की संस्थापना *जब-जब होइ धरम की हानी,/ बाढ़ौं असुर महा अभिमानी। तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा,/ हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।*

'रामचरित मानस' हिन्दू धर्म, और हिन्दू सामाजिकता की इनसायक्लोपीडिया है। देश-काल-सीमा को पार कर चुका यह ग्रंथरत्न अब यूरोप, अमेरिका जैसे बड़े दूरवर्ती देशों में समादृत हो रहा है। 'रामचरितमानस' में निगमों की नैगमिकता, पुराणों की पौराणिकता, अध्यात्म रामायण की भक्ति, योगवशिष्ठ का दर्शन, महाभारत का पराक्रम और वाल्मीकि का दिव्य मानव के मानवीय जीवन के उतार-चढ़ाव का सम्यक् समावेश है।[9]

स्वाधीन भारत में अंकुरित ऊँच-नीच, अमीर-गरीब भेदोन्मूलन के भाव आज कहाँ दिखायी पड़ रहे हैं? जातिवाद वंशवाद के विष वृक्ष की जड़ें हमारी सांस्कृतिक भूमि में कितनी गहराई तक पहुँच गयी हैं, इसका अनुमान दुष्करण है।[10] ऐसे सांस्कृतिक संक्रमण-काल में, मानवता-नीति ह्रास निवारण के लिए तुलसी-साहित्य, विशेषकर 'रामचरितमानस' का पुनरावलोकन- अनुशीलन कितना जरूरी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। तुलसी के 'मानस' से धर्मानुमोदित राजनीति के स्वरूप का ज्ञान होता है, राजा के गुण और कर्त्तव्यों का ज्ञान होता हैं, आचरण की शुद्धता से स्वयं को शासित करने, जातिवाद, छुआछूत, भेदभाव को मिटाने और मानव-मानव से सौहार्द्र स्थापित कर 'वसुधैव कुटुम्बकम' के उच्चादर्श को अपनाने की सहज प्रेरणा मिलती है।

सन्दर्भ

[1]यदुवंश राम त्रिपाठी, शोभा सत्यदेव -*नैवेद्यं लोकाय समर्पयाव,* नैवद्य-2052

[2]वही।

[3]डॉ0 हौसिला प्रसाद सिंह -*तुलसी की सांस्कृतिक अवधारणा,* पृष्ठ संख्या 37

[4]डॉ0 पाण्डुरंग राव -*सांस्कृतिक विश्लेषण और राम चरित मानस,* पृष्ठ संख्या 8

[5]वही

[6]डॉ0 रामरंग पाठक -*तुलसी का समाज दर्शन,* पृष्ठ संख्या 65

[7]अंजनी नंदन शरण -*निवेदन, मानस-पियूष,* खण्ड-1 गीताप्रेस गोरखपुर

[8]डॉ0 रामरंग पाठक -वही, पृष्ठ संख्या 66

[9]अंजनी नंदन शरण -*मानस-पियूष,* खण्ड-1, गीताप्रेस गोरखपुर

[10]यदुवंश राम त्रिपाठी, शोभा सत्यदेव -नैवेद्यं लोकाय समर्पयाव, नैवेद्य-2052

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,64-67
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2016

डॉ. रामविलास शर्मा का हिन्दी नवजागरण सम्बन्धी विद्रोह

डॉ. ममता चौरसिया*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. रामविलास शर्मा का हिन्दी नवजागरण सम्बन्धी विद्रोह* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ममता चौरसिया* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी नवजागरण पर चर्चा करने से पूर्व नव-जागरण की अवधारणा पर विचार कर लेना ज्यादा समीचीन होगा। नव+जागरण के योग से बने नवजागरण का अभिधेयार्थ नई जागृति, नया उन्मेष, नया भावबोध है। लेकिन जब हम इस पर गंभीरतापूर्वक मंथन करेंगे तो पाएंगे की नवजागरण की अवधारणा का फलक बहुत ही गहरा तथा विस्तृत है। इस क्रम में नया जीवन दर्शन, नई विचार दृष्टि, प्रबोधन, औद्योगीकरण तथा अपनी जातीय अस्मिता की पहचान सन्निहित है। इसमें पुनरुत्थानवादी तथा सुधारवादी दृष्टि भी समाहित है; क्योंकि, 'पराधीनता के गहरे अहसास के संदर्भ में अपनी राष्ट्रीय तथा जातीय अस्मिता की खोज तथा अभिव्यक्ति, इस समय का सबसे बड़ा मुद्दा बनी और इसी क्रम में पुनरुत्थानवादी तथा एक ऐसे सुधारवाद का रूप सामने आया जो आगे की ओर देखने का भी हिमायती था, जैसा कि हम कह चुके हैं बहुतों के लिए यह समय उनके अपने मध्यकालीन संस्कारों तथा नवजागृत विवेक के बीच गहरे संघर्ष का समय बनकर भी आया।'[1]

नव-जागरण का गोमुख कुछ विद्वान आधुनिक युग मानते हैं, परन्तु वास्तव में नव-जागरण की शुरूआत आधुनिक काल न होकर मनुष्य सभ्यता का शुरूआती दौर है। विगत से अंश ग्रहणकर वर्तमान को परिष्कृत कर निरंतर गतिशील रहना मनुष्य की प्रकृति रही है, परन्तु प्रगतिशीलता की अवधारणा युगपरिवेश के अनुसार निरंतर परिवर्तित होती रही है और विकास के अनेक नए प्रतिमान गढ़ती रही है। इन प्रतिमानों की कसौटी पर तमाम जड़ताएं भी टूटी हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार, 'वह जमाना आधुनिकता और राष्ट्रीय आत्मपहचान के बीच अन्तर्क्रीड़ा का था। इनके बीच कभी तनाव झलकता था, कभी अन्तर्मिश्रण। यह एक बड़ा पेचीदा समय था। जो आज भी कम उद्वेलित नहीं करता।'[2]

उस समय विभिन्न क्षेत्रों में जागरूकता आई तथा आधुनिक विचारों का स्वागत किया गया। इस दौर में बदलाव की प्रक्रिया कभी तीव्र तो कभी मंद होती रही है। नव-जागरण का क्षेत्र बहु-आयामी था, 'किसी देश या उसके प्रदेश के सामाजिक-

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (दिल्ली) भारत। E-mail : mamatagyanoo@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सांस्कृतिक आंदोलन को हम नवजागरण कहते हैं। इसमें सामाजिक कु-रीतियों को दूर करने के प्रयत्न शामिल है। शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति को बदलने का प्रयत्न नवजागरण के अंग हैं।'[3]

डॉ0 रामविलास शर्मा नवजागरण को सांप्रदायिक अवधारणा तथा संकुचित सीमा से उठकर देखते हैं। अवधारणात्मक स्तर पर इसे लेकर विमर्शकारों में विविध विवाद है। इससे जुड़े मुददों को चर्चा में लाने का श्रेय डॉ0 रामविलास शर्मा को है। पारंपरिक अवधारणा का वे अनेक स्तरों पर खण्डन करते हैं। नवजागरण की परख वे केवल अकादमिक स्तर पर ही नहीं करते, बल्कि पूरे भारतीय समाज के स्वर्णिम पैमानों पर करते हैं। वर्तमान की चुनौतियों की आँच पर साहित्य को परखने के प्रयास के रूप में भी वे देखते हैं। साथ ही बिना किसी लाग लपेट के काल की पहचान भारतीय सन्दर्भ में करते हैं।

नवजागरण संबंधी उनकी अवधारणा सामंतवाद और साम्राज्यवाद विरोधी है उनकी स्थापना है कि बंगाल के नवजागरण में बुद्विवाद का असर है, महाराष्ट्र के नवजागरण में सुधारवाद का प्रभाव सघन है, जबकि हिन्दी नवजागरण में इन दोनों के साथ स्वाधीनता आन्दोलन की भी अनुगूंज है। इस बात को वे प्रमाण सहित सिद्ध करते हैं कि नवजागरण का गोमुख हिन्दी क्षेत्र है न कि बंगाल।

विद्वानों का यह मत कि यूरोपीय रेनेसा के सूत्र को पकड़कर ही 19वीं शताब्दी में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक सुधारों की नींव पड़ी। अनुकरण के राह पर कोई भी परिवर्तन हुआ, यह रामविलास शर्मा को मान्य न था। उनका मत था, 'आधुनिकता का पश्चिमी मॉडल 19वीं सदी के हिन्दी नवजागरण को समझने के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा है। यही वजह है कि देश के नवजागरण की अन्तधाराओं को न सांस्कृतिक राष्ट्रवादी अच्छी निगाह से देख पा रहे थे और न सार्वभौम आधुनिकता-वादी।'[4]

उन्होंने पूर्वकथित धारणा के अनुसार इसका दूसरा प्रेरक स्रोत उत्तर मध्यकाल है, का भी खण्डन किया। उनके अनुसार भारत में कभी भी 'अंधकार एवं बर्बरता का युग' नहीं आया है, जैसा कि यूरोप में रहा है। उनका कथन था कि यूनान में प्राचीनकाल के बाद अंधकार युग आता है। इटली में भी ऐसा ही अंधकार युग आता है। लेकिन भारत में ऐसी स्थिति कभी नहीं आयी। यहाँ पर अनेक विदेशी आक्रांताओं द्वारा नष्ट किए जाने पर भी शहर सांस्कृतिक विविधता-संपन्नता के साथ दुबारा जीवित हुए।

बुद्धिजीवियों का एक बड़ा वर्ग ऐसी सोच बनाए हुए है कि भारत में अंग्रेजों के आने के बाद यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास थोड़ा गतिशील हुआ। वे अंग्रेज़ी और पश्चिम को आधुनिकता के पर्याय के रूप में देखते हैं। डॉ0 रामविलास शर्मा भारत में अंग्रेज़ीराज की प्रगतिशील भूमिका का खण्डन करते हैं। इस संदर्भ में शंभुनाथ ने लिखा है, ''भारत में नवजागरण अंग्रेज़ीराज के संपर्क की देन है या टकराहट की या दोनो की मिली -जुली देन है, यह नवजागरण-अध्याय का एक बड़ा प्रश्न है----रामविलास शर्मा भारत में अंग्रेज़ीराज की प्रगतिशील भूमिका के सिद्धांत के कट्टर विरोधी हैं----उन्होंने यह कहा कि इस नवजागरण में आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन, देशी भाषाओं में शिक्षा, नई शिक्षा-पद्वति, भारतीय भाषाओं में साहित्य के विकास की धारणाएं भी जुड़ गई।''[5]

डॉ0 रामविलास शर्मा का तर्क था कि आधुनिक युग में हिन्दी नवजागरण भारत की अपनी परिस्थिति और ऋग्वैदिक काल से अब तक चली आ रही वैज्ञानिक विरासत का ही अगला चरण है। कु-रीतियों एवं आडंबरों के बहाने सामंती मूल्यों को इस समय चुनौती दी जा रही थी। हिन्दू मुस्लिम एकता और अछूतोद्धार के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना पल्लवित हो रही थी। जातीय भाषाओं में साहित्य सृजन की श्रीसंपन्नता की पराकाष्ठा के माध्यम से एक नए तरह के सांस्कृतिक वातावरण का सृजन हो रहा था। उनका कथन था, ''नवजागरण तभी सार्थक होता है, जब वह धार्मिक अंधविश्वास को निर्मूल करे। इन अंधविश्वासों से लड़े बिना दंगे रोके नहीं जा सकते और दंगे रोके बिना स्वाधीनता आंदोलन शक्तिशाली नहीं हो सकता, स्वाधीन भारत का निर्माण नहीं हो सकता, कितना भी प्रचार किया जाए, नवजागरण सफल नहीं हो सकता।''[6]

डॉ0 रामविलास शर्मा के नवजागरण संबंधी चिंतन का एक पक्ष यह भी है कि उन्होंने माना कि सन् 1857 की क्राति का नेतृत्व गैर-पूंजीवादी शक्तियों के हाथ में था। लेकिन उन्होंने यदि नवजागरण का उद्गम हिन्दी प्रदेश, हिन्दी जाति और हिन्दी भाषा से माना तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे मुस्लिम जगत और उर्दू को अनदेखा करते हैं। इसके अभाव में

हिन्दी नवजागरण मात्र हिन्दू नवजागरण होकर रह जाता और जो लोग उनके ऊपर इस तरह का आरोप प्रत्यारोप लगाते हैं, उन लोगों की समस्या यह है कि वह उन्हें समग्रता से पढ़कर समझने तथा मूल स्रोतों तक जाने से बचते रहे हैं।

नवजागरण का मूल उत्स डॉ0 रामविलास शर्मा ऋग्वैदिक काल तक ले जाते हैं और इसका उद्‌गम ऋषि मुनियों की दार्शनिक प्रणाली में स्थापित करते हैं। वे उपनिषद् काल को दूसरे उन्मेष के रूप में देखते हैं। जहाँ साहित्य, दर्शन, चिंतन एवं लौकिक ज्ञान का आगार था। उनके अनुसार, ''यह नवजागरण अतीत के प्रति भावुकता, पुनरुत्थानवाद और रहस्यवाद की दृष्टि नहीं अपनाता। इसलिए हिन्दी में अद्वैतवाद, उपनिषदों और रहस्यवाद की चर्चा 1920 से पहले कम होती है। हिन्दी नवजागरण मूलतः बुद्विवाद और रहस्यवाद विरोधी है।''[7]

डॉ0 रामविलास शर्मा की यह धारणा कि भौतिकतावादी अथवा पदार्थवादी दर्शन का उत्स प्राचीन साहित्य है। वैदिक तथा औपनिषदिक कवियों के श्लोकों में श्रम की गरिमा का बोध और समाज की जनवादी विशेषताएं मौजूद थी, उनकी स्थापना थी। इस कारण अनेक विद्वान उन पर आर्य समाजी होने का आरोप भी लगाते है; लेकिन क्या वास्तव में डॉ0 शर्मा पर आर्यसमाजी होने का आक्षेप लगाया जाना तर्कसंगत है? रामविलास शर्मा द्वारा नवजागरण के प्रबल पक्ष को प्रस्तुत करने के बावजूद भी नामवर सिंह का यह यह विवेचन प्रायः यथोचित दिखाई नहीं पड़ता है, ''रामविलास जी का यह आक्रामक प्राच्यवाद दयानंद के यथार्थवाद से ज्यादा खतरनाक है क्योंकि यह आज संघ परिवार के फॉसिस्ट इरादों को एक हथियार प्रदान कर रहा है- बंदर के हाथ में उस्तरा देने से भी खतरनाक।''[8]

यद्यपि दोनों साहित्यकार समकालीन हैं, एक दूसरे से परिचित हैं, आलोचना के क्षेत्र के हैं इसलिए नवजागरण का मूल्यांकन सुधी विद्वानों के ऊपर निर्भर है।

नवजागरण की अगली कड़ी के रूप में डॉ0 रामविलास शर्मा भक्तिकाल को देखते हैं। संतों, भक्तों, सूफियों के साहित्य सृजन में नवजागरण का गहरा स्पंदन छुपा हुआ है। इस काल खण्ड का साहित्यिक धरातल जातिप्रथा की जकड़न को तोड़कर औपनिवेशिक पूंजीवादी व्यवस्था से सीधे टकराता है, इसे डॉ0 शर्मा 'लोकजागरण' कहते हैं, ''उन्होंने हिन्दी जातीय निर्माण का कालखण्ड भी यही माना और हिन्दी नवजागरण को लोकजागरण के रूप देखा। अमीर खुसरो और विद्यापति से लेकर भक्ति साहित्य और घनानंद, पद्‌माकर तक का काल लोकजागरण का काल है, जब धार्मिक रूढ़िवाद और अंधविश्वास को चुनौती दी गई।''[9]

यहाँ से पूरे भारतीय साहित्य का ही नहीं, बल्कि आधुनिक साहित्य का भी वे शुरूआत मानते हैं। जो अब तक के उनके चिंतन का सबसे विवादास्पद पक्ष रहा है और यह पारंपरिक विद्वानों पर फतवा जारी करने जैसा है। उनकी यह अवधारणा एक ओर भारत में विकसनशील पूंजीवाद को यूरोप के पूंजीवाद से अधिक विकसित सि़द्ध करती है तो वहीं दूसरी ओर यूरोपीय रेनेसा के टक्कर में भारतीय 'लोकजागरण' को स्थापित करती है, ''नवजागरण का एक महत्वपूर्ण चिह्न है देश की वैचारिक चिंगारियों को इकटठा करके राष्ट्रीय लपट में बदलना।''[10]

रामविलास शर्मा के नवजागरण संबंधी ऐसे अनेक सवाल हैं जो 19वी सदी के नवजागरण के पुरोधाओं को सीधे कटघरे में खड़ा कर उनसे प्रश्न करते हैं। वीर भारत तलवार नवजागरणकालीन लेखकों समाज सुधारकों और बुद्धिजीवियों के त्रिकोणीय पक्ष पर विस्तार से चर्चा करते हुए कहते हैं कि 19वीं सदी का नवजागरण एक तरह के आत्मप्रवंचन का शिकार था जा नवजागरण के केंद्रीय मुद्‌दे स्त्री प्रश्न पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

रामविलास शर्मा के नवजागरण संबंधी चेतना का एक पक्ष यह है कि वे हिन्दी प्रदेश में नवजागरण की शुरूआत का तीसरा चरण सन् 1857 की क्रांति मानते हैं, परन्तु भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों की दृष्टि ठीक इसके विपरीत है। वीर भारत तलवार का यह कथन है, ''राजा शिवप्रसाद बहुत नग्न ढंग से भारतीयों की निंदा और अंग्रेजों की तारीफ करते थे। लेकिन भाटों की परंपरा पर चलते हुए भारतेन्दु ने ड्यूक आफ एडिनबरा की नगरवधू की मुँह दिखावनी से लेकर महारानी के जीवनरक्षा के लिए अपने स्कूल के बच्चों से गीत गवाने तक, अंग्रेजों की तारीफ में समय समय पर जो गीत बनाए, आज की दृष्टि से वे भी उतने ही कुरूचिपूर्ण और भद्‌दे थे। 19वी सदी में राजनीतिक दृष्टिकोण रखने वाले सभी नवजागरणकर्मी अंग्रेजीराज के समर्थक थे।''[11] बजरंग तिवारी ने भी 'नवजागरण के हिन्दी क्षेत्र' शीर्षक लेख में इसकी चर्चा की है। भारतेन्दु ने 1857 के विद्रोह को दबाने वाले लॉरेंस की प्रशंसा में कसीदे पढ़े। 'महात्मा' कहकर उन्हें संबोधित किया। कुछ ऐसा ही संकेत प्रतापनारायण मिश्र के लेख

'हम राजभक्त हैं' से भी मिलता है। इस प्रकार डॉ0 रामविलास शर्मा परंपरावादियों की नवजागरण संबंधी अवधारणाओं का खण्डन करते हैं और उनकी फैलाई हुई भ्रान्तियों को तर्क और प्रमाण के आधार पर खारिज करते हैं जो अनेक विवादों को जन्म देता है। हिन्दी नवजागरण को वे भारतीय संदर्भों और हिन्दी परिवेश के सोपान के रूप में देखते हैं। इस प्रकार ऐसे अनेक ऐसे मुददे हैं जिस पर डॉ0 रामविलास शर्मा ने विद्वानों से असहमति जताई है, उनकी अवधारणाओं को शब्दों के सीमित दायरे में बाँध पाना संभव नहीं है।

संदर्भ

[1]भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण - शंभुनाथ, पृष्ठ संख्या 15, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

[2]भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण -शंभुनाथ, पृष्ठ संख्या 7, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

[3]समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 167, रामविलास शर्मा विशेषांक, पृष्ठ संख्या 49

[4]भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण (नवजागरण का पुर्नपाठ लेख से) डॉ0 शंभुनाथ, पृष्ठ संख्या 183, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

[5]रामविलास शर्मा - शंभुनाथ, पृष्ठ संख्या 85, साहित्य अकादमी, संस्करण 2013

[6]रामविलास शर्मा - शंभूनाथ, पृष्ठ संख्या 87, साहित्य अकादमी, प्र0सं0 2011

[7]महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण -रामविलास शर्मा, पृष्ठ संख्या 179, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977

[8]इतिहास की शव साधना लेख से नामवर सिंह, आलोचना, पृष्ठ संख्या 244

[9]समकालीन भारतीय साहित्य, अंक 167, पृष्ठ संख्या 51

[10]भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण -डॉ0 शंभुनाथ, पृष्ठ संख्या 155, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

[11]वही, पृष्ठ संख्या 195

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,74-76
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 जून 2016

"उपनिषदों में प्रतिबिम्बित मूल्यादर्श एवं शिक्षा के स्वरुप का समीक्षात्मक अध्ययन"

जय प्रकाश नारायण*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"उपनिषदों में प्रतिबिम्बित मूल्यादर्श एवं शिक्षा के स्वरुप का समीक्षात्मक अध्ययन"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *जय प्रकाश नारायण* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मूल्यादर्शों का जीवन में अत्यंत महत्व है। मूल्यादर्शविहीन जीवन अंतहीन भटकन है जिसकी न कोई मंजिल है और न राह, ऐसे जीवन की दशा उस नाव की भाँति है जिसका मल्लाह नदारत हैं अथवा फिर बेखबर सोया हुआ है। अनुभव इस बात का प्रमाण है कि जीवन के सागर पर तूफान हमेशा बने रहते हैं। लक्ष्यादर्श न हो तो जीवन की नौका के डूबने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं बचता। आदर्श जब तक विचार रूप में रहते हैं, उनकी शक्ति परिणामकारी नहीं होती, लेकिन जब वे किसी के व्यक्तित्व और आचारण में ठोस रूप लेते हैं, तो उनसे विराट शक्ति और महत् परिणाम उत्पन्न होते हैं।[1]

आदर्श सघन तम से महासूर्य की ओर उठने की आकांक्षा है। जिसे यह आकांक्षा विकल-बेचैन नहीं करती, वह हमेशा अंधकार में ही पड़ा रहता है। यह साहस भरा संकल्प भी है। आदर्श कठोर श्रम की कठिन तपसाधना भी है, अविराम श्रम-साधना के अभाव में कोई बीज कभी वृक्ष नहीं बनता। अतएव, लक्ष्यादर्शो की राह पर चलना प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति के लिए अपरिहार्य हैं।[2]

प्राचीन भारत में प्रणीत उपनिषद् अमूल्य मूल्यादर्शो से संयुचित-संबलित हैं। इसलिए ये अपने जन्मकाल से लेकर अध्यावधि महनीय हैं, और सफल जीवन के लिए संस्कृति के प्राणस्वरूप हैं। इसी से भारतीय संस्कृति को 'आर्य-संस्कृति' कहा जाता है।[3]

भारतीय धर्म एवं दर्शन के मूल ग्रन्थ वेद हैं जिनका परमोत्कर्ष उपनिषदों में मिलता है। वेदों की अन्तिम शब्दराशि ही 'उपनिषद्' की संज्ञा से अभिहित है। अन्तिम भाग होने से इसे 'वेदान्त' की संज्ञा भी प्राप्त है। आत्मतत्त्व के ज्ञान के लिए तथा ब्रह्म ज्ञान-रहस्य को जानने के लिए उपनिषद् ग्रन्थ प्रकाश-पुंज माने जाते हैं। इन्हें ज्ञान का आदि स्त्रोत और विद्या का अक्षुण्ण भण्डार कहा गया है। इसी तथ्य के आधार पर डॉ0 राधाकृष्णन ने स्पष्ट कहा है- ''मनुष्य के आध्यात्मिक इतिहास

* प्रधानाचार्य, पी. सी. पी. एम. इण्टर कॉलेज दरियापुर [छीछा] फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में उपनिषद् एक वृहत् अध्याय की तरह है और पिछले तीन हजार वर्षों से ये भारतीय दर्शन, धर्म और जीवन को बराबर शासित करती जा रही है।[4]

औपनिषदिक शिक्षा से एक नूतन आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि तथा दार्शनिक तर्कसरणि उपलब्ध होती है। उपनिषद्- समूह वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे आलोक की अनेक सरिताएं निकल कर इस पावन भूमि को अवगाहित करती है तथा मानव मात्र के ऐहिक कल्याण एवं आमुष्मिक मंगल का निष्पादन करती हैं। उपनिषद् वह आधार-शिक्षा है जिस पर हजारों मनुष्यों का विश्वास अधिष्ठित है। भारतीय तत्त्व ज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदों में मिलता है, उतना अन्यत्र प्राप्त नहीं है।

उपनिषदों के गर्भ में अनेक रहस्य निहित हैं जिनका अवगुंठन हटाना सरल नहीं हैं, इसीलिए इन्हें अद्भूत रहस्यों की उद्भाविका कहा गया है।[5]

उपनिषद् सनातनधर्मी और कालातीत हैं। इनमें निहित सत्य ईश्वर के मुख से निकले माने जाते हैं। उपनिषदों का विषय 'वेदान्त विज्ञान' है। ऋचाओं और ब्राह्माण-ग्रन्थों में सूक्तों और पूजा-पद्धतियों का विवेचन मिलता है, वेद का कर्मकाण्ड भाग आता है, जबकि उपनिषदों में ज्ञानकाण्ड विवेचित मिलता है। उपनिषदों में वस्तुतः एक ऐसे आध्यात्मिक जीवन का दर्शन मिलता है जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में एक-सम सिद्ध दिखता है। उपनिषद् व्यवस्थित चिन्तन से अधिक आत्मिक आलोक के साधन के रूप में लाभकारी दृष्टिगत हैं। ये सामान्य सभी सीमाओं से आगे बढ़ कर मानव को अन्तः प्रेरित करती दिखायी पड़ती हैं।

उपनिषदों में अनेक विचारधारायें प्रवाहित दिखती हैं, किन्तु उन सबका लक्ष्य एक ही तत्त्व का निरूपण है जिसे कहीं सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया हैं।[6] और कहीं पर उसे आत्मा की संज्ञा दी गयी है।[7]

धर्म की सर्वोच्च शिक्षा उपनिषदों में उपलब्ध होती हैं, जिससे उपनिषदें हमारे दैनिक जीवन से सुसम्बद्ध होती प्रतीत होती हैं। उपनिषदें आत्म-शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान करने वाली अक्षय निधि हैं। मानव जाति को यदि अपने नैतिक बल और अस्तित्व को बनाये रखना है तो निश्चय ही उसे उपनिषदों का अध्ययन एवं मनन करना होगा।

उपनिषद् न केवल आध्यात्मिकता की व्यंजना करती है, अपितु वे हमारे नैतिक जीवन को आलोकित भी करती हैं। वे युग की दृष्टि से सुदूर होते हुए भी अपनी चिन्तन-निधि से सुदूर नहीं हैं। वे शक्ति की अजस्र स्त्रोत हैं। उपनिषद् सभी सीमाओं से ऊपर उठकर मानव को अन्तः प्रेरित करती हैं। उनमें निरूपित शैक्षिक मूल्यादर्श छात्र और अध्यापक समाज का परम उपकार करने में अद्यावधि यथेष्ट समर्थ है।

प्रत्येक समाज तथा राष्ट्र के कुछ आदर्श होते हैं जिन्हें मूल्यों की भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है। शिक्षा के माध्यम द्वारा इन मूल्यों को चरितार्थ किया जाता है।

मूल्यादर्शों को आचरण की संहिता अथवा सरमसता, आनंद और प्रगति की ओर उन्मुख व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[8] व्यक्ति जीवन में विभिन्न कोटि के दर्शनों-विषयों-पदार्थों यथा सृष्टि, राष्ट्र, धर्म, समुदाय, परिवार, व्यवसाय आदि से जुड़ता है और इनमें से प्रत्येक के अपने मूल्यादर्श होते हैं जिनका परिपालन उसके लिए अभीष्ट होता है। इसीलिए जीवन-मूल्यों की अनेक कोटियाँ चिन्तकों-मनीषियों ने बतायी है जैसे- शाश्वत मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, पारिवारिक मूल्य, सामुदायिक मूल्य, व्यवसायगत मूल्य आदि। शाश्वत मूल्यों को ही दूसरें शब्दों में आध्यात्मिक मूल्य कहा जा सकता है। इसी प्रकार शैक्षिक मूल्यों की, शैक्षिक आदर्शों की भी एक पृथक् कोटि शिक्षाविदों ने गिनायी-बतायी है। कहना न होगा- भारत के सुदूर अतीत में प्रतिपादित-निरूपित उपनिषद- सरणि इन्हीं परम मूल्यवान मूल्यादर्शो आध्यात्मिक, शैक्षिक-नैतिक, धार्मिक से विशेषतया अभिमंडित-संयुजित हैं। यही कारण है कि इन उपनिषदों की उपयोगिता देशकालातीत है।

आज हम इतिहास के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहाँ मूल्यों के बीच संघर्ष मचा हुआ है। मूल्यों के सम्बन्ध में एक विवादास्पद प्रश्न चिरन्तन एवं तात्कालिक मूल्यों के सम्बन्ध में है। प्राचीन भारतीय साहित्य में दोनों ही प्रकार के मूल्यों को स्वीकार किया जाता है। एक ओर शिक्षा का चिरन्तन आदर्श आनन्द की प्राप्ति है, तो दूसरी ओर सांसारिक उपलब्धियों को आत्मिक आनन्द की प्राप्ति के लिए सहायक माना गया है। तात्कालिक मूल्य यदि साधन है, तो चिरन्तन मूल्य साध्य हैं। दोनों प्रकार के मूल्यों में समन्वय दिखाई देता है।

इधर कुछ वर्षों में भारत में जीवनादर्शो, जीवन-मूल्यों का पर्याप्त अपकर्ष हुआ है। जीवन के सभी क्षेत्रों में मूल्यादर्शों का तीव्र गति से ह्रास हुआ है। मूल्यों के अच्छे-बुरे होने की कसौटी लोक कल्याण होता है। जीवन-व्यवहार एवं शिक्षण के क्षेत्र में भी आज मूल्यों और आदर्शों का अधः पतन होता जा रहा है जिसकी ओर श्री आर0 हरिहरन ने भी अपने आलेख में बिन्दुवार इंगित किया है-

मूल्यादर्श क्षरणः बिन्दु द्वादशी; 1. पेशागत नीति-ज्ञान का अभाव, 2. उत्तरदायित्व का अभाव, 3. सम्प्रेषण कुशलताओं की कमी, 4. परीक्षा-व्यवस्था में बेईमानी, अनुचित आचरण, नकल, 5. रहस्य, समूह अध्ययन का अभाव, ज्ञानार्जन में कमी, 6. अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा, 7. सामुदायिक भावना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का अभाव, 8. उदासीनता, अध्यापकों के प्रति अनादर, संस्था नियमों की अवहेलना, 9. स्वार्थसना व्यवहार, 10. संस्थागत परिसम्पत्तियों एवम् परिसर-परिवेश के प्रति अरूचि-असम्बद्धता, 11. रैगिंग, प्रायः हिंसात्मक एवं अशिष्ट आचरण, तथा 12. खराब आदतों- यथा मद्यपान, अश्लील हरकतें आदि।

नूतनता और प्राचीनता का संघर्ष, महानगरों की आपाधापी, आधुनिकीकरण और अभावों का विस्फोटक मिलन, लोक-तन्त्रीय राजनीतिक मूल्यों का क्षरण और अन्तर्कलह से सम्पूर्ण मानव समाज अशान्त, त्रस्त, शोषित एवं भयभीत हो रहा है। जब भारतीय समाज पतन के गर्त में जा रहा है, ऐसी दशा में शिक्षा-संस्थाओं में उदात्त आदर्शों एवं मूल्य-शिक्षा की अनिवार्यता बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 1986 के दस्तावेज में भी जीवन-मूल्यों के ह्रास पर चिन्ता प्रकट की गयी है। अतः शिक्षा व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है। जिससे सामाजिक, राजनैतिक, जनतांत्रिक, राष्ट्रीय नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके। शिक्षा के द्वारा उन शाश्वत मूल्यों का विकास होना चाहिए जो हमारे देशवासियों को एकता की ओर ले जायें। इन मूल्यों से सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता, आतिथ्य सत्कार, सेवा-भाव, ईमानदारी, पारस्परिक आदान-प्रदान, न्याय, दृष्टिकोण की विशालता, अच्छे मानवीय सम्बन्ध, कर्तव्य-परायणता आदि भावों-गुणों के विकास में सहायता मिलनी चाहिए। भारत की सांस्कृतिक और शैक्षिक परम्परा महान् रही है। वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान निश्चय ही प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था और उसके ग्रन्थों में खोजे जा सकते हैं। मूल्यादर्शों और शिक्षा की दृष्टि से उपनिषद् अमूल्य निधि हैं। भारतीय शिक्षा-दर्शन का सार और मूल्यों की एक अच्छी सरणि यदि कहीं देखना है तो वे उपनिषदों में दिखाई देंगे।

उपनिषदों को भारतीय दर्शन का पोषक-मूलाधार कहा जाता है। उपनिषदों में निहित ज्ञान के पठन-पाठन, अध्ययन-अनुशीलन से प्रकाश की दिव्य किरणें प्राणियों की अन्तरात्मा में उद्भूत होती है। आत्म-कल्याण मार्ग इनकी सहायता से प्रशस्त हो सकता है। जीवन की गतिविधियों को किन आदर्शो पर आधारित करना चाहिए इसकी सच्ची निर्देशिका उपनिषद् ही है। उपनिषदों को जीवन का सर्वांगपूर्ण दर्शन ही कहना चाहिए। लौकिक एवं पारलौकिक वाह्य एवं आन्तरिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के दोनों पक्ष जिसके आधार पर समुन्नत होते हैं ऐसे महत्वपूर्ण विचार इनमें संकलित हैं।

सन्दर्भ

[1]*स्वामी विवेकानन्द* -अखण्ड ज्योति, वर्ष-68, अंक-11 पृष्ठ संख्या 3

[2]*डॉ0 प्रणव पांड्या* -अखण्ड ज्योति, नवम्बर-2004 आदर्शो की राह

[3]आचार्य अक्षय कुमार वेदोपाध्याय -*उपनिषदों की दिव्य शिक्षा,* पृष्ठ संख्या 37

[4]*उपनिषदों की भूमिका,* पृष्ठ संख्या 13

[5]*The Upnishadas contain a secret which is not easy to explore or unreveal.* The term upnishad essentially means "The secret of rahasyam" studies in the Upnishadas P-10

[6]वृहदारण्यक उपनिषद्, 1/4/10

[7]ऐ.उ0, 1/1

[8]R. HARIHARAN; *Values and Ethics in Technical Education,* University news Volume 41, No. 23, Page-1

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,77-80
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2016

स्वयंसहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण

डॉ. मणि मेखला शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्वयंसहायता समूह के माध्यम से महिला सशक्तिकरण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मणि मेखला शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

आज समूचे विश्व के क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी कर्तबगारी का परचम फहराया है, यह वास्तव में हमें दिखाई देता है। कुछ देशों की राजनैतिक व्यवस्था में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त कर महिलाओं ने अपने कार्यशैली तथा नेतृत्व की क्षमता का परिचय दिया है। भारत जैसे विश्व के सफलतम लोकतंत्र की प्रमुखता राष्ट्रपति के रूप में एक महिला थी। तथा लोकतंत्रिक व्यवस्था का प्रमुख आधार संसद की अध्यक्षता का भी वहन एक महिला कर रही है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था को बलशाली बनाने में जिन-जिन अंगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, ऐसी सभी भूमिकाओं में आज हमें महिलाओं की उपस्थिति विशेष रूप से दिखाई देती है। इतना ही नहीं बड़ी-बड़ी वित्तीय संस्थाओं और अन्य संस्थाओं की प्रमुखपद महिलाएं संभाल रही हैं। लेकिन व्यापक रूप से देखा जाए तो भारतीय सामाजिक स्तरिकरण की प्रक्रिया में भी पुरूषों की तुलना में स्त्री की स्थिति निम्न रही है। भारत में लैंगिक विषमता की प्रकृती को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने को प्रयास करें तो यह बात बिलकुल साफ हो जाती है की, पुरूष वर्चस्व की राजनीति, विवाह, परिवार और उत्तराधिकार जैसी मूलभूत संस्थाओं से शुरू होती है। फिर धर्म, परम्पराओं नैतिकता और कानूनों अधिकारों से वंचित कर उसे कमजोर किया गया। इस तरह पुरूष कर्चस्व के साये में एक ऐसे पितृसत्ताक पारिवारीक सामाजिक ढाँचा खड़ा हुआ जहाँ स्त्री का जीवन, श्री, शरीर और उसकी कोख तक पर पुरूष का अधिकार हो गया और उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गयी। 16वीं सदी में स्त्रियों से जुड़ी कु-प्रथाओं, कु-रीतिओं का अंत करने एवं महिला उत्थान के लिए जो समाज सुधारक आगे आये उनमें ज्योतिराव फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, राजा राममोहन राय, सवित्रीबाई फुले, डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर आदि का अपूर्व योगदान रहा है। इन सुधारवादियों द्वारा किए गये स्त्री शिक्षा के प्रचार, सती प्रथा समाप्ति, विधवा-पुनर्विवाह, उन्हें राजनैतिक, सामाजिक अधिकार प्रदान कराने के सफल प्रयासों में महिलाओं को स्वावलम्बी बनाकर सशक्त करने का प्रयास किया।

वर्तमान युग में विकास की परिभाषा ऋण के जरिये विकास करना ऐसी बनती जा रही है। फिर चाहे वो आंतरराष्ट्रीय स्तर पर विश्व बैंक हो या राष्ट्रीय स्तर पर देश की सरकारें हो, सभी अब ऋण के माध्यम से विकास करना चाहिये इस बात पर जोर दे रहे है। छोटे-छोटे ऋणों का लघुऋण का नाम दिया जा रहा है। लघुऋण अपना दायरा बड़ी तेजी से भारत मे नहीं

* सहायक प्राध्यापिका, राजनीतिशास्त्र विभाग, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाईनगर (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बल्की अमीर और गरीब देशों में बड़ी तेजी बढ़ा रहा है। जब से नोबेल पुरस्कार विजेता और ग्रामीण बैंक बांग्लादेश के संस्थापक मुहम्मद यूनुस ने यह बात साबित कर दी की लघुवित्त ऋण देने वाले दोनों ही के लिये लाभदायक है। तब से सरकार, लघुवित्त ऋण संस्थान, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बैंक लघुऋण वितरण कार्य कर रही है। मुहम्मद यूनुस ने अपने अर्थशास्त्रीय ज्ञान का उपयोग गरीबों के दुख दूर करने में प्रयुक्त करके यह दिखा दिया की ज्ञान को केवल डिग्री के रूप में नहीं देखा जा सकता बल्कि उसका व्यवहारिक इस्तेमाल भी जरूरी है। उन्होंने 1970 में ही लघुवित्त आंदोलन की शुरूआत की थी, जिसके तहत गरीबों विशेषकर औरतों को बिना किसी शर्त के ऋण देने की व्यवस्था की गई थी आज लघुवित्त आंदोलन विश्व के 7 हजार संस्थाओं द्वारा चलाया जा रहा है। जिससे लगभग 1 करोड़ 6 लाख लोगों के रोजगार दिया जा रहा है। भारत में लघुऋण कार्यक्रम को स्व-सहायता समूह के नाम से जाना जाता है। विभिन्न रिपोर्ट और लेखों के आंकड़ों के अनुसार, फिलहाल भारत में लघुऋण कार्यक्रम को स्व-सहायता समूह के नाम से जाना जाता है। विभिन्न रिपोर्ट और लेखों के आंकड़ों के अनुसार, फिलहाल भारत में कम से कम 70-80 लाख समूह बने हुए हैं, जिसके जरिऐ 7-8 करोड़ परिवारों तक पहुंच बनाने का दावा किया जा रहा हैं और इनमें से लगभग 92 प्रतिशत स्व-सहायता समूह सिर्फ महिलाओं के हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लघुऋण कार्यक्रमों में भाग लेनेवाले सदस्यों में 80-85 प्रतिशत जनसंख्या महिलाओं की है। 90 के दशक में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए एक सर्वे में पाया गया कि, (1) विश्व में 67 प्रतिशत आय महिलाओं के परिश्रम से निर्माण होता है और उनमें केवल 10 प्रतिशत आयपर महिलाओं का अधिकार होता है। (2) विश्व के पूंजी में से केवल 1 प्रतिशत पूंजीपर महिलाओं का अधिकार है। (3) खेत में और मकान बनाने जैसे काम में मजदूरी करने वाली महिलाओं को वही काम करने वाले पुरूष की तुलना में 40 से 60 प्रतिशत कम मजदूरी मिलती है। (4) विश्व में महिलाओं के निरक्षरता का प्रमाण जनसंख्या के 2/3 हिस्सा है। (5) कुल अत्याधिक गरीब जनसंख्या 60-65 प्रतिशत महिलाएं है। अर्थात गरीबी का असली चेहरा एक महिला का है। इसके आधार पर गरीबी के मुद्दे पर अधिक से अधिक महिलाओं तक पहुंच बनाने पर जोर दिया गया। महिलाओं द्वारा लिया गया ऋण परिवार एवं पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इस्तेमाल होता है। महिलायें कर्ज वापसी में पुरूषों की तुलना में अधिक अनुशासित व प्रतिबद्ध होती है इसलिये अधिकार लघुऋण कार्यक्रम महला समूहों के साथ काम कर रहे हैं। स्व-सहायक समूह का उद्देश्य गरीबी उन्मूल ही नहीं बल्कि महिला सशक्तिकरण भी है।

आज देश में 'स्त्री और पुरूष' समानता का दौर शुरू हो गया है। वैश्विक स्तर पर स्त्री-पुरूष समानता को महत्ता प्रदान की जा रही है। क्योंकि शिक्षा, स्वास्थ, रोजगार-निर्णय जैसे क्षेत्रों में महिला का उचित विकास नजर नहीं आता। अतः महिलाओं को उनके मूलभूत अधिकार के साथ-साथ आत्मसम्मान प्राप्त करा देना समय की पुकार बन गई है।

भारत में भी स्वतंत्रता के पश्चात् महिला सबलीकरण के लिए अनेक योजनाएं कार्यान्वित की गई। महिला सबलीकरण पर जोर देकर तथा महिला को सक्षम करने के लिए 'स्वयं सहायता आंदोलन' बड़े जोर शोर से जारी है। ग्रामीण क्षेत्रों के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों की भी जो महिला 'गरीब रेखा के नीचे जीवनयापन' कर रही है। 'स्वयं-सहायता' सभी के सर्वांगीण विकास का आंदोलन बन गई है। क्योंकि इस आंदोलन के द्वारा महिलाओं का आर्थिक, शैक्षणिक, व्यक्तिगत और सामाजिक विकास हो सकता है।

बचत समूह की पार्श्वभूमि

शहरी व ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की विकास करना, उन्हें आर्थिक स्वावलंबन प्राप्त करने का साधन प्रदान करना, इस दृष्टि से 'स्वयं-सहायता बचत समूह' की ओर देखा जाता है। 'स्वयं-सहायता समूह' के जनक के रूप में 'मोहम्मद-यूनुस' जाने जाते हैं। मोहम्मद-यूनुस' जो बाग्लादेश के अन्तर्गत 'चिंत्तगांव-विश्वविद्यालय' में अर्थशास्त्र विषय का अध्यापन कार्य करने वाले है। जिन्हें 2006 में शान्ति के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। इसी महान व्यक्ति ने 'स्वयं-सहायता समूह' की शुरूआत की। जिसे आज 'बचत-समूह' 'स्वयं-सहायता' आदि नाम से संबंधित किया जाता है।

महिला-सक्षमीकरण

'सक्षमीकरण' का अर्थ है अनेक मूलभूत अधिकारों से उन्हें परिचित करा देना, आत्मसम्मान प्रदान करना, आत्मनिर्भर करना, उसी प्रकार महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक दृष्टि से सक्षम करना है।

'सक्षमीकरण' एक आंदोलन है। जिसमें 'स्वयं-सहायता समूह' के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में अपनी स्वतंत्र पहचान दी है। उसी के तहत वर्ष 2001, भारत सरकार ने 'महिला-सबलीकरण' वर्ष घोषित किया है। इसके द्वारा महिलाओं के विकास के लिए अनेक योजनायें कार्याविन्वत की गई।

स्वयं-सहायता समूह द्वारा महिलाओं का सबलीकरण

आज 'स्वयं-सहायता बचत समूह' के द्वारा महिलाओं का सबलीकरण हो रहा है। सर्वांगीण विकास हो रहा है। जिसमें प्रमुख रूप से आर्थिक सबलीकरण, सामाजिक सबलीकरण, राजनैतिक सबलीकरण हो रहा है।

'स्वयं-सहायता समूह' द्वारा महिलाओं को उद्योग, रोजगार हेतु आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। जिसके द्वारा स्वयं सहायता समूह विभिन्न छोटी-छोटी वस्तुएं उत्पादित करते है जैसे- कलम, खड़िया, डस्टर, फिनाइल, मोमबत्ती आदि से संबंधित कुटीर उद्योग। तो दूसरी और आंगनबाड़ी के बच्चों के लिए पोषक-आहार पूर्ति करने को कार्य स्वयं सहायता समूह को दिया जा रहा है। साथ ही विविध प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्हें वस्तुओं की बिक्री-व्यवस्था, कर्ज चुकाने आदि के बारे में मार्गदर्शन प्राप्त हो रहा है। साथ ही विविध प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्हें वस्तुओं की बिक्री हेतु प्रोत्साहित किया जा रहा है। जिसके माध्यम से महिलाओं को रोजगार के नए-नए अवसर उपलब्ध है। अतः कहा जा सकता है कि 'स्वयं' सहायता समूह द्वारा महिलाओं का 'आर्थिक-सबलीकरण' हो रहा है।

समाजिक-सबलीकरण

महिलाओं के समग्र-विकास के लिए उन्हें समाज में यथोचित स्थान प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। प्राचीन काल में महिलाओं का उद्योग, व्यापार तथा उत्पादन क्षेत्र में महत्वपूर्ण का स्थान नहीं था। किंतु वैश्वीकरण के साथ ही 'स्वयं-सहायता समूह' के कारण महिलाओं को आज स्वयं रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे हैं। जिसके कारण वह प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर नजर आ रही हैं साथ ही पुरूष के कंधे-से कंधा लगाकर वह आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनैतिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। जिसमें 'स्वयं-सहायता समूह' की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

राजनैतिक सबलीकरण

स्वयं-सहायता समूह के माध्यम से 'दबाव-समूह' निर्माण कर महिलाएं 'गली से दिल्ली' अर्थात ग्रामीण स्तर से संसद तक पहुंची हैं केवल इतना ही नहीं बल्कि अपने नेतृत्व में विकास कर वह आज राज्य की बागडोर तक संभाल रही हैं। जिसके कारण उसकी स्वयं की एक अलग राजनैतिक पहचान बन चुकी है। क्योंकि 'अबला तेरी यही कहानी',

'आँचल में है दूध और आंखो से पानी' का समय बदल गया है और निश्चित रूप से समय ने वैसे सारे संसाधन एक बिंदू पर औरतों के पक्ष में जमा कर लिए दिए हैं कि इस सदी को औरतों की सदी के रूप में इतिहास अंकित करे तो किसी को कई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

अतः कहा जा सकता है कि 'स्वयं-सहायता समूह' के कारण महिलाओं का आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक सबलीकरण हो रहा है।

संदर्भ

योजना, जनवरी 2008

योजना, अक्टूबर 2008

समाजप्रबोधन, जनवरी/ मार्च 2009

LALITHA N. & B.S. NAGRAJAN (2002), *Self helpgroup in Rural Development* (New Delhi, Domiant Publishers and Distributors)

CHESTON, SUSY & LISA KUHN (2002), *"Improving Women through microfinance"* Unpublished backgroup Paper for the Microcredit Summits +5 New York 10-13 November.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,81-84
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 जून 2016

अटल बिहारी बाजपेयी की विदेश नीति : एक अध्ययन

भानु प्रताप मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अटल बिहारी बाजपेयी की विदेश नीति : एक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *भानु प्रताप मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मार्च, 1998 को भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एक गठबंधन सरकार का केन्द्र में निर्माण हुआ। इस सरकार को समर्थन देने वाली अनेक क्षेत्रीय दल- ए0आई0डी0एम0 के (तमिलनाडु), तृणमूल कांग्रेस (पश्चिमी बंगाल), अकाली दल (पंजाब) है जिनके सांसदों को वाजपेयी मंत्रिमंडल में शामिल किया गया है। केन्द्र की यह अजीबोगरीब गठबंधन सरकार के सहयोगी दल की अलग-अलग विचारधाराएँ एवम् रणनीतियों में पारस्परिक टकराव को लेकर केन्द्र की सरकार पर खतरा हर समय मंडराता रहा। सत्ता में भागीदार क्षेत्रीय दलों ने विरोधाभास बयान देकर वाजपेयी सरकार के लिये अनेक मुश्किलें पैदा कर दी। इतना ही नहीं वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री जैसे जार्ज फर्नान्डीस (प्रतिरक्षा मंत्री) रामकृष्ण हेगड़े (पूर्व वाणिज्य मंत्री), यशवन्त सिंन्हा (वित्त मंत्री) आये दिन उल्टे सुलटे नीति बयान देने में भी नहीं झिझकते। इन सबका मिला-जुला प्रतिकूल प्रभाव भारत की विदेश नीति एवम् सुरक्षा हितों पर निश्चित रूप से पड़ता है।

विदेश नीति और घरेलू नीति के अकाट्य सम्बन्ध होने के कारण यह नहीं भूलना चाहिए कि देश में राजनीतिक व आर्थिक स्थिरता, सामाजिक व साम्प्रदायिक सहयोग देश को बाह्य खतरों से निपटने के लिये अनिवार्य है। वाजपेयी के नेतृत्व में देश व विदेश नीति में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। असंलग्नता को देश की विदेश नीति का मुख्य आधार बताते हुये प्रधानमंत्री वाजपेई ने कहा कि बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में इसकी सार्थकता और भी बढ़ गई है। अन्तर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय आर्थिक संरक्षणवाद, व्यापारिक भेदभावपूर्ण व्यवस्था व विश्व मुद्रा एवम् विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों से उत्पन्न विषमताओं को दूर करने में असंलग्न आन्दोलन को आगे आना होगा अथवा इस आंदोलन की अनुपस्थिति या इसके कमजोर पड़ने पर औद्योगिक धनी देश और निर्बाध होकर तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक प्रगति, प्रतिरक्षा क्षेत्र के चलाये जा रहे कार्यक्रमों को बंद करने पर जो डालेंगे।

वाजपेयी ने भारत की शक्ति तथा अपनी सरकार की अस्थिरता को ध्यान में रखते हुये मई 11 व 13, 1998 को परमाणु

* शोध छात्र, राजनीतिविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

परीक्षणों को राष्ट्रीय सुरक्षा कारणों की आड़ में उचित ठहराया है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी ने विदेश नीति पर संसद में बहस करते हुये घोषणा की कि भारत व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सी0टी0बी0टी0) पर सितम्बर 1999 से पहले हस्ताक्षर कर सकता है परन्तु भारत विखंडनीय परमाणु पदार्थ के उत्पादन (FMCT) पर रोक नही लगायेगा। उन्होंने सदन में जोर-शोर शब्दों में कहा कि भारत एक न्यूनतम के दबाव में नहीं करेगा। उन्होंने प्रतिरक्षा तैयारी को भारत का सार्वभौमिक अधिकार बतलाया एवम् संसद के माध्यम से देशवासियों को आश्वस्त किया कि वे प्रतिरक्षा के मामले में भारत किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करेगा। उन्होंने 'अग्नि' बेलिस्टिक प्रक्षेपास्त्र के लम्बी दूरी तक प्रहार करने वाले नवीन संस्करण को जारी रखने का आश्वासन दिया।[1]

वाजपेयी सरकार की विदेश नीति में निरंतरता व परिवर्तन दोनों के लक्षण स्पष्टतः प्रकट होते हैं। जहाँ एक ओर असंलग्न नीति की शीतोत्तर प्रासंगिकता के औचित्य को ठहराते हुए वाजपेयी सरकार ने परमाणु विकल्प का उपयोग (exercise) कर भारत की पूर्व परमाणु अस्पष्टता की नीति का परित्याग किया है वहीं दूसरी ओर भारत की चली आ रही भेदभाव रहित विश्व परमाणु निःशस्त्रीकरण की नीति के प्रति प्रतिबद्धता को दोहराया। उसी तरह पूर्ववर्ती सरकारों की भारत की विदेश आर्थिक सुधारों को जारी रखने का स्पष्ट वचन दिया है एवं अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ संबंधों में सुधार एवं प्रगाढ़ता लाने को प्राथमिकता दी है।

वाजपेयी सरकार ने प्रथम बार परमाणु सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसमें परमाणु प्रतिरोधन एवं अपनी ओर से किसी भी देश पर परमाणु युद्ध न करना शामिल है। 11 नवंबर 1998 को संसदीय परामर्श समिति की बैठक की अध्यक्षता करते हुए प्रधानमंत्री वाजपेयी ने कहा कि वैसे भारत विश्व परमाणु निःशस्त्रीकरण को अपना पूर्ण समर्थन देता रहेगा परंतु राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए न्यूनतम परमाणु प्रतिरोधन की नीति को कायम रखेगा। जहाँ तक व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) का प्रश्न है, वाजपेयी सरकार ने अमरीका के साथ चल रहे संवाद में यह स्पष्ट कर दिया कि परमाणु शस्त्रों को एक समय-बद्ध सारणी के अंतर्गत समाप्त किया जाए एवं संधि को लागू करने की शर्त (Enter-into-Force) के प्रावधान को हटाया जाए। इसके साथ ही भारत का यह रवैया स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वह परमाणु अप्रसार संधि पर अपने पूर्ववर्ती सरकारों के फैसलों के अनुरूप बिना राष्ट्रीय सहमति के CTBT व FMCT पर भी हस्ताक्षर नहीं करेगा। परंतु राजनीतिक विश्लेषकों का यह मंतव्य है कि वाजपेयी सरकार को अमरीका या अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में आकर इन संधियों पर हस्ताक्षर करने होंगे क्योंकि :

(1) भारत अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अलग-थलग नहीं पड़ना चाहता है;
(2) भारत यह नहीं चाहता कि अमरीका, जापान व अन्य देशों द्वारा लगाए गए आर्थिक प्रतिबंध जारी रहें;
(3) भारत यह भी नहीं चाहेगा कि इन अन्तर्राष्ट्रीय संधियों पर अड़ियल रवैया अपनाकर सुरक्षा परिषद् में अपनी स्थायी सदस्यता के दावे कमजोर करें;
(4) भारत पाकिस्तान को यह कूटनीतिक लाभी भी नहीं देना चाहेगा कि केवल भारत ही ऐसा देश है जो परमाणु निःशस्त्रीकरण की दिशा में किए जा रहे प्रयासों में सबसे बड़ा बाधक है।

वाजपेयी सरकार की विदेश नीति में जो खिसकाव नजर आते है, वे निम्न क्षेत्रों में हैं :

(1) भारत-पाकिस्तान संबंधों की जनता स्तर पर शुरूआत करने की दिशा में बस राजनय (Bus diplomacy) एवं अन्य विश्वास निर्माण उपाय महत्वपूर्ण है। यद्यपि भारत सरकार ने लाहौर घोषणा पर जो मोहर लगाई और उसके तत्पश्चात् पाकिस्तान ने कारगिल में घुसपैठियों को भेजकर जो विश्वासघात किया। उससे वाजपेयी सरकार आम जनता के आलोचना के घेरे में आ गई है। यह अच्छा होता कि भारत के विदेश नीतिकार लाहौर घोषणा के पूर्व सामरिक स्थिति एवं सीमाओं पर पाक गतिविधियों का भली-भाँति आकलन करते एवं इसके तत्पश्चात् इस घोषणा को स्वीकृति प्रदान करते। वास्तव में यह न केवल भारत की सैनिक सामरिक एवं इन्टेलिजेंस एजेंसियों की असफलता है बल्कि पाक इरादों का सही मूल्यांकन करने पाने की अक्षमता का भी परिचायक हैं।

विभिन्न मुद्दों पर वाजपेयी सरकार अवस्थिति (Stance) :

1. संयुक्त राष्ट्र की राजनैतिक एवं सैनिक भूमिका चार्टर के प्रावधानों के अनुरूप होनी चाहिए न कि केवल सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्यों की आम सहमति के आधार पर।
2. संयुक्त राष्ट्र की दण्डात्मक कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र के समस्त सदस्यों की सामान्य स्वीकृति के आधार पर होनी चाहिए। महासभा से परामर्श करने एवं उसे विश्वास में लेने के लिए उचित तौर तरीकों को खोज निकालना चाहिए।
3. भारत संयुक्त राष्ट्र के लोकतांत्रिकरण का पक्षधर है। इसके लिए संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं और उनके कार्यकलापों में लोकतांत्रिक भावना प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। वर्तमान में सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। इसके लिए विकासशील देशों की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता के विस्तार में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।[2]
4. भारत समस्त परमाणु शास्त्रों को समय-सारिणी कार्यक्रम के अंतर्गत पूर्णरूपेण समाप्त करने की नीति पर बल देता है। आर्थिक क्षेत्र में भारत अनियंत्रित पूँजी बहाव का विरोध करता है। यद्यपि भारत खगोलीय प्रक्रिया का विरोध नहीं करता है क्योंकि प्रौद्योगिकी अपरिहार्यता ने आर्थिक अन्तर्निर्भरता को विश्व अर्थव्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा बना दिया, भारत अनियंत्रित बाजार व्यवस्था के पक्ष में नहीं है क्योंकि इससे सामाजिक व आर्थिक विषमताएँ और गहरी होती जा रही है। अतः भारत ऐसी नीति यंत्रों की आवश्यकता पर बल देता है। जिनसे उदारीकरण का ठीक ढंग से प्रबंधन किया जाए।

भारत की विदेश आर्थिक नीति के समक्ष जो मुख्य चुनौतीपूर्ण मुद्दे है, वे निम्न हैं :

1. विश्व व्यापार संगठन की जनवरी, 1995 में स्थापना के साथ बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित पेटेंट को लेकर उत्पन्न विवादों को दूर करने एवं अपने आर्थिक व व्यापारिक हितों की रक्षार्थ भारत को एक दीर्घकालीन योजना व रणनीति का निर्माण तीसरी दुनिया के विकासशील राष्ट्रों के साथ मिलकर करना चाहिए।
2. क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रबंधन दक्षिण एशिया में अधिकाधिक आर्थिक एकीकरण से एक बेहतर राजनीतिक समझ का विकास सार्क के सदस्य राष्ट्रों के मध्य होगा। साप्टा को और अधिक उदार बनाने एवं साफ्टा को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिए भारत ने सार्क के 10 वें शिखर सम्मेलन (कोलंबो, जुलाई, 1998) में जो एकतरफा कदम उठाये थे जिनमें भारत द्वारा अन्य दक्षिण एशिया के देशों से आयात की अनेक वस्तुओं पर प्रतिबंध हटाने की घोषणा भी शामिल है। भारत को और अधिक जिम्मेदारी के साथ नीति अभिक्रम (initiative) उठाने चाहिए। भारत को यह देखना है कि साफ्टा (SAFTA) के ढाँचे में द्विपक्षीय व बहुपक्षीय समस्याओं का समाधान कैसे किया जाये।
3. भारत को विकसित एवं विकासशील देशों के साथ उन समान हितों के आर्थिक, व्यापारिक व निवेश क्षेत्रों का पता लगाना चाहिए जो भारत की विदेश आर्थिक नीति के उद्देश्यों के साथ मेल खाते हों। इसके अतिरिक्त अन्य बहुपक्षीय आर्थिक संगठनों जैसे APEC की सदस्यता प्राप्त करने के लिए कूटनीतिक समर्थन जुटाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।
4. भारत को एक संभावित आर्थिक शक्ति के रूप में प्रोजेक्ट करना चाहिए और उसी के अनुरूप नीति यंत्रों व रणनीतियों को निर्माण करना चाहिए। इसके लिए भारत को अपनी आर्थिक राजनय के उपागम में बदलाव लाना होगा। विश्व आर्थिक व व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के माहौल में अपने व्यापार समुदाय को प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि वे गुणवत्ता को कायम रखते हुए विश्व बाजार में भारत के माल को लोकप्रिय बना सके जिस तरह चीन ने लघु व मध्यम उद्योग को विशेष प्रोत्साहन देकर अपना नियीत व्यापार 140 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष कर दिया है जबकि भारत के व्यापार निर्यात के क्षेत्र में दिनोंदिन गिरावट आ रही है।

वाजपेयी सरकार की विदेश नीति एवं राजनय में पिछली सरकारों की विदेश नीति, उपागम से एक भिन्नता अवश्य नजर आती है। अफगानिस्तान में सत्तारूढ़ तालिबान के भारत विरोधी रवैये से भारत-अफगानिस्तान संबंधों में कड़वाहट एवं ढीलापन आ गया था। पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने तालिबान सरकार के खिलाफ एक स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया था कि भारत उसकी रूढ़िवादी व धार्मिक कट्टरता की नीतियों से सहमत नहीं है और उन्होंने अपदस्थ रवानी सरकार की खुलमखुल्ला समर्थन किया था। संभवतः इस नीति के फलस्वरूप अफगान मुजाहिदिनों ने पाकिस्तान के उकसाए जाने पर कारगिल में भारत विरोधी अभियान को खतरनाक रंग दिया था। यदि भारत सरकार की कूटनीति में व्यावहारिकता के तत्त्व को स्थान दिया जाता तो अफगानिस्तान में तालिबान सरकार भारत के खिलाफ शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं करती। निःसंदेह अफगानिस्तान सामरिक दृष्टि से भारत का महत्वपूर्ण पड़ोसी देश है परंतु वाजपेयी सरकार ने यह निर्णय लिया कि तालिबान के साथ सीधी बातचीत की जाए। यह इस बात का प्रकट करता है कि भारत की ताबिान सरकार के साथ मेल-मिलाप की नीति द्वारा पाकिस्तान के प्रभाव को अफगानिस्तान में सीमित किया जा सकता है एवं पाक की गुप्तचर एजेंसी द्वारा अफगानिस्तान में भारत विरोधी आतंकवादी प्रशिक्षण दिये जाने के प्रयासों को विफल किया जा सकता है। परंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत को भविष्य में समस्त प्रकार के विकल्पों की तलाश कर अफगानिस्तान ने अपनी नयी भूमिका को

परिभाषित कर अपने सामरिक, सुरक्षा एवं आर्थिक हितों की रक्षा करना भी जरूरी होगा।

स्रोत

[1]*Times of India,* 16-12-98, p1.

[2]*See the address of Prime Minister Vajpayee to the 53rd UN Central Assembly Session,* on 24th Sept. 1998, in Strategic Digest, Nov. 1998, pp. 1799-1803.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,85-91
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 मई 2016

नाट्यपंचरत्नम् में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की मुखरता

डॉ. पूनम सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नाट्यपंचरत्नम् में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना की मुखरता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *पूनम सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

आचार्य शिवजी उपाध्याय संस्कृत के प्राख्यात महाकवि एवं नाटककार हैं। इन्होंने अनेक एकांकी रूपकों की रचना की है जिनका सफल अभिनय अनेक अवसरों पर प्रबुद्ध रंगकर्मियों द्वारा सामाजिकों के समक्ष किया गया है अभिनय एवं विषयवस्तु की दृष्टि से ये सभी एकांगी रूपक सम-सामयिक, समाजिक प्रासंगिक एवं ऐतिहासिक हैं। इनमें महाकवि की काव्य प्रतिभा एवं उनकी उच्चकोटिक नाट्यकला परिलक्षित होती है। भाषा प्राञ्जल एवं प्रासादिक है। विषयवस्तु ऐतिहासिक और सामाजिक होने के बावजूद भी रूपकों में महाकवि की उदात्त कल्पनाएं विलसित हैं। घटनाओं की अन्विती और संवादों की योजना अत्यन्त प्रभावशाली हैं प्रस्तुत एकांगी संग्रह में इसी यथार्थ वस्तु का मार्मिक चित्रण करते हुए एकांगी को एक उदार चरित्र की योजना करके सुखान्त बनाया गया है। आचार्य उपाध्याय के प्रस्तुत नाट्य संकलन में काशी की पंचरत्नी विजया के समान सहृदयों को अपने आस्वाद से मत्त बनाने वाले पञ्चैकाङ्क हैं, जिनकी अभिव्याख्या क्रमशः प्रतिभापलायनम्, राष्ट्रगौरवम्, स्वातंत्र्यशौर्यम्, कालकूटम एवं यौतकम् है।

महामहोपाध्याय पण्डित प्रवर प्रो0 शिवजी उपाध्याय का जन्म 5 मार्च 1943 को मिर्जापुर जनपद के पण्डितपुर ग्राम में हुआ। आपके पिता पंडित श्री संकटा प्रसाद तथा माता राज राजेश्वरी देवी हैं। इनका प्रारम्भिक ज्ञानस्तर अत्यन्त न्यूनस्तरीय रहा। ये अपनी प्रारम्भिक अवस्था के 20 वर्षों तक यायावर की भाँति भ्रमण करते रहे। किन्तु बिहार प्रदेश के चक्रधरपुर में स्थित एक चण्डी मंदिर में ध्यानस्थ होने से इनकी प्रतिमा स्वतः निःसृत हुई। जिसके फलस्वरूप इन्होंने अवधी तथा ब्रज में कुछ रचनायें की। कुछ समय पश्चात् घर लौटने पर अपने मामा तथा बड़े भाई की प्रेरणा से मिर्जापुर के संस्कृत पाठशाला में संस्कृत पढ़ने लगे और 1963 में पूर्वमध्यमा दोनों वर्षों की परीक्षा एक साथ दी और जब उत्तरमध्यमा प्रथम वर्ष में थे तभी इन्होंने एक उत्कृष्ट स्तुति *विन्ध्येश्वरी स्वतः* की रचना की। इस रचना से आकर्षित तत्कालिक काशी सुमेरूपीठ के शंकराचार्य स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती ने इन्हें काशी में रहकर अध्ययन करने की प्रेरणा दी। 1966 में ये मीरजापुर से उत्तरमध्यमा कक्षा उत्तीर्ण कर काशी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. पी. जी. कॉलेज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में आ गये तथा यहाँ ये शास्त्री एवं आचार्य की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के फलस्वरूप यू0जी0सी0 शोध छात्रवृत्ति प्राप्त कर अनुसंधान करने लगे। इसी बीच संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। संस्कृत विश्वविद्यालय में ये अपनी महिमामयी उपस्थिति से विभागाध्यक्ष एवं प्रतिकुलपति तक के पद को मण्डित किये। काशी विद्वत्सभा के महामंत्री भी रहे। सम्प्रति अवकाश निवृत्त होकर काशी में रहते हुए निरन्तर सरस्वती की साधना में तल्लीन है।

रचनायें; इनकी पाँच नाट्य कृतियाँ (यौतकम्, राष्ट्रगौरवम्, कालकूटम् प्रतिभापलायनम्, स्वातन्त्र्य शौर्यम्) हैं। काव्यशतकत्रयम्, अभिराजचम्पूः साहित्यसन्दर्भः (शास्त्रलक्षण ग्रन्थ) सर्वदर्शन विमर्शः, शक्तिविमर्शः, व्यक्तिविमर्शः, आदि इनकी प्रमुख रचनायें हैं।

नाट्यपंचरत्नम्

महामहोपाध्याय महाकवि पण्डित प्रवर प्रो0 शिवजी उपाध्याय द्वारा प्रणीत 5 लघुरूपकों (यौतकम्, राष्ट्रगौरवम्, कालकूटम्, प्रतिभापलायनम्, स्वातंत्र्य शौर्यम्) का संकल यह नाट्यपंचरत्नम् है। इसके प्रत्येक कथा की विषय वस्तु निम्न है -

यौतकम्; नान्दी के समाप्त होने पर दहेजदानव द्वारा सामाजिक (दहेज) समस्या के भयावह परिणाम की सूचना से नाटक का आरम्भ होता है।

सत्यस्वरूप के पुत्र सुधीर को एक अपरिचित व्यक्ति पत्र सौंपते हुए कहता है कि यह पत्र अपने पिता जी को दे देना। सुधीर वह पत्र अपने पिता को देता है। स्त्यस्वरूप मिश्र पत्र पढ़ते ही हताश हो जाते हैं, क्योंकि पत्र श्री लम्बोदर त्रिपाठी का रहता है जिसके पुत्र के साथ मिश्र जी की सुशिक्षित बिटिया का विवाह निर्धारित रहता है। पत्र में श्री त्रिपाठी ने दहेज की राशि तिलोत्सव के पूर्व ही देने के लिए लिखा है। जबकि दहेज में पूर्वतय राशि विवाह के अवसर पर द्वारपूजा के समय देने का निर्णय रहता है। इधर मिश्र जी की पत्नी भी स्थिति को जानकर दुःखी होती है और मध्यस्थ (घटक) के साथ जाकर उन्हें स्वयं त्रिपाठी से बात करने को कहती हैं। दोनों त्रिपाठी से मिलते हैं किन्तु विनय अत्यन्त आग्रह करने पर भी त्रिपाठी नहीं मानते और तिरस्कृत कर उन्हें लौटा देते हैं। त्रिपाठी अपने मामा की सलाह पर कायम रहते हैं, कन्या पक्ष पर विश्वास नहीं करते हैं।

तिलकोत्सव आसन्न है अगले दृश्य में दुःखी एवं निराश होकर चारपायी पर लेटे हुए मिश्र को घटक महोदय आश्वस्त करते हैं। सारी घटना जानकर कन्या सुरूचि दोनों के समक्ष साहसपूर्वक उपस्थित होकर कहती है, ''मात ! पिता !! कन्येति कृत्वा भवन्तौ भारमनुभूय/ स्वात्मानं मैवं क्लेशयताम्। यौतकप्रियस्य तस्य पुत्रविक्रेतुर्गृहे/ ममोद्वाहश्चेत् स्यात्तदा नूनमहं स्वप्राणान् त्यक्ष्यामि। सर्वाः परीक्षाः प्रथमश्रेण्यामुत्तीर्य साऽहं एम.ए. (M.A.) कक्षायां पठामि। मदपेक्षया तदीयः पुत्रः सर्वथा अयोग्यः। नाहं कदाचिदपि भवत्समक्षं किमपि उक्तवती, तथापि कालोऽयं नास्ति यौलावलम्बनस्य/ पुत्रवन्मां ज्ञात्वा न खेदमनुभवतां भवन्तौ। अहं तावन्नो पाणिं ग्राहयिष्यामि यावद् यौतकं दातव्यमिति मे सुदृढ़ा प्रतीज्ञा।''

घटक महोदय कन्या के इस दृढ़ प्रतिज्ञा की प्रशंसा करते हैं और कन्या के अनुरूप वरान्वेषण के आश्वासन के साथ विदा लेते हैं। अगले दृश्य में मिश्र जी का ज्येष्ठ पुत्र अपने बहन के विवाह में सम्मिलित होने के लिए प्रयाग से आया रहता है। जो पिता को खिन्नमनष्क बैठा देख पूछने लगता है जिस पर सारा वृत्तान्त पिता उससे बताते हैं सब दुःखी मन से बैठ जाते हैं। तभी घटक आता है और कहता है कि एक ब्राह्मण परिवार का रिश्ता प्राप्त हुआ है जिसका लड़का आई0ए0एस0 है वह सुरूचि से विवाह करना चाहता है। यह विवाह दहेज रहित होगा और पूर्व में निर्धारित मांगलिक तिथियों में ही सारे कार्यक्रम सम्पन्न होंगे। सभी लोग प्रसन्न होते हैं और सुशीला (मिश्र जी की धर्मपत्नी) सभी का मुँह मीठा कराती हैं। इसी के साथ इस एकांकी का अवसान होता है।

राष्ट्रगौरवम्; प्रो0 उपाध्याय जी द्वारा विरचित यह रूपक राष्ट्रिय समस्या प्रधान है।

एकांकी का प्रारम्भ नान्दी के प्रस्तुति से होता है। तत्पश्चात् सीमा पर मुस्तैद एक सैनिक पर सीमा पार से आने वाले आतंकवादी गुप्त शत्रुओं की दृष्टि उस पर पड़ती है। जिससे वह समीपस्थ सुरक्षा बल के मुख्य सैन्याधिकारी को सूचित करता है। मुख्य सैन्याधिकारी त्वरित कार्यवाही करते हुए दो तस्करों को पकड़ लेता है और उससे भारी मात्रा में गोला

बारूद बरामद करता है। जब दोनों पकड़े गये तस्करों से कड़ाई के साथ पूछताछ होती है तो वे अपनी प्राणरक्षा में सारी बात बता देते है।

''(सदैन्य भावम्) श्रीमान् आवां भारत-सीमान्त स्थित नगर निवासिनौ निर्धनौ युवानौ कुत्रापि जीवनवृत्तिमलभमानौ अस्मिन्नेव कुत्सितकर्मणि क्रूरकर्मा-चारि भिर्बलान्निजितौ। ये चास्मत्सहायास्ते घनान्धकारे प्रपलायिता भारतराष्ट्रद्रोहिणः प्रबला उग्रवादिनः सन्ति।''

द्वितीय दृश्य में सभी अधिकारी अपना-अपना फाइल देखने में व्यस्त रहते हैं। तभी सीमा सुरक्षा बल के अधिकारी उन दोनों अभियुक्तों के साथ पहुँचते हैं। वहाँ सभी अधिकारियों सहित रक्षा मंत्री के बीच विमर्श होता है। परिणाम स्वरूप ये दोनों (देशपाल एवं धर्मपाल) युवा इस घटना से बरी होते है और मंत्री के आदेशानुसार इन्हें रोजगार मुहैया कराया जाता है।

तृतीय दृश्य एक सीमान्त नगर है। जहाँ एक महाविद्यालय में आचार्य एवं सम्पादक बैठकर परस्पर देश में व्याप्त आतंकवाद की समस्या पर चर्चा कर रहे हैं और बीच-बीच में नेताओं पर मीठी चुटकी भी लेते रहते है। आचार्य अत्यन्त खेद के साथ कहता है, ''साम्प्रतं विधातैव विदधातु देशस्य रक्षणम्, अनुपालनं वा यतोहि-/ समयाभावतस्तेषां शासकानां च मन्त्रिणाम्। ऋते चैकं विधातारं राष्ट्रं नः केन रक्ष्यताम्।।''

इसी बीच आचार्य पुत्री आती है और नगर में कर्फ्यू लगने की सूचना देती है। पुनः ये दोनों इस मुद्दे पर चर्चा करने लगते है। इसी बीच पुनः वह आचार्य की पुत्री आती है और बताती है कि जिन दो आतंकवादियों के कारण सरकार कर्फ्यू लगाई थी वे इसी नगर के दो सैनिकों द्वारा पकड़े गये है। नगर में शान्ति व्यवस्था है कर्फ्यू हटा ली गई है। सरकार ने उन दोनों देशपाल एवं धर्मपाल नामक सैनिकों को परमवीर चक्र से सम्मानित करने की घोषणा की है। इसी के साथ इस लघु रूपक का अवसान होता है।

कालकूटम्; सामाजिक समस्या प्रधान यह लघु रूपक एक दृश्य में ही पर्यवसित होता है। जिसमें युवाओं द्वारा मादक द्रव्यसेवन करने पर चिन्ता व्यक्त की गई है।

नान्दी पाठक के पश्चात् रंगमंच पर देवर्षि नारद का प्रवेश होता है। जहाँ नारद भूण्डल का पर्यटन करने के पश्चात् वहाँ की दुरवस्था से खिन्न होकर नारायण के दर्शनार्थ बैकुण्ठ लोक पहुँचते हैं।

तब विष्णु उनके खिन्नता का कारण पूछते हैं-

विष्णु, ''(आसनस्थः सस्मितमुखः) एहि, एहि देवर्षे! इदमासनम्, आस्यताम्, (क्षणानन्तरम्) कथमियं महती मौनमास्ते ? नारायणेति मम नामानुकीर्तनं समधुरस्वरं न सन्तनोति ? तवास्यमपि विस्मृताधरलास्यमिव नोल्लसति? कथय कोऽत्र निर्वेदस्य हेतु?

नारद उनके सर्वव्यापकत्व और अन्तर्यामित्व की दुहाई देते हुए भी अपनी खिन्नता का कारण बतलाते हुए कहते है कि आपकी अवतार-लीला-स्थली भारतवर्ष की असंख्य युवक-युवतियाँ मादक पदार्थ के सेवन से अपना जीवन नष्ट कर रही हैं। विष्णु की जिज्ञासा पर नारद 'विषौषधि' की स्पष्ट व्याख्या करते हैं, ''अधिगतमधिकण्ठं यच्च हालाहलं प्राक्/ तदपि गिरिशपानाद् भुक्तशेषं ससार। अधिकृतपरिवेशं भूयासऽन्तर्निविश्य/ प्रकृतविकृतनामाकारतो व्याप्तमस्ति।।''

नारद विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि भारत को इस महामारी से बचायें। इसी बीच वैद्यराज धन्वन्तरि अपने दो शिष्यों के साथ आते हैं। विष्णु तथा नारद उनका स्वागत करते हैं।

धन्वन्तरि भी भारत वर्ष में व्याप्त इस विषौषधिजन्य दुर्दशा का वर्णन करते हैं। इनके दोनों शिष्य भी उनके दुष्प्रभाव का सविस्तार वर्णन करते हैं। सभी इस भीषण समस्या के समाधान हेतु चिन्तित होते हैं।

भगवान् विष्णु नारद और धन्वन्तरि को शिष्यों सहित विदा करके अपनी चारो योगमायाओं का स्मरण करते हैं, ''कष्टमेतदपाकर्तुं विषमौषधिदुर्ग्रहम्। भवत्यश्चतुराशासु प्रसरन्तु प्रभावतः।।''

ये योगमाया शक्तियाँ अपने सामर्थ्य से इस समस्या से निजात दिलाने का आश्वासन देती हैं। किन्तु विष्णु को ऐसा लगता है कि यदि मैं इन्हें इस कार्य में लगाता हूँ तो लोक कल्याण नहीं अपितु लोक विनाश ही होगा। अतः उन्हें सान्त्वना देकर विदा करते हैं और दूसरा उपाय सोचने लगते हैं। कुछ क्षण पश्चात् कहते हैं कि भारतवर्ष के सुबुद्ध संस्कृत विद्वानों को चाहिए कि वे अपने सनातन धर्म और संस्कृति को पुनरूज्जीवित करके भौतिक सभ्यता के अन्धानुकरण से बचायें तथा

सबसे आचारनिष्ठ तथा संस्कारवान् बनाकर इस विषौषधि के प्रचार-प्रसार को जड़ से उखड़ फेके। इस उपाय से विष्णु संतुष्ट होते हैं। इसी के साथ इस एकांकी का समापन होता है।

प्रतिभापलयनम्; इस लघु एकांकी का आरम्भ स्थापिका के नान्दी पाठ से होता है। कथावस्तु का आरम्भ दो युवा मेधावी छात्रों के परस्पर वार्तालाप से होता है। प्रज्ञान इस रूपक का नायक है। यह प्रतिभाशाली छात्र रहता है। इंजीनियरिंग परीक्षा उत्तीर्ण है साथ ही लब्ध स्वर्ण पदक भी है। वह आजीविका के सन्दर्भ में बाहर अनेकों साक्षात्कार दे चुका है। उत्तम युवा इंजीनियर इस छात्र का साक्षात्कार भी उत्तम होता है। किन्तु कहीं उसकी नियुक्ति नहीं होती है। जिससे वह अत्यन्त खिन्न है। वह कहता है, ''सविधिदत्तसाक्षात्करोप्यहम् नैव सफली-भवितुमाशासे, विशेषज्ञानामुपेक्षा दृष्टिर्मां निराशीकरोति। द्वादशकोऽयं मे साक्षात्कारः संवृत्तः। परीक्षोत्तरणानन्तरमष्टौ वर्षाण्यपि व्यतीतानि।.....नास्त्युपायान्तरम्।''

प्रज्ञान का सभानधर्मी ज्ञान भी दर्शनशास्त्र का योग्यतम छात्र है जो शोधकार्य में संलग्न है। वह प्रज्ञान को तरह-तरह से समझाता है और आश्वस्त करता है, किन्तु प्रज्ञान अपने कटु अनुभव और आन्तरिक पीड़ा को व्यक्त करता हुआ ज्ञान की बात को काटता है। इसी बीच 'प्रज्ञा' और 'मेधा' नामक दो शोधच्छात्रायें ज्ञान को खोजती हुई आती हैं और कल होने वाली एक परिचर्चा गोष्ठी में भाग लेने के लिए दोनों (प्रज्ञान एवं ज्ञान) मित्रों को आमंत्रित कर चली जाती हैं।

द्वितीय दृश्य में गोष्ठी का आरम्भ होता है जिसका मुख्य केन्द्र बिन्दु रहता है 'प्रतिभापलायनम्। गोष्ठी की अध्यक्षता कुलपति कर रहे हैं तथा मुख्य अतिथि है संकाय प्रमुख एवं संचालन वरिष्ठ आचार्य करते हैं।

मंगलाचरण के पश्चात् सर्वप्रथम प्रज्ञा अपना विचार व्यक्त करती हुई कहती है, ''महानुभावाः पुराकालादद्यावधि भारतं प्रतिभासमानं विश्वस्मिन् प्रतिभाप्रकर्षेण गुरूत्वमभजत् तदिदानीं पश्चातापं चेखिद्यमानं खलु प्रतिभाप्रकर्षेण-इत्यत्र न कस्यापि वैमत्यमुदीयात्। नैकक्षेत्रेषु ज्ञानविज्ञान-यन्त्रतन्त्रैतिह्यसाहित्यप्रभृतिषु प्रतिभावन्तः सर्वतः समुपेक्ष्यमाणा देशान्तरेषु पलायन्ते, तत्र च प्राप्तप्रतिष्ठाः तदुन्नयने नवनवाविष्कारानातन्वानास्तत्रैवाजीवनं निवसन्ति। अनेनैव हेतुना भारतस्य प्रगतिरवरूद्धेति मे प्रतिभाति।''

'ज्ञान' उन प्रतिकूल परिस्थितियों का उल्लेख करता है जिसके कारण विद्वान् भारत छोड़कर जा रहे हैं। 'मेधा' उन प्रतिकूल परिस्थितियों का उपाय सुझाती है। प्रज्ञान प्रतिभा के उन्नयन और भारत में उसकी प्रतिष्ठा के उपाय सुझाते है। सभी श्रेष्ठ जन मंच प्रतिभागियों का साधुवाद करते है और उन्हें कर्तव्य निष्ठ का उपदेश देते हैं। कुलपति महोदय अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में भारत से प्रतिभापलायन रोकने के उपायों पर बल देते हैं। संचालक के कृतज्ञता ज्ञापन के साथ सभा की विश्रान्ति होती है। भरत वाक्य के साथ यह लघु एकांकी भी सम्पन्न होता है।

स्वातन्त्र्यशौर्यम्; रूपक का प्रारम्भ नान्दी से होता है। तत्पश्चात् बालक चन्द्रशेखर तिवारी वाराणसी की एक संस्कृत पाठशाला में अध्ययनार्थ प्रवेश लेता है। उसकी प्रतिभा से सभी लोग प्रभावित होते हैं। इसके आचार्य भारत की स्वान्त्र्य प्राप्ति में उसे आशीर्वाद देते हैं। बालक चन्द्रशेखर उनके सम्मुख मातृभूमि के उद्धार हेतु आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का संकल्प लेता है।

द्वितीय दृश्य में श्री चन्द्रशेखर (बालक सत्याग्रही) स्वतन्त्रता सेनानायक के साथ पकड़े गये है और न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत है। संक्षिप्त संवाद में न्यायधीश बालक की निर्भीकता से प्रभावित होता है। चन्द्रशेखर अपना नाम 'आजाद' पिता का नाम 'स्वाधीनता' और निवास संस्थान 'कारागार' बतलाते हैं। न्यायाधीश से क्षमा याचना करना अस्वीकार कर वे पन्द्रह बेंत की सजा पाते हैं। न्यायाधीश के आदेश का पालन करते हुए काराधीक्षक के प्रत्येक बेंत की मार पर वे 'भारत माता की जय' का उद्घोष करते हैं।

''जयतु भरतभूमिर्मातृरूपाऽभिवन्धा/ जयतु जगति वन्द्यं भारताखण्डराष्ट्रम्। चिरविलयमुपैतु क्रूरवैदेशिकानां/ कुटिलकुनयकूटोद्दामदुःशासनं च।।''

बाहर शिव प्रसाद गुप्त के नेतृत्व में वाराणसी की जनता चन्द्रशेखर आजाद का स्वागत करती है। इस वीर बालक का नागरिक अभिनन्दन होता है।

तृतीय दृश्य आठ वर्ष बाद का है। आजाद ब्रह्मचारी के वेश में क्रान्तिकारी गतिविधियों को करते रहते है। तभी थानाध्यक्ष उनकी गतिविधियाँ पर सन्देह करके 'ये आजाद तो नहीं है। यह जानने के लिए दो सिपाहियों को भेजता है। आजाद स्वयं को ब्रह्मचारी साधु प्रमाणित करते हुए उन्हें डॉट कर भगा देता है। उसी रात ग्राम प्रधान की कन्या आजाद से प्रणय याचना

करने आती है। आजाद उसे भी समझा बुझाकर वापस कर देता है। 'मेरा भेद खुल गया है' यह जान वहाँ से चल देता है।

अन्तिम दृश्य एक पार्क का है। आजाद अपने विश्वस्त मित्र चन्द्रकेतु से वार्तालाप में क्रान्तिकारियों से छिन्न भिन्न होने और कई प्रमुखों के जेल में होने से खिन्न है। ''केचित् क्रान्तिप्रलयहुतभुक्भ्राष्ट्रभस्माङ्गभूताः/ केऽप्याक्रान्ता रिपुखलदलैर्लब्ध-काराधिवासाः। यूथभ्रष्टाः करिकलभवद् दिक्षु चान्ये निलीनाः/ हा! दैव! त्वं किमु नु कुरूषे निर्दयं निर्दहन् माम्।।''

इसी बीच गौर सैनिक पार्क को चारों ओर से घेर लेते हैं। आजाद उनके सैनिकों को मारकर अपने पिस्तौल की अन्तिम गोली से वीरगति को प्राप्त होता है। चन्द्रकेतु गंगातट पर जाकर स्वामी स्वाधीनजीवनानन्द को इस घटना की सूचना देता है। इसी के साथ एकांकी का समापन होता है।

नाट्यपंचरत्नम्

समीक्षा; महामहोपाध्याय महाकवि प्रो0 शिवजी उपाध्याय द्वारा विरचित पाँच लघु रूपकों का प्रस्तुत इस पुस्तक में संकलन है। जो आधुनिक नाट्य साहित्य में अत्यन्त श्रेष्ठ है। ये पाँच लघु रूपक हैं- *यौतकम्, राष्ट्रगौरवम्, कालकूटम, प्रतिभा पलायनम् तथा स्वातन्त्र्यशौर्यम्।*

इन प्रत्येक नाटकों के शीर्षक से ही प्रतिपाद्य कथानक का अनुमान लग जाता है।

यौतकम्; इस एकांकी को कवि ने चार दृश्यों में विभक्त किया है। जिसमें मंगलाचरण के पश्चात् यौतक दानव का प्रवेश होता है, ''हा ! हा! हा! .....ननु कोऽहं भोः। सावधानं श्रूयताम्/ व्यादाय वक्त्रं परितोऽपि कन्याः/ कुमारिकाः क्लेशयितुं प्रवृत्तः। तासां जगत्यां विपदेकहेतुः,/ क्रेतुः कलेर्यौतकदानवोऽहम्।।''

इसके माध्यम से कवि नाट्य के विषय वस्तु का उपस्थापन करता है। सामाजिक समस्या प्रधान यह लघु रूपक सर्वथा अभिनेय है। इसकी कथावस्तु प्रख्यात और उत्पाद्य से मिश्रित है। नाटक में पुरुष पात्रों के साथ ही स्त्री पात्रों की भी बहुलता है। कवि के इस लघु रूपक की प्रथम तीन दृश्यों में कथावस्तु अत्यन्त दुःखात्मक है- जिसे कन्या के पिता सत्यस्वरूप के इस कथन से व्यक्त किया जा सकता है, ''ये ज्वालयन्ति ज्वलने स्नुषां स्वां,/ ये यौतकक्रव्यभुजः पिशाचाः। ते पुत्रविक्रेतृजनाः समाजे/ कालादि तुल्याः किल दण्डभाजः।।''

किन्तु कवि ने नाट्य के अन्तिम चतुर्थ दृश्य में अद्भुतरस की योजना करके एकांकी को सुखान्त बना दिया है। जहाँ कन्या के अनुरूप वर मिलने से तथा उसके दहेजरूपी दानव के तिरस्कार से सभी लोग प्रसन्न है। कन्या पिता मिश्र जी घटक को साधुवाद देते हैं, ''क्व शुक्लवर्यो विपुलो धनाढ्यः,/ क्व चाहमेष द्रविण प्रहीणः/ वृणोति सौभाग्यमिदं मदीयम्।।''

नाटक की समाप्ति कवि ने भरतवाक्य के साथ की है। जिसमें सम्पूर्ण विश्व के सुख की कामना करते हुए कवि कहता है, ''विश्वं समग्रं ससुखं समेधतां,/ निर्यौतकोद्वाहविधिः प्रवर्वताम्/ कन्याकुलं सौख्यपदं प्रपद्यताम्,/ गीर्वाणवाणी परितः प्रवर्धताम्।।''

कवि का यह नाट्यकल्प सर्वांगपूर्ण अभिनेय तथा सामाजिक समस्या पूर्ण सहृदयहृदयानुरंजक है।

राष्ट्रगौरवम्; कवि ने इस एकांकी को तीन दृश्यों में विभक्त कर राष्ट्रीय समस्या को जनहित में प्रस्तुत करने का सफल मनोरम उपक्रम किया है। एकांकी में नान्दी पाठ के पश्चात् दो विभिन्न देशों के सैनिकों की दृष्टि का अत्यन्त सजीव वर्णन उपस्थापित किया है। जो नाटक में आद्यन्त मनोहारी होने का सूचक है :

सैनिक : (सत्वरं प्रविश्य सैनिकसमुदाचारेणाभिवन्द्य च)

श्रीमान् राष्ट्रद्वेषिणां दलं मयोपलक्षितं, तदचिरं यथोचितं प्रतिविधेयम्। घटीपरिमितेनैव कालेन तद् दलं सीमान्तमतिक्रान्तं कृत्वा भारतसीम्नि कृतपदं स्थास्यतीति।

पुरुषपात्र बहुल इस एकांकी में आचार्य पुत्री एक मात्र स्त्रीपात्र है, जो तृतीय दृश्य में स्वल्प संवाद प्रस्तुत करती है। कवि द्वारा पात्र संयोजन भी विषयानुरूप है। एकांकी का नायक पात्र सैन्यमुख्याधिकारी है। इसकी कथावस्तु उत्पाद्य है। नाट्य शास्त्रीय नियमानुसार नाटक में मुख्य रस शृंगार या वीर में से कवि ने कथानक के सामंजस्य से वीररस को अंगीत्वेन स्वीकार

किया है। हास्य एवं अद्भूतरस को भी नाटक में अंग के रूप में रखा गया है। जो इसमें आकर्षकाधायक सिद्ध हैं पात्र आचार्य का कथन है, ''अन्तःप्रच्छन्नरूपा बहिरथजनास्वादरस्थानभाजः/ श्वेताचारेण चौर्यप्रणिहिमतयः सर्वतः सद्गचरन्ति। नेतृ-श्रेष्ठिप्रणेतृप्रभृतिबहुविधाकारमाधारयन्तो,/ नैके देशद्विषस्ते घुणवदनुदिनं राष्ट्रमुच्छेतुकामाः।।''

पात्रों के अनुरूप प्रभावकारी संवादयोजना एवं भाषा का प्रयोग भावानु परिलक्षित होता है।

इस प्रकार अभिनय की दृष्टि से यह एक सफल एकांकी रूपक है।

कालकूटम्; कवि ने सामाजिक समस्या को इस एकांकी में एक दृश्य के माध्यम से सन्दर्शित किया है। आजकल युवकों में व्याप्त मादक द्रव्यसेवन पर कवि ने करारा कटाक्ष प्रहार किया है। नान्दी पाठ संयोजन के पश्चात् कवि ने भूलोक से पधारे देवर्षि नारद द्वारा भगवान् विष्णु के सम्मुख उनकी लीलास्थली पर व्याप्त विषौषधी सेवन का अत्यन्त मार्मिक चित्रण उपस्थापित करता है, ''दुवृत्तं निरयोपमं कलुषितं शान्तिच्युतं विक्लवं/ धर्मोपेततपोहतोद्गतभयं भारायितं भारतम्। यूनामुन्मद-मादकोद्धतविषव्यापारसम्बद्धनाद्। अस्तव्यस्त प्रभो! तव जने लीलावनी नश्यति।।''

इसके समुपाय में कवि ने धर्म एवं संस्कृति के रक्षक धर्माचारों को भगवान् विष्णु द्वारा आदेश दिलाकर नाटक को अत्यन्त मनमोहक बनाने का सफल उपाय दर्शाया है। इस एकांकी द्वारा कवि ने युवक-युवतियों में फैल रही मादक द्रव्यौषधि सेवन की कु-प्रवृत्ति की ओर प्रभावकारी ढंग से ध्यानाकर्षण किया है। नाटक की कथावस्तु पूर्णतः उत्पाद्य है। हास्य एवं अद्भुत रस से संवलित यह एकांकी सर्वथा अभिनेय है।

प्रतिभापलायनम्; यह एकांकी दो दृश्यों में विभक्त देश के विद्वान, प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों, युवकों की मनोवृत्ति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों के हृदयावर्जक विश्लेषण से युक्त इस एकांकी का आरम्भ स्थापिका द्वारा पुष्प बिखराकर नान्दीपाठ के गायन से होता है। ''तत् प्रविशति सपुष्पाद्गजलि धृतपूर्णसिवेषा स्थापिका पुष्पाणि विकीर्य परिक्रम्य च नान्दीपाठमाचरति''।।

यहाँ चूँकि कवि के कथानक का सम्बन्ध प्रतिभा से है और प्रतिभा विद्या की देवी सरस्वती का वरदान है। तद्नुसार स्थापिका को कवि ने सर्वप्रथम मंच पर लाने का सफल निर्देश किया है। नाटक में पात्रों के लघु-लघु संवाद एवं उनका विषयोपस्थापन नाटक की गरिमा में चार चाँद लगा रहा है। कवि ने नाट्य शास्त्रीय नियमों का सविधि अनुपालन किया है।

विषयवस्तु की दृष्टि से इस एकांकी में कहीं कहीं लम्बे-लम्बे संवाद भी है किन्तु वे इतने रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं कि उन्हें दोष की संज्ञा से अभिहित नहीं किया जा सकता। मनोरंजन की अपेक्षा कवि का समस्यासमाधान ही मुख्योद्देश्य है। जिसे कवि द्वारा निरूपति भरतवाक्य से देखा जा सकता है, ''उद्यत्प्रतिभामास्वदग्रगुरूता राष्ट्रस्य विद्योततां,/ विद्योधानविराजमान-सुमनोराशिः समुद्भासताम्। स्वार्थत्यागपरा परार्थनिहिता नीतिःपरिभ्राजतां,/ शान्तिध्वाननिधानमानमहितं प्रज्ञानमुज्जृम्मताम्।।''

स्वातन्त्र्यशौर्यम्; यह एकांकी स्वातन्त्र्यशौर्य का इतिवृत्त प्रख्यात चार दृश्यों में संवलित है। क्रान्तिकारियों में अन्यतम श्रीचन्द्रशेखर आजाद की शौर्यगाथा पर आधारित इस एकांकी में यदि कुछ उत्पाद्यवस्तु है तो वह नाटककार की प्रतिभोत्थित व्युत्पत्तियाँ हैं। इस एकांकी का अंगीरस वीर है। नाटक में पुरुष पात्रों की बहुलता है। नाटक में तृतीय दृश्य में एकमात्र नारीपात्र की योजना है। जहाँ नाटककार ने कुछ नाटक में श्रृंगाररस का भी भान कराया है। युवति कहती है, ''(लज्जां नाटयन्ती) ननु सुभग। अहमत्रत्यग्रामप्रभुकन्यास्मि। न केनापि संकटेन ग्रस्तास्मि न वा केनचिद् दुराचारिणा दुष्टेनाक्रान्तास्मि। प्रत्युत त्वयि प्रेमानुरक्तं मे मनो मां त्वां प्रत्याकर्षयत्, अतोऽहमत्रागताऽस्ति! ममेयं प्रणय याचना न त्वया बिफलीकार्या।''

इस एकांकी के महाननायक आजाद के चरित्र को उत्कृष्ट एवं उदात्त रूप में प्रदर्शित करते हुए कवि कहता है, ''यावन्न राष्ट्र-मखिलं परतन्त्रतायाः/ पाशं छिनत्ति निजशत्रुजनान् निहत्य। तावन्न जातु रमणीप्रणयानुबन्धाद्/ आजीवनं परिणयं स्वमहं करिष्ये।।''

प्रस्तुत एकांकी की रमणीयता के लिए एवं सर्वजनसंवेद्य होने के लिए कवि ने अत्यन्त सरल एवं लघु-लघु संवादों का नियोजन किया है। इस प्रकार आधुनिक नाट्य मंच पर अत्यन्त उपादेय यह एकांकी अभिनेय है।

महामहोपाध्याय महाकवि प्रो0 शिवजी उपाध्याय द्वारा विरचित पाँच लघु रूपकों का यह गुच्छ नाट्यपंचरत्नम् नाट्यशास्त्रीय सभी विशेषताओं से पिरोया हुआ है। मंचन की दृष्टि से ये सभी एकांकी रूपक सफल है। परिमित पात्रों द्वारा नाट्य प्रस्तुति

प्रभावशाली होती है जिसका कवि ने अपने पाँचों एकांकियों में ध्यान रखा है। इस नाटक में मनोरंजन के साथ ही सामाजिक को समस्याओं से निपटने की नैतिक शिक्षा भी दी गई है।

वस्तु नेता एवं रस की दृष्टि से समीक्षा की जाए तो इन रूपकों में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार की वस्तु नियोजित है। पात्रों के चयन, स्वभाव और कर्म के अनुरूप नामकरण तथा उनके चरित्र को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में कवि की कल्पना शक्ति स्तुत्य एवं अभिनन्दनीय है। इनके सभी रूपक प्रसाद ओत-प्रोत है। भाषा पर भी संतुलन है साथ ही आवश्यकतानुरूप शृंगार, वीर, हास्य एवं अद्‌भूत रसों का भी समावेश है।

इस प्रकार प्रो0 उपाध्याय जी की सारस्वत यशोवृद्धि नाट्यपंचरत्नम् आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य जगत् की श्रीवृद्धि के लिए अपना महनीय योगदान प्रस्तुत करता है।

संदर्भ ग्रंथ

यौतकम्, मंगलाचरण
यौतकम्, 12
यौतकम्, 18
यौतकम्-21, चतुर्थ दृश्य
राष्ट्रगौरवम्, प्रथम दृश्य
राष्ट्रगौरवम्, तृतीय दृश्य
कालकूटम्, 7
प्रतिभापलायनम्-17, भरतवाक्य
स्वातन्त्र्यशौर्यम्-38, तृतीय दृश्य
आधुनिक संस्कृत नाटक -रामजी उपाध्याय
नाट्यम्- नाट्य परिषद सागर
अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की समीक्षा -प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
दृक (समकालीन संस्कृत साहित्य समीक्षा) -शिव कुमार मिश्र, बनमाली विश्वाल
20वीं शताब्दी के संस्कृत ड्रामा -डॉ. ऊषा सत्यव्रत

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,92-94
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 जून 2016

संस्कृत वाङ्मये पर्यावरण चिन्तनम्

इन्द्रकला सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्कृत वाङ्मये पर्यावरण चिन्तनम्* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *इन्द्रकला सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मानवस्य प्रकृत्या सह अन्योन्याश्रितः सम्बन्ध, प्रकृतिश्च निरन्तरं जीवन प्रदायिनी जीवननियामिका च। प्रकृतेः क्रोडैव सर्वे जीवाः समनुजाः जनिं लभन्ते मानवानां सर्वाः आवश्यकताः प्रकृत्यधीनैव भारतीय दर्शनेषु चिन्तनं च प्रवर्तते। सृष्टिक्रमे दर्शनधिया विचारः क्रियते तर्हि, तस्माद् वा एकस्मादाकाशः सम्भूतः, आकाशाद्, वायु वायोरग्निः, अग्नेरापः अदभ्यः, पृथ्वीः पृथ्वी चेयं पृथुत्व दर्शनादथवा पृथुराज्ञः धनुषकोटिकः संवर्धनाच्च।

तत्रेते पञ्चमहाभूत संज्ञाकाः एतेषामुपरि पर्यावरणस्य सूक्ष्मतया प्रकोपो अभिवर्धते पारितः आवरणं पर्यावरणं तत्र आवरणपदेन प्रकृतौ जायमानानि उपद्रवरूपाणि सम्भूतानि वा वायोः जलस्य पृथिव्याः आग्न्यादौ दोष स्वरूपाणि ग्रहीतु शक्यानि मनोर्जातो मानवः यत्कालाच्चिन्तनं प्रारब्धमान् तत एव जगति निवसन्तौ जनाः दर्शन दृष्ट्या पर्यावरण परिज्ञानाय तन्निकषा गतवन्तः तदर्थं च पर्यावरण परिरक्षणाय संरक्षणाय च निरन्तरं चिन्तनशीला अभवन् इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनियां पर्यावरणमित्थं परिभाषितं, ''पर्यावरण उन सभी वाह्य प्रभावों का समूह है जो जीवों को आवृत्त किये रहते है।'' पर्यावरण शब्द विश्वकोशे परिभाषयन् इत्थं निगदितम् ''पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी दशाओं, संगठनों एवं प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो किसी जीव अथवा प्रजाति के उद्भव विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती है।

अशेषे जगति तले पर्यावरण संरक्षणायैव दर्शनानां जनिरभूत, तत्रानेकाः विचारधाराः पर्यावरण संरक्षणायोपदिष्टाः प्रकल्पिताश्च। वैदिक दृष्ट्या अनुचिन्तते तर्हि उपनिषदादौ सर्वत्र प्रकृतेः प्रामुख्येन स्थानं क्रान्तद्रष्टा ऋषिरनुचिन्तयति यत् – तेजोऽसि तेजोमयि धेहि, बलंऽसि बलं मयि धेहि इत्यादयोवधारणा मानव प्रकृतौ सामंजस्य उपस्थापयन्ति भारतीय दर्शने जीवनेन सम्बद्धा अस्वत्थ, नीम्ब, वट न्यग्रोध प्लक्ष उदुम्बरादिभिः स जम्बू आम्र, पनस, तुलस्यादिनां पूजन व्यवस्था पर्यावरण संरक्षणायैव पचाल्यमानासीदस्ति च इदानीमपि जीवनस्य मंगलकृत्येषु गंगा-जलस्य तुलसी पत्रस्य च प्रयोगो बहुधा दृश्यते भारतीय संस्कृत वाङ्मये तुलसीदलस्य गंगा जलस्य सुवर्णस्य च महन्महात्म्यं। यज्ञकर्मानुष्ठाना दौ द्रव्य

* छात्रा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

व्ययाधिक्याद देशां मानवानां प्रवृतिः निर्धनत्वाद् प्रतिहता तेषांकृते धर्मग्रन्थेषु इष्टापूर्त यज्ञस्य निर्देशो विद्यते तत्र वापी, कूप, तडागादि निर्माण वृक्षादिनाम् आरोपणं पुण्यकरं प्रतिपादितम् - गीतायां श्रीकृष्णेनापि वृक्षाणाम् अश्वत्थस्य पामुख्यमुपादयन् प्राह ''अश्श्वत्यः सर्ववृक्षाणां''[१]

वृक्षेषु अश्वत्थस्य महिमा वैज्ञानिका अपि इदानीमप्यङ्गी कुर्वन्ती वाप्यादीनां निर्माणं पृथिव्याः जलम्रोतसः संरक्षणार्थ-मावश्यकम् एतदर्थमीदानी सम्पूर्णे जगति राजनीतिज्ञै वैज्ञानिकश्च चिन्तन धारा प्रवर्तिता विद्यते प्रकृत्या सह भारतीय ऋषीणां सम्बन्ध प्राक् कालाद व सम्बद्धो विद्यते अतएव वेदेषु बहुधा गीतं श्रुतं च तद्यथा- द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः, पृथ्वी, शान्तिरापः शान्तिरोषदयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिः इत्यादि एतेषां सम्बन्धादेव आयुषः शतवषीया कामना ऋषिभिः कृता तद्यथापस्येम शरदः शतं, श्रीणुयां शरदः शतं प्रब्रजां शरदः शतं, एतद् सर्व प्रकृत्यधीनं पर्यावरण दोषरहितं च तदैव शतवर्षीयमायुः लब्धुम शक्यते पुराणेषूपवर्णिताः कथा आधृत्या नुसन्धीयते तर्हि वृक्षारोपणं परमपूर्ण जनकं एको हि वृक्षः दस पुत्र समः इत्यादिकं परमोपादेयं पशु पक्षिणामपि पर्यावरण परिरक्षणे महत्युपयोगिता एतच्च प्राक्तनेषु ग्रन्थेषु वर्णितः सन्निहितो विद्यते बाल्मीकि रामायणे सृष्टिकमे जलसृष्टिमुपपाद्य ब्रह्मा जनान पृष्टवान् यद्यूयमेतस्य (जलस्य) किं करिष्यथ तेषु कैश्चिदुक्तंरक्षामः, अस्यायमाशयो यत् जलस्य रक्षा करिष्यामः तेषां कृते ब्रह्मा राक्षसा, द्योयं भवथ, यैश्चोक्तं यक्षामः (पूजयामः) ते यक्षपदभाजः ब्रह्मणा घोषिता अतः अनेन कथानकेन जल क्षरक्षणस्य महत्युपयोगिता प्रतिपादिता विद्यते तद्यथा – रक्षाम इति यैरूक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः । यक्षाम इति यैरूक्तं यक्षा एवं भवन्तु वः ।।[२]

राज्ञा दशरथेनाज्ञप्तो शशीतो रामः लक्ष्मणेन सह वनं गत्वा कुतोतजो विधेयः इति प्रश्ने जाते रामेणोत्तरितं यत् यत्र जलस्य रमणीयता पूजनार्थं पुष्पाणां बहुलता समाभूमिः फलादीनामुपलब्धिः सारल्येन सम्भवेत् वातावरञ्च विशुद्ध भवेत् तत्रैव वासो विधेयः

तद्यथा –वन रामाण्यकं यत्र जल रामाण्यकं तथ सन्निकृष्टं च यस्मिंस्तु समित्पुष्पकुशोदकम् ।।[३]

सीतान्वेषण रतोरामः ससैन्य समुद्रान्तिकं गत्वा समुद्रेण लंकागमनाय मार्गो जाचितः किन्तु त्रिदिनात्मकेन कालेन पुजनेनापि निस्पृहः समुद्रः रामशर सन्धानोत्तर मात्मानं प्रदर्श्य सेतुबन्धनार्थमभ्यर्थना पूर्वकं नल, नीलयोः, वानरयोः योजनां विधाय कृतशर सन्धानाय रामाय नमः इत्याभिवाद्य स्व शरसन्धानं प्रत्यग् देशे सन्धातुमभ्यर्थयामास –पृथिवी वायुराकाश मापो ज्योतिश्च राघवः । स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वत मार्गमाश्रिताः।।[४]

धनुषकोटौ सन्धानिको रामशरः पश्चिमोत्तर क्षेत्रो जलापव्यय कारिनां जनानां कष्टं खेदं चानुभूय राममभ्यर्थितवान् यत् भवतां सफलो वाणस्तान् व्यापादयिष्यति समुद्र जलाधिक्यर दुरूपयोग गत्वात् खिन्न आसीत्। सर्वेषु भारतीय दर्शनेषु सृष्ट्युत्पत्यौ पञ्चमहाभूतानाम् (पृथिव्यप्तेज, वाय्वाकाशादीनां आश्रयोऽगीकृतः सांख्य वेदान्त ग्रन्थेषु शब्द तन्मात्रत आकाशस्युत्पत्तिः तस्य गुणश्च शब्दः अतः शब्देऽपि पर्यावरणस्य प्रभावः तारेणध्वनीनाऽनुभूयते स्पर्श तन्मात्रतो वायु महाभूतस्योत्पत्तिः अस्य गुण: स्पर्श: इदानीं स्पर्शमधिकृत्य वायावपि इदानीं शीतोष्ण जन्य: पर्यावरण दोषोऽनुभूयते रूप तन्मात्रतस्तेजसो महाभूतस्युत्पत्ति: अत्र रूप गुणस्युपलब्धि: तेजसिचापि पर्यावरण दोष: प्रविष्ट: एतेन सम्पूर्णश्च जगत् उष्मा परिवर्धमानों विद्यते एतदर्थ अनवरतं सर्वदेशीया: राजनैतिका: वैज्ञानिकाश्च तत्छान्तये प्रयतमाना: सचिन्तिता सन्नद्धाश्च सन्ति रस तन्मातत्र: जलमहाभूतस्युत्पत्ति: जलेऽपि पर्यावरण दोष: प्रविष्ट: एतेन भारतवर्षे गङ्गा जमुनद्यो नद्य: प्रदुषिता तन्माध्यमेन समुद्रोपीदानीं प्रदूषण दोषतान्गत: अथ च गन्धतन्मातत्र: पृथ्वी महाभूतस्युत्पत्ति: अत्र गन्धगुणरूत्पद्यते पृथिव्यामपि शस्योत्पादनाय कृषका: नाना प्रकारकाणां जैविका नामुपयोगं परित्यज्य रासायनिकमुर्वरकं प्रयुञ्जाना: सन्त: पृथिवीमपि दूषयन्ति येन पृथिव्या: उर्वराशक्ति: क्षीणमाणा विद्यते।

वेदान्त दर्शने तु पञ्चमहाभूतानां समवाय: एकत्रोपपादित: किन्तु तस्य नाम पञ्चीकरण प्रक्रियायेति नाम्ना व्यवहार: तेन सर्वेषां महाभूतानां परस्परं घनिष्ठ सम्बन्ध उपपद्यते तद्यथा- द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुन:। स्व- स्वेतरं द्वितीयां शौर्योजनात् पञ्च पञ्चते।।[५]

सर्वेषु महाभूतेषु परस्परं सम्लितेषु कथं एकैकस्य परिगणनम् इति चेदुक्तं- ''वैशेष्यात्तातद वादश्तदवाद:'' इति वेदान्त सिद्धान्ताद पृथ्वी जल तेज वायुआकाशादिनां नामकरण पृथग्पृथक् कृतं पञ्चीकरण प्रक्रियाया: बोधिका सारणीरित्थम् -

पञ्चीकरण बोधक सारणी

अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूतानि					पञ्चीकृत स्थूल भूतानि	स्थूलभूतेषु उपलब्धा: गुणा:
१/८ आकाश:	१/८ वायु:	१/८ तेजः	१/८ जलम्	१/८ पृथिवी	आकाश:	शब्द:
१/८ वायु:	१/८ तेज:	१/८ जलम्	१/८ पृथिवी	१/८ आकाश:	वायु:	शब्द:स्पर्शश्च
१/८ तेज:	१/८ जलम्	१/८ पृथिवी	१/८ आकाश:	१/८ वायु:	तेज:	शब्द:स्पर्श:, रूपं च
१/८ जलम्	१/८ पृथिवी	१/८ आकाश	१/८ वायु:	१/८ तेज:	जलम्	शब्द:स्पर्श:, रूपं , रसश्च
१/८ पृथिवी	१/८ आकाश	१/८ वायु:	१/८ तेज:	१/८ जलम्	पृथिवी	शब्द:स्पर्श:, रूपं , रस:, गन्ध:

इदानीं जलवायो: परिवर्तनात् ओजोन परतस्य समस्या समुद्भूतास्ति अत: पञ्च महाभूतेषु प्रदूषणं प्रविष्टम् अत्रैतच्छान्तये भारतीय दर्शने ईशावास्योपनिषदि त्यागपूर्वकं जीवन यापनं निर्दिष्टम् एतेन विश्वस्मिन् शान्ति: स्थापिता भविष्यति उक्तं च- ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध:कस्यस्विद्धनम् ।।[६]

जगत: शान्तये पर्यावरण प्रदूषण निवारणाय च सर्वैर्जनै: समेत्य त्रादृशी व्यवस्था स्थापनीया यया चिरकालिकी शान्ति: सर्वत्र प्रसरेत्।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[१] *गीता,* १०/२६
[२] *वाल्मीकि रामायण,* ७/४/१३
[३] *वाल्मीकि रामायण,* ३/१५/५
[४] *वाल्मीकि रामायण,* ६/२२/२६-२७
[५] *पञ्चदशी,* १/२७
[६] *ईशावास्योयनिषद्,* १

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,95-97
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

भगवत्भक्ति की महिमा

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भगवत्भक्ति की महिमा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सब में भगवान् को देखने वाला तथा सदा भगवान के नाम गुण का कीर्तन करने वाला भक्त कितना और कैसा विनम्र होता है उसका स्वरूप चैतन्य महाप्रभु के द्वारा बताया गया है *तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।*

सदा ईश्वर की सेवा करनी चाहिए। वह सेवा यदि मानसी हो तो उसे सर्वोत्तम माना गया है। चित्त को भगवान के चिन्तन में लगाए रखना मानसी सेवा है। *कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।।1।।*[1] (सिद्धान्त मुक्तावली/श्रीमद्वल्लभाचार्य-1)

मर्यादा मार्ग पर चलने वाले भक्त को तो गंगा जी के तट पर रहकर श्रीमद्भागवत के स्वाध्याय एवं भगवदभक्त पुरूषों के सतसंग में लगे रहना चाहिए। यथा *मर्यादास्थस्तु गंगायां श्रीभागवततत्परः। अणुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।।*[2] (सिद्धान्त मुक्तावली/श्रीमद्वल्लभाचार्य-18)

पूर्वोक्त भक्ति या मानसिक सेवा ही फल देने वाली होगी, इसलिए यहाँ ज्ञान की अपेक्षा भक्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है, इस बात का निरूपण किया गया है। *कश्चिदेव हि भक्तो हि यो मदभक्त इतीरणात्। सर्वत्रोत्कर्षकथनात पुष्टिरस्तीति निश्चयः।।*[3] (पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेदः/श्रीमद्वल्लभाचार्य)

गीता में कहा गया है हजार साधकों में से कोई एक ही मेरा भक्त मुझे ठीक-ठीक जान पाता है, जो मेरा भक्त है। वह मुझे प्रिय है भगवान् के इस कथन से तथा सर्वत्र भगवत्कृपा पर निर्भर रहने वाले भक्तों के उत्कर्ष का भगवान् के श्रीमुख से ही वर्णन होने से पुष्टिमार्ग है। यह निश्चय होता है।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवान् जिस पर अनुग्रह करते हैं, तब वह लौकिक और वैदिक फलों की आसक्ति को त्याग देता है।

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भगवान् भक्ति से प्रसन्न होकर अपनी कृपा प्रदान करते हैं। श्रीमद्भागवत के अष्टम् अध्याय में गजेन्द्र की कथा प्राप्त होती है, जो ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर विष्णु भगवान का स्तवन करता है *न यस्य देवा ऋषभः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुभीरितुम्।*?

नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु।।6।। अर्थात् उस परमानन्द भगवान की लीलाओं का रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नट की भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन सा प्राणी है जो वहाँ तक जा सके और उसका वर्णन कर सके? वे प्रभु मेरी रक्षा करें।

मादृक्प्रपन्न पशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरूणाय नमोऽनलाय। स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसित प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते।।16।।[5] (गजेन्द्र स्तवन/श्लोक संख्या-17) अर्थात्-जिस प्रकार कोई दयालु पुरूष फंदे में पड़े हुए पशु का बन्धन काट दे वैसे ही आप मेरे जैसे शरणागतों की फाँसी काट दें, आप नित्य मुक्त हैं, परम करूणामय हैं और भक्तों का कल्याण करने में आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणों में मेरा नमन है.।

सरोवर के भीतर बलवान ग्राह ने गजेन्द्र को पकड़ रखा था और वह अत्यन्त व्याकुल हो रहा था जब उसने गरूण पर सवार नारायण को आते देखा तो अपनी सूड़ में कमल का एक सुन्दर पुष्प लेकर उपर को उठाया और बड़े कष्ट से बोला-नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है। जब भगवान ने गजेन्द्र को अत्यन्त कष्ट में देखा तो एक बार गरूण को छोड़कर कूद पड़े और गजेन्द्र के साथ ही ग्राह को भी बड़ी शीघ्रता से जलाशय से खींच लाए। फिर देवताओं के समक्ष ही श्री हरि ने चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्र को छुड़ा लिया।

गजेन्द्र ने भक्तिपूर्वक श्रीहरि का अपनी रक्षा हेतु आह्वान किया और हरि ने ग्राह से छुड़ाकर अपने भक्त की रक्षा की। संसार में जो भी प्राणी इस गजेन्द्र स्तवन का पाठ करता है। उसे ऋण संकट और मृत्यु का भय नहीं होता।

बाल्मीकि की कथा आती है जिसमें एक ऐसे ब्राह्मणपुत्र का वर्णन है जो डाकुओं की संगत में डाकू बन गया और चोरी कर अपने परिवार का भरण-पोषण करने लगा। भगवान् नारद को उसका उद्धार करना था। नारद उसी जंगल से जा रहे थे। उस दस्यु ने उन्हें पकड़ कर बाँध दिया। नारद ने कहा कि मुझे बंधा हुआ छोड़कर अपने परिवार से पूछकर आओ कि क्या वे तुम्हारे पापा के सहभागी होंगे या नहीं। माता-पिता, स्त्री पुत्र सबने यही कहा कि सब धन में भागीदार थे पाप में नहीं। दस्यु के नेत्र खुल गए। संत के चरणों में गिर पड़ा। देवर्षि को ऐसा शिष्य मिला था जो राम का नाम भी नहीं बोल सकता था। किन्तु नारद जी ने हार नहीं मानी और कहा तुम मरा-मरा जपो।

शीघ्रता से मरा-मरा कहने पर राम-राम की ध्वनि बन जाती है। दस्यु जप में लीन हो गया कितने वर्षों कुछ पता नहीं। उसके ऊपर दीमकों ने बाँबी बना ली भगवन्नाम के उल्टे जप ने उसे परम पावन कर दिया। सृष्टि कर्ता ब्रह्मा स्वयं आए, दीमकों की वल्मीक से उसे निकाला और आदिकवि होने का गौरव प्रदान किया। अपार है भगवत्भक्ति का प्रभाव।

क्रौञ्च द्वन्द्व वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्व मागतः।।

श्रीमद्भागवत के प्रथम अध्याय में भक्ति की महिमा का विवेचन प्राप्त होता है *नैष्कर्म्यमत्यच्युतभाववर्जितं/ न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्। कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे/ न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।*[6] (श्रीमद्भागवत्-1/5/12)

स्कन्दपुराण में शिव भक्ति की महिमा को प्रकट करते हुए कहा गया है कि वही जिह्वा सफल है, जो भगवान शिव की स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो भगवान् शिव की कथा सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजी की पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेव जी का दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है जो भक्तिपूर्वक शिव के सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिव के क्षेत्र में सदा भ्रमण करते हैं। जिनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान शिव के कार्यें में लगी रहती हैं, वह संसार सागर से पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शिव की भक्ति से युक्त मनुष्य, चाण्डाल, नारी, पुरूष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो तत्काल संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है।

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्। तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ।।

ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे। तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा।[7]

यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु। स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।

(स्कन्दपुराण ब्रा0 ब्रह्मो0 4/7-10)

पद्म पुराण में हरि भक्ति की महिमा को प्रदर्शित करते हुए कहा गया है कि जो कलियुग में भगवान् नारायण का पूजन करता है, वह धर्म के फल का भागी होता है। अनेकों नामों द्वारा जिन्हें पुकारा जाता है तथा जो इन्द्रियों के नियन्ता हैं उन परम शान्त, सनातन भगवान् दामोदर को हृदय में स्थापित करके मनुष्य तीनों लोकों पर विजय पा जाता है। जो द्विज हरिभक्ति रूपी अमृत का पान कर लेता है, वह कलिकालरूपी साँप के डसने से फैले हुए पापरूपी भयंकर विष से आत्मरक्षा करने के लिए योग्य हो जाता है।

कलौ नारायण देवं यजते यः स धर्मभाक्। दामोदरं हृषिकेशं पुरूहूतं सनातनम्।।[10] (पद्म पुराण 61/6)

हरि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम्/ कलिकालोरगादंशात् किल्बिषात कालकूटतः।।[11] (पद्मपुराण स्वर्ग/ 61/7)

हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लंघयो भवति द्विज। किं जपैः श्री हरेर्नाम गृहीतं यदि मानुषैः।।[12] (पद्म पुराण, स्वर्ग0 61/6-8)

इस संसार में श्री हरि की भक्ति दुर्लभ है जिसकी भगवान में भक्ति होती है। वह मनुष्य निःसन्देह कृतार्थ हो जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ

[1]*सिद्धान्त मुक्तावली* -श्रीमद्वल्लभाचार्य, 1

[2]*सिद्धान्त मुक्तावली* -श्रीमद्वल्लभाचार्य, 18

[3]*पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेदः* -श्रीमद्वल्लभाचार्य

[4]सिद्धान्त मुक्तावली -श्रीमद्वल्लभाचार्य, श्लोक सं0 17

[5]*गजेन्द्र स्तवन,* श्लोक संख्या-17

[6]*श्रीमद्भागवत्*-1/5/12

[7]*स्कन्दपुराण ब्रा0 ब्रह्मो0* 4/7-10

[8]*स्कन्दपुराण ब्रा0 ब्रह्मो0* 4/7-10

[9]*स्कन्दपुराण ब्रा0 ब्रह्मो0* 4/7-10

[10]*पद्म पुराण* 61/6

[11]*पद्मपुराण स्वर्ग* 61/7

[12]*पद्म पुराण,* स्वर्ग0 61/6-8

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,98-101
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जून 2016

भारत में वृद्धों की स्थिति : समस्यायें एवं समायोजन

डॉ. रीता मौर्या*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में वृद्धों की स्थिति : समस्यायें एवं समायोजन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रीता मौर्या* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

''वृद्धौ च माता पितरौ/ साध्वी भार्या सुतः शिशुः/ अपकार्यं शतं कृत्वा,/ भर्तव्या मनुरब्रीत्.....'' अर्थात् व्यक्ति को सौ अपकार्य करके भी वृद्ध माता-पिता, साध्वी पत्नी और अवयस्क बच्चों का पालन-पोषण करना चाहिए। (-मनुस्मृति)

पिछले कुछ दशकों में प्रत्येक देश की जनसंख्या में वृद्धों या प्रौढ़ लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है और साथ ही उनके प्रति समाज का दायित्व भी बढ़ा है। अब वृद्धावस्था को विश्व स्तर का एक सामाजिक, आर्थिक व मानवीय मामला समझा जाने लगा है। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह मामला सर्वप्रथम वर्ष 1948 में उठाया गया था। तत्पश्चात् वर्ष 1982 में विएना में वृद्धावस्था पर एक विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया जहाँ 124 देशों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन में 'विएना प्लान फॉर एजिंग' के नाम से एक एक्शन प्लान बनाया गया। जिसमें यह आश्वासन दिया गया कि वृद्धजनों को असुरक्षित नहीं छोड़ा जाएगा, उनकी उपेक्षा नहीं की जाएगी, बल्कि अन्तिम क्षणों तक मर्यादापूर्वक, शान्तिपूर्वक, उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने में उनकी सहायता की जाएगी।

विश्व की जनसंख्या में वृद्धों की बढ़ती हुई संख्या को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1999 को अन्तर्राष्ट्रीय वृद्ध वर्ष घोषित किया गया।

वृद्धावस्था- एक दशा

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार सामान्य जीवन के परवर्ती काल को वृद्धावस्था कहा जाता है। वृद्धावस्था के निर्धारण के जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से सामान्यतया वृद्ध होने में समय के साथ-साथ शारीरिक ढाँचे और कार्य प्रणाली में क्रमशः परिवर्तन आते हैं, जिन्हें बदला नहीं जा सकता। जबकि कालक्रमिक आयु वह होती है जितना समय व्यक्ति ने अब तक जिया है और उसे ही प्रायः वृद्धावस्था का सामान्य सूचक माना जाता है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्यसमाज [भूड़] बरेली (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भारत में जनवरी 1989 में वृद्धजनों हेतु निर्मित राष्ट्रीय नीति के अनुसार 60 वर्ष की आयु पूरी करने वाला व्यक्ति वृद्ध (Senior Citizen or Elderly) की श्रेणी में आता है। जबकि पश्चिमी देशों में यह आयु 65-70 वर्ष मानी जाती है। वैश्विक स्तर पर संस्कृति, देश व परिवार के अनुसार वृद्धावस्था का अर्थ परिवर्तित हो जाता है।

भारत में वृद्धों की वर्तमान स्थिति

सामाजिक परिस्थितियों के उन्नत होने व विज्ञान में हुए विकास के फलस्वरूप पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या की आयु में वृद्धि हुई है। भारत में वर्ष 1901 में 60 वर्ष से अधिक के आयु मात्र 1.2 करोड़ व्यक्ति थे जो 1991 में 5.7 करोड़ से अधिक हो गये।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 2016 से आगे के अनुमानों से पता चलता है कि भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु वालों की आबादी बढ़कर वर्ष 2030 में 18.8 करोड़ तथा वर्ष 2050 में 32.6 करोड़ हो जाएगी।[1]

नेशनल सैम्पल सर्वे आर्गेनाइजेशन (NSSO) द्वारा वर्ष 1986-87 पहली बार वृद्धों का सर्वेक्षण किया गया। सन् 2011 में भारत में लगभग 9 करोड़ वृद्धजन थे जो कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत थे। विश्व के प्रत्येक दस वृद्धों में से एक भारत में है।[2]

NSSO द्वारा कराया सर्वेक्षण (2002-06) में वृद्ध महिलाओं में जीवन प्रत्याषा 64.2 वर्ष और पुरूषों में 62.2 वर्ष थी। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि 2050 में प्रत्येक पाँच में से एक भारतीय 60 वर्ष का होगा।[3]

वृद्धजनों की प्रमुख समस्याएं

वृद्धजन वृद्धावस्था में अनेक समस्याओं से घिरे रहते हैं। ये समस्याएं उनकी आयु, समाजिक आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य एवं जीवन की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न आकार की होती है।

1 समाजिक सांस्कृतिक समस्याएं; परिवार समूह तथा समाज के रूप में व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन, माता-पिता के रूप में कार्यो का समापन, आय का घट जाना, समाजिक कार्यो में सक्रियता कम होना, खाली समय का बढ़ जाना इत्यादि सामाजिक वृद्धावस्था को दर्शाता है। कुछ समय पूर्व तक परम्परागत संयुक्त परिवार में वृद्धजनों की सुरक्षा एवं देखभाल का मुद्दा इतना गंभीर नहीं था, परन्तु तेजी से बदलते समाजिक परिदृश्य, एकांकी परिवार की स्थापना से वृद्धजनों में भावनात्मक, शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक असुरक्षा उत्पन्न हो गयी है। वृद्धजनों में सामाजिक असुरक्षा की भावना विकसित होने लगती है क्योंकि जैसे-जैसे उनकी आयु अधिक होने लगती है उनकी सामाजिक भूमिकाएं सीमित होने लगती हैं। गरीबी व निम्न आय के कारण वृद्धजन अपने पुत्र या परिवार पर आश्रित हो जाते हैं जिससे उन्हें महत्वहीन व भार स्वरूप समझा जाने लगता हैं।

2 स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं; वृद्धावस्था में शारीरिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त मानसिक स्वास्थ्य भी असंतुलित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वृद्धजनों में असहायता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मानसिक वृद्धावस्था वह स्थिति है जिसमें मानसिक क्षमता का ह्रास हो जाता है। सामान्यतया मानसिक क्षमता में ह्रास का सम्बन्ध शारीरिक क्षमता में परिवर्तन से नहीं होता है। इस सम्बन्ध में दत्त का कहना है कि वृद्धावस्था शब्द जैव रासायनिक प्रक्रियाओं के विकास में परिवर्तन को बताता है, जो कि यह निश्चित करता है कि सम्पूर्ण जीव या उसके कोशिकीय या अकोशिकीय ऊतकों में संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक रूप से एकान्तरिक परिवर्तन होता है।[4]

यदि हम वृद्धों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं की बात करें तो भारत में वृद्धों का स्वास्थ्य उनकी समस्याओं का सबसे उपेक्षित पहलू है। जीवन के इस पड़ाव पर कई बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तन होते हैं। मॉसपेशियों एवं वृद्धावस्था में अनेक बीमारियों जैसे- नेत्र ज्योति का कम होना, मोतियाबिन्द होना, कम सुनाई पड़ना, मधुमेह एवं घुटनों का दर्द इत्यादि से वृद्धजन पीड़ित रहते हैं। इसके अतिरिक्त यादाश्त कम होना, भूलने की बीमारी, न पहचानने की समस्या, अवसाद आदि समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती हैं।

3 आर्थिक समस्याएं; आर्थिक असमर्थता तथा दूसरों पर आश्रितता भारत में वृद्धजनों की प्रमुख समस्या हैं। वृद्धों की कुल जन-संख्या में से लगभग 50 प्रतिशत पूर्ण रूप से दूसरों पर आश्रित है जबकि 20 प्रतिशत आंशिक रूप से दूसरों पर आश्रित है (NSSO-1998)।

किसी भी व्यक्ति के सामाजिक स्तर व शारीरिक मानसिक स्थिति का सीधा सम्बन्ध उनकी आर्थिक स्थिति से भी है।

आर्थिक रूप से असहाय वृद्धों की स्थिति की अपेक्षा उन वृद्धजनों की स्थिति थोड़ी बेहतर रहती है जिनके पास अपनी सम्पत्ति या पूंजी है।

भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय के प्रपत्र (1999) के अनुसार भारत में वृद्धों की कुल संख्या में से लगभग 33 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं।

जनगणना 2001 के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत लोग जो 60 वर्ष या अधिक आयु के हैं, कार्यरत हैं। जबकि 60 प्रतिशत वृद्ध अपने बच्चों या परिवार पर आश्रित हैं (हेल्प एज इण्डिया 2008)।[5]

4 वृद्धों के प्रति अपराध की समस्या; आजकल वृद्धजनों के प्रति अपराधिक घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। आए दिन हमें वृद्ध दम्पत्तियों या अकेले रहने वाले वृद्धजनों के साथ चोरी, लूटमार, हत्या आदि घटनायें सुनने को मिल जाती है। सम्पन्न वृद्धों में यह समस्या अकेलेपन के कारण और भी बढ़ जाती है। बड़े शहरो में जहाँ लोगों के बीच सामाजिक-सम्पर्क अत्यन्त क्षीण हो चुके हैं। वहाँ वृद्धजनों के आति अपराध अधिक होते हैं।

5 भावनात्मक समस्याएं; वृद्धजनों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण समय के साथ-साथ बदलता रहता है। वृद्धजन जिस वातावरण में रहते हैं उसके प्रति उनकी अत्यन्त संवेदनशीलता पायी जाती हैं। परिवार से अलगाव के कारण कई वृद्धों में अकेलेपन, निराशा तथा अप्रसन्नता जैसे दुष्परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। वृद्धजन अपने को बोझ समझते हैं और शीघ्र ही जीवन से छुटकारा पाना चाहते हैं। ऐसे लोग अकेलेपन और दुःख दर्द को बाँट नहीं पाने के कारण जीवन से निराश हो जाते हैं, यदि पति-पत्नी में से किसी की मृत्यु हो जाती है तो यह समस्या और बढ़ जाती है। इसके साथ ही कमजोर प्रतिरक्षातंत्र और अवसाद जैसी मुश्किलें शुरू हो जाती हैं। हेल्प एज इण्डिया के आकड़ों के अनुसार 12 प्रतिशत वृद्ध यह मानते हैं कि उनकी कोई परवाह नहीं करता, 13 प्रतिशत को घर में घुटन होती है।[6]

वृद्धजनों का समायोजन

सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा वर्ष 2007 में माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण एवं कल्याण अधिनियम पारित किया गया, इस अधिनियम के धारा-4 में प्रत्येक व्यक्ति पर अपने ऐसे माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिकों के भरण-पोषण का दायित्व डाला गया है जिनके पास स्वयं के भरण-पोषण का कोई साधन नहीं है। यदि कोई वरिष्ठ नागरिक संतानहीन है तो उसके भरण-पोषण का दायित्व ऐसे व्यक्ति पर है जो उस सम्पति को उत्तराधिकार में प्राप्त करेगा।

- जनसांख्यिकीय, सामाजिक एवं अन्य कारणों तथा समाज के परम्परागत ढॉचें परिवर्तन के कारण वृद्धावस्था में वृद्धों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा के प्रति बढ़ती चिन्ता को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने 'ओएसिस' नामक परियोजना प्रारम्भ की है जिसका अर्थ है- वृद्धावस्था में सामाजिक और आमदनी सम्बन्धी सुरक्षा (Old Age Social and Income Security)। इस परियोजना का उद्देश्य सरकार को ऐसे उपाय सुझाना था जिससे प्रत्येक युवक अपनी कामकाजी जिन्दगी में इतनी बचत कर ले कि उसे वृद्धावस्था में गरीबी का सामना न करना पड़े और साथ ही राज्य पर भी अधिक बोझ न पड़े।
- वृद्धों की समस्याओं के निराकरण हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाएं संचालित की जा रही हैं। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (2007), इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना (2009), अन्नपूर्णा योजना (2000) आदि ऐसी ही कुछ योजनाएं हैं। इसके अतिरिक्त आयकर अधिनियम के अन्तर्गत वरिष्ठ नागरिकों को आयकर में विशेष छूट दी जाती है। भारतीय रेलवे वरिष्ठ नागरिकों को सभी श्रेणियों के किराये में 30 प्रतिशत की छूट देता है।

- इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा वर्ष 1992 में वृद्धों के लिए एक समेकित कार्यक्रम चलाया गया जिसके अन्तर्गत वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवास, भोजन, स्वास्थ्य सुविधाएं एवं मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी। इस कार्यक्रम को 1 अप्रैल 2008 को पुनर्स्थापित किया गया।
- वृद्धजनों हेतु सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा अनेक वृद्धाश्रम चलाये जा रहे हैं। भारत में लगभग 855 वृद्धाश्रम हैं। इन वृद्धाश्रमों में निराश्रय वृद्धजनों के रहने खाने आदि की व्यवस्था होती है। यहाँ वृद्धजन आपस में अपना दुःख-दर्द बाँटते हैं, साथ ही विभिन्न परियोजनाओं के माध्यम से कुछ आर्थिक उपार्जन का भी आयास करते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में उन्नत चिकित्सा के फलस्वरूप वृद्धजनों को भले ही शारीरिक स्तर पर अनेक सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं, परन्तु आधुनिकीकरण, औद्यौगीकरण, नगरीकरण, व्यक्तिवाद, पीढ़ियों के अन्तराल, गिरते नैतिक मूल्य, संयुक्त परिवार के विघटन, युवाओं द्वारा शहर या विदेश की ओर पलायन तथा निर्धनता आदि ने वृद्धावस्था के दुःख-दर्द को बढ़ाया है। इस संबंध में न्यूगेन्टेन ने ठीक ही कहा है कि, ''वरिष्ठ जनों की बढ़ती हुई संख्या अपने आप में कोई समस्या नहीं है, समस्या तब उत्पन्न होती है जब वृद्धजनों की संख्या वृद्धि के अनुपात में उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप संस्थाओं का विकास नहीं हो पाता है।''[7]

वृद्धावस्था की समस्याओं के समायोजन के लिए आवश्यक है कि वृद्धजनों को ऐसा अनुकूल सामाजिक वातावरण मिले जिसमें वें स्वयं को सामाजिक, आर्थिक व भावनात्मक रूप से सुरक्षित व सम्मानित अनुभव करें तथा शान्तिपूर्वक व उद्देश्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]योजना, वृद्धजन संबंधी राष्ट्रीय सरोकार, मई 2002 पृष्ठ संख्या 20

[2]रिपोर्ट ऑन द स्टेट्स ऑफ इल्डरली इन सेलेक्टेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया, यूनाइटेड नेशन पापुलेशन फंड न्यू दिल्ली नवम्बर 2012

[3]द वर्ल्ड पापुलेशन प्रास्पेक्टस यूनाइटेड स्टेट, 2010

[4]दत्त एस.के0 -''एजिगं एण्ड न्यूट्रीशन'', हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली 1986

[5]नीड एसेस्मेंट स्टडी एमंग अर्बन एल्डरी, आई0एन0एस0 इण्डिया फार हेल्प एज इण्ड़िया, न्यू दिल्ली मई 2008

[6]'हिन्दुस्तान' समाचार पत्र 18 फरवरी 2014

[7]न्यूगेन्टेन, बी0एल0 -''पैटर्न ऑफ एजिंग, पास्ट, प्रेजेण्ट एण्ड फ्यूचर'', सोशल सर्विस रिव्यू, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो वाल्यूम -4, पेज-512, दिसम्बर 1973

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,102-104
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जून 2016

30 साल में कितना बदला भारतीय मीडिया?

कमल चौहान*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *30 साल में कितना बदला भारतीय मीडिया?* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *कमल चौहान* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मीडिया के क्षेत्र में पिछले कुछ सालों में या कहें पिछले तीन दशकों में तो अभूतपूर्व बदलाव आया है। मीडिया क्षेत्र जो पहले सिर्फ अखबारों और पत्रिकाओं तक सीमित था, अब इसका दायरा बढ़कर टीवी चौनल और सोशल मीडिया तक पहुंच गया है। मीडिया के क्षेत्र के साथ ही इसके इलाके में भी काफी विस्तार हुआ है, पहले जहां बड़े शहरों से अखबार निकला करते थे, अब छोटे कस्बों से अखबार प्रकाशित होने लगे हैं, यहां तक कि गांवों से पत्रिकाओं का संपादन हो रहा है। पिछले 30 साल में मीडिया में ऐतिहासिक बदलाव आया है।

1980 के दशक में भारत एक अर्धसमाजवादी देश हुआ करता था, हर तरफ राशनराज था और उसके जरिए सरकारी तंत्र देश के करोड़ों लोगों पर राज करता था। आजादी के तीन दशक से ज्यादा बीत चुके थे, तब भी कुछ लोग अंग्रेज बहादुरों को याद किया करते थे। वहीं कुछ लोग ऐसे भी थे जो स्वतंत्रता सेनानियों को याद किया करते थे। एक तीसरा धड़ा भी था, जिसे आजादी अधूरी लगती थी। मीडिया या कहें अखबारों की हालत भी कमोबेश कुछ ऐसी ही थी। आमतौर पर अखबार किसी खास भू-भाग तक ही सीमित थे। कथित राष्ट्रीय मीडिया के नाम पर देश की राजधानी दिल्ली से कुछ अखबार निकला करते थे, जो सुदूर के शहरों में या तो देर शाम तक या फिर अगले दिन तक पढ़ने के लिए पहुंच पाते थे। हिन्दी के इन पत्र-पत्रिकाओं में कवियों और साहित्यकारों का जमावड़ा हुआ करता था। पत्रकारिता उन लोगों का कर्म तो थी ही साथ ही साथ उनकी जीविका भी हुआ करती थी और खुद को पत्रकार के बजाय खुद को साहित्कार कहलवाना पसंद करते थे। आज भी हम उन लोगों को श्रद्धापूर्वक याद करते हैं। नौजवान पत्रकार जब उनसे बात किया करते थे, तो वो पत्रकारिता के बजाय साहित्य पर बात करना ज्यादा पसंद करते थे। आज करीब साढ़े तीन दशक बाद कई लोग अच्छे लेखक हैं, लेकिन वो अपना परिचय पत्रकार के तौर पर देना पसंद करते हैं।[1]

1990 के दशक और उसके बाद के वक्त ने हमारे देश में कर्म की प्रधानता स्थापित की। आज हम जब पत्रकारिता विश्वविद्यालयों में जाते हैं और उनके आदर्श के बारे में पूछते हैं, तो वो सिर्फ पत्रकारों का नाम लेते हैं। लेखकों में किसी

* शोध छात्र, पत्रकारिता विभाग, जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी जयपुर (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

को भी अपना आदर्श नजर नहीं आता। असल में ये सब मीडिया में बदलाव की ही वजह से हुआ है। 90 के दशक के बाद टीवी मीडिया का आगमन हुआ और न्यूज चैनलों की बाढ़ सी आ गई। 2000 के दशक के बाद तो जैसे नए निजी न्यूज चैनल्स खुलने का सिलसिला ही चल पढ़ा हालांकि इस दौरान आर्थिक कारणों से कुछ न्यूज चैनल बंद भी हो गए, लेकिन नई पीढ़ी या कहें नौजवानों का इनकी तरफ रुझान और ग्लैमर कहीं भी कम नहीं हुआ। टीवी के आगमन के बाद ही पत्रकारिता ने ग्लैमर का रूप ले लिया और उसने साहित्यकारों के प्रति वैसी ही वितृष्णा पैदा कर दी, जैसी कभी साहित्यकार संपादकों के वक्त में पत्रकारों के प्रति हुआ करती थी। पत्रकारिता की पढ़ाई कर रही आज की नौजवान पीढ़ी सिर्फ न्यूज चैनल्स में अपना करियर बनाना चाहती है, और उसमें से भी अधिकांश तो ऐसे होते हैं, जिन्हें न्यूज एंकर बनना होता है। साफ है कि टीवी मीडिया के बाद से ही पत्रकारिता को लेकर सोच में भी बदलाव आया है।

पिछले तीस सालों में भारतीय पत्रकारिता जगत या फिर मीडिया में एक और बड़ा बदलाव आया है। 1980 के दशक में भारतीय पत्रकारिता सामान्यतः महानगरीय और कस्बाई इलाकों में बांटी जा सकती थी। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और चेन्नई जैसे बड़े शहरों से ही अखबार निकलते थे और प्रकाशित होकर छोटे शहरों या कस्बों के लिए भेजे जाते थे। कई बार उसी दिन शाम को तो कई जगह अगले दिन अखबार पहुंचता था, लेकिन तब भी उसकी उतनी ही विश्वसनीयता होती थी। मगर मीडिया समूहों ने आज काफी विस्तार कर लिया है। आज हर छोटे शहर से अखबार निकलने लगे हैं। जो अखबार पहले सिर्फ एक जगह से निकलते थे, आज वो बहुसंस्करणीय हो गए हैं।

1991 में अपनाई गई नई आर्थिक नीतियों का असर बड़े पैमाने पर हमारे समाचार माध्यमों पर पढ़ा। पिछले ढाई दशक में यहां मीडिया का असली विस्तार हुआ है, जिसने न्यूज मीडिया के परिदृश्य को ही बदल दिया है। अब मीडिया सामाजिक सरोकारों से पीछा छुड़ाता हुआ पूरी तरह मुनाफा कमाने की दौड़ में शामिल हो गया है। अब मुक्त बाजार की दौड़ में शामिल इस महादेश के सामाजिक जीवन में आज बड़ी पूंजी और कॉर्पोरेट का हस्तक्षेप हर तरफ देखा जा सकता है।[2]

आधुनिक युग में समाचार पत्रों का तेजी से व्यवसायीकरण हो रहा है। स्वतंत्रता से पहले समाचार पत्रों में मिशन मुख्य भाव था, लेकिन आज व्यावसायिक पक्ष प्रमुख हो गया है। वर्तमान समय में विज्ञापन की होड़ में पाठकों को आकर्षित करने के लिए समाचार पत्रों की प्रस्तुति में बदलाव आया है। समाचार पत्रों को अब नाटकीय अंदाज में और चमक-दमक के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा है। खासकर सनसनी फैलाने वाले समाचारों ने भारतीय मीडिया को खासा प्रभावित किया है। पत्रकारिता के नैतिक मूल्यों में पिछले 30 सालों में काफी गिरावट आई है। आज हालत ये है कि मीडिया का पूरी तरह से बाजारीकरण और राजनीतिकरण कर दिया गया है।[3]

पिछले 30 सालों में मीडिया में एक और बड़ा बदलाव ये आया है कि मीडिया अब नौजवानों के लिए करियर भी बन गया है। कई नौजवान पत्रकार अब इज्जत के साथ अपनी आजीविका इस पेशे से चला रहे हैं। अब पत्रकारिता के पेशे में भी नौजवानों को अच्छा भुगतान किया जा रहा है, इसीलिए बड़ी संख्या में नौजवान ऐसे हैं, जो मीडिया या पत्रकारिता को पेशे के तौर पर अपनाना चाहते हैं।[4]

नई तकनीक के साथ एक नई विभा भी इन दिनों अवतरित हुई है, और ये है सोशल मीडिया। लोग सोशल मीडिया को परंपरागत मीडिया से अलग मानते हैं। हालांकि वो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सोशल मीडिया के साथ एक गलत प्रवृति ये जन्मी है, कि इसका इस्तेमाल प्रोपगैंडा के लिए किया जाने लगा है। इससे सच और झूठ की सीमा रेखा पतली हो चली है। इसके बाद भी कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया ने हर खासो आम को पत्रकार बना दिया है। हर इंसान ट्विटर और फेसबुक के जरिए लाइव रिपोर्टिंग कर रहा है, तो बड़े मुद्दों पर अपनी बेबाक और सीधी राय भी दे रहा है। लिहाजा सोशल मीडिया एक क्रांतिकारी टूल के रूप में उभरकर सामने आया है और आने वाले दिनों में इसके और विस्तार की सीधी संभावनाएं नजर आती हैं।

ऐसे में कहा जा सकता है कि पिछले 30 सालों में भारतीय मीडिया में अभूतपूर्व बदलाव आया है। खबरों की दुनिया का न केवल विस्तार हुआ है, बल्कि इसके टूल भी खासे बढ़ गए हैं। पहले सिर्फ अखबारों तक सीमित रहने वाला मीडिया आज न्यूज चौनल और सोशल मीडिया तक पहुंच गया है। हालांकि पेड न्यूज, विज्ञापनों की अधिकता या प्रोपगैंडा जैसी कुछ कुरीतियां भी इसके साथ शुरू हुई हैं, लेकिन इनसे पार पाकर आने वाले दिनों में इसके और भी आगे बढ़ने की उम्मीद की जा रही है।

संदर्भ

[1]शशिशेखर (20 सिंतबर, 2015) -*हिन्दुस्तान समाचार पत्र,* दिल्ली

[2]सिंह, भूपेन (2012) -*मीडिया बाजार और लोकतंत्र,* दिल्ली

[3]सिंह, अरविंद कुमार (2009) -*समाज में अखबारों की भूमिका,* विदुरा, नई दिल्ली

[4]राय, के, अनिल (2007) -*पत्रकारिता और पत्रकारिता का भविष्य,* यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,105-109
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 जून 2016

मीडिया में महिलाओं का वस्तुकरण

इप्शिता चटर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मीडिया में महिलाओं का वस्तुकरण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *इप्शिता चटर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी देश की प्रगति का अनुमान लगाना हो तो उस देश में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करें। इसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि स्त्री-अस्मिता और देश की अस्मिता का जुड़ाव-बिन्दु एक है।

भारत की आधी जनसंख्या महिला होने के बावजूद पित्तृसत्ता एवं रूदिवादिता प्रचलित होने के कारण महिलाओं के साथ प्रत्येक क्षेत्र में असमानतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। आधुनिक समाज की वर्तमान स्थिति में मध्यम वर्ग की महिलाएं आज-कल नए-नए पेशों, उद्यमों एवं नई-नई वृत्तियों से जुड़ रही है जबकि परम्परागत समाज के संस्थागत ढॉचे में महिलाओं को अपने परिवार एवं समाज में अपेक्षित, उचित एवं महत्त्वपूर्ण स्थान अभी तक भी नहीं मिला हैं। पुरूष समाज द्वारा आज के आधुनिक समय में भी महिलाओं के प्रति परम्परागत अपेक्षाओं के कारण पुरूषों का स्त्री की शारीरिक सुन्दरता के प्रति दृष्टिकोण अपरिवर्त्तित है। आज भी महिला वर्ग से यह अपेक्षा की जाती है कि नारी पुरूष वर्ग की मांग एवं इच्छा के अनुरूप ही अपने शारीरिक सौदर्य को परिभाषित एवं परिमार्जित करें।

मीडिया जिसे 'चतुर्थ स्तंभ' कहा जाता है वह भी पुरूषवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है जिस कारण समाज में पित्तृ-सत्ता को और बल मिलता है। आज के उपभोक्तावादी संस्कृति में साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, टी.वी. एवं समाचार-पत्रों के द्वारा महिलाओं को एक ग्लैमरस तथा रूमानी छवि प्रदान करके अभिव्यक्त किया जाता है।

आधुनिक दौर में महिलाएं पारंपरिक रूढ़ियों से अधिक क्रूर बंधनों में बंध रही है। पुराने आभूषणों की बेडियाँ अब विलासिता की रंगीनियों, देह-प्रदर्शन के क्षणिक सुखों और देह-साधना के अनाहार, कॉस्मेटिक व प्लास्टिक सर्जरी की बेड़ियों में तब्दील हो गई है और स्त्री मात्र उपभोग्य बनकर रह गई है। तभी तो देहभोग के लिए बाध्यता और स्वेच्छा के परिणाम समान रूप से सामने आ रहे है। (खान, 2011)[1]

* शोध छात्रा, महिला अध्ययन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

नारी के शरीर को एक वस्तु के रूप में प्रचारित एवं प्रसारित करने का कार्य आज भी सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री, उद्योग, मीडिया एवं पूंजीवादी बाजार की शक्तियों के द्वारा बदस्तूर जारी है। इस प्रकार बहुत ही चतुराई के साथ समाज में नारी की रचनात्मक, सृजनात्मक एवं बौद्धिक प्रक्रिया को नकार दिया गया है और उसको एक अबौद्धिक प्राणी ही नहीं अपितु एक देह, एक जिस्म, एक वस्तु, एक भोग्य पदार्थ, एक खिलौने की तरह परिभाषित, प्रचारित एवं स्थापित करके नारी की शक्तियों का मजाक उड़ाया जा रहा है। (ओझा, 2014)[2]

''स्त्री और बाजारवाद की व्याख्या करते हुए आशाजी लिखती है, 'औरत ने जन्म दिया मरदों को, मरदों ने उसे बाजार दिया।' यहाँ बाजार का अर्थ सीमित था, यानी वेश्यावृत्ति का कोठा। पर अब बाजार का अर्थ विस्तार पा गया है, यानी उपभोक्ता बाजार में स्त्री अथवा उपभोक्ता समाज में स्त्री का बाजार मूल्य। इस 'मूल्य' का अर्थ भी व्यापक हो गया है - विज्ञापनों में तेल, साबून, जूते बेचती स्त्री। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में उतरकर अपना बाजार-मूल्य आंकती स्त्री। कोठे से निकलकर 'ग्लैमर' वाली अच्छी नौकरियाँ, पद और 'कॉन्टेक्ट हथियाती स्त्री, व्यापार सौदे करवाती, परियोजनाएं पास कराती, ठेके दिलाती स्त्री। राजनीतिज्ञों को जमाने चढ़ने, अफसरों की, पति की पदोन्नति कराने आदि में सॉप-सीढ़ी का खेल खेलने में शामिल स्त्री, यानी अपना बाजार-भाव बढ़ाने में अपनी अस्मिता कई तरह से दांव पर लगाती स्त्री''।(खान, 2011)[3]

यहाँ समाचार-पत्र, टेलीविजन, साहित्य एवं इन्टरनेट जैसे मीडिया के साधनों के द्वारा नारी छवि को किस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है इसकी विवेचना करेंगे।

समाचार-पत्र और महिला

आजकल समाचार-पत्रों को खबरों की अपेक्षा विज्ञापनों से पृष्ठों को भरा जाता है और इन विज्ञापनों में नारी को अवांछित या अवांछनीय तरीके से प्रदर्शित किया जाता है। इन विज्ञापनों में जिन मॉडल को लिया जाता है वे पतली, गोरी, सुन्दर होती है। समाज इन्हें आदर्श नारी समझने लगता है। महिलाएं भी उन जैसा बनना चाहती है या दूसरे उन्हें उन जैसा बनने के लिए प्रेरित करते हैं।

सुंदर दिखने के लिए ये सुंदरियाँ ही नहीं, इन्हें मानक मॉडल मानकर विश्व की न जाने कितनी लड़कियाँ अपने शरीर पर कितना अत्याचार करती हैं, इनका कोई हिसाब नहीं। छरहरी काया के लिए अनाहार व कुपोषण की शिकार होकर, न जाने कितनी आँधियों-व्यधियों को आमंत्रण देना पड़ता है। उन्हें, यह तभी जान पाती है, जब उन्हें इसका खमियाजा भुगतान पड़ता है क्योंकि सभी तो इतनी साधन संपन्न नहीं होती कि निरंतर सौन्दर्य विशेषज्ञ और चिकित्सक की देखरेख में रहे। अमेरिका में अप्राकृतिक रूप से 'मेंटेन' की गई काया के कारण अनेक स्त्रियां मातृत्व से वांचित हो गई। इस सनक का केवल यह आंकड़ा ही काफी होगा कि वहाँ निश्चित माप व आकृति पर उतरने के लिए हर साल लगभग पौने दो लाख महिलाएं 'कॉस्मेटिक सर्जरी' कराती हैं, जिसमें अधिक मामले स्तन सर्जरी के होते है। स्तनों में सिलिकॉन भरवाने से कितनी स्त्रियों को क्या हानि पहुँची, यह एक अलग दर्दनाक कहानी है। (खान, 2011)[4]

ये विज्ञापन महिलाओं तथा पुरूषों में असमानता भी उत्पन्न करती है। उदाहरण के लिए महिलाओं के लिए 'फैट गो' का विज्ञापन दिखाया जाता है कि इसका प्रयोग करके आप पतली हो सकती है वहीं पुरूषों के लिए 'वेट ग्रेनर' का विज्ञापन है जिसका प्रयोग कर वे हृष्ट-पुष्ट दिख सकते हैं। उन्हें बाईसेप बनाने के लिए कहा जाता है, आखिर एक महिला तथा एक पुरूष के शरीर को लेकर इतना अंतर क्यों है?

टेलीविजन और महिला

टेलीविजन ने जिस तेजी से भारतीय जनमानस में अपनी पैठ बनाई है, संभवतः किसी दूसरे संचार माध्यम ने वैसी पैठ नहीं बनाई। शहरों से लेकर गॉवो तक टेलीविजन की प्रभावी उपस्थिति देखी जा सकती है। गाँवों के झोपड़े हो अथवा महानगरों की झोपड़पट्टियाँ, सर्वत्र टेलीविजन की पहुँच हैं। समाज का कोई तबका इससे अछूता नहीं है। इस टेलीविजन ने अपनी टी आर पी बढ़ाने के लिए घोर बाजारू हथकंडे तथा पश्चिमी देशों की अंधी और भद्दी नकल करना शुरू कर दिया है। इन

टेलीविजन के माध्यम से दिखाए जाने वाले धारावाहिक या फिल्म महिला की पारंपरिक एवं दयनीय स्थिति को और प्रबल कर दिया है कि वे गृहस्थ का कार्य ही करती है, यदि वो घर के बाहर कार्य भी करती है तो घर आकर उन्हें सारा कार्य करना पड़ता है और जहाँ आधुनिकता की बात हो कैमरे का लेंस उनके अंगों को दिखाने का कसर नही छोड़ता। चाहे वो कोई विज्ञापन हो या सेक्सी डांस महिलाओं के अंग प्रदर्शन द्वारा पुरूष यौनिकता को बढ़ावा दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर 'मेन डीओं - वाइल्ड स्टोन' का विज्ञापन देखे तो इसमें महिला को प्रदर्शन करने की कहीं जरूरत महसूस नहीं होती परन्तु फिर भी एक महिला का प्रदर्शन कर उसकी यौनिकता को दर्शाया जाता हैं।

विज्ञापन!! विज्ञापन!! सर्वत्र विज्ञापन किन्तु नारी के कामुक रूप के साथ। विज्ञापन मे चाहे वह साबुन हो, बाथरूम क्लीनर हो, शेविंग क्रीम हो.....सब में नारी का संग होता है क्योंकि मानव व्यवहार मनोविज्ञान पर आधारित हैं जब युवा नजाकत पर्दे पर दिखाई देती है तो उसी उम्र वाले युवा-युवतियों का मन मचल उठेगा और बिक्री धड़धड़ाकर होगी। (डहेरिया, 2011)[5]

प्रतिस्पर्धा और मुनाफे के इस खेल में नारी का उपयोग एक वस्तु की तरह किया जा रहा है। हर कम्पनी अपनी एक महिला ब्रांड एम्बेस्डर बना लेती है। जो छोटी उत्पादन कम्पनी है उसकी मॉडल बदलती रहती है। कम्पनी के उत्पादन उसे अपनी तन उघाडू छवि के साथ मुस्कुराते हुए बेचने होते हैं। (खान, 2011)[6]

महिलाएं भी इस चकाचौंध का हिस्सा बनने पैसा कमाने के लिए शारीरिक प्रदर्शन को एक जरीया बना लिया है। वहीं टेलीविजन ने बाजार का ऐसा जादू चलाया कि श्लील गौण हो गया और अश्लील मुखर हो गया। टेलीविजन के माध्यम से 'शीला की जवानी' और 'मुन्नी की बदनामी' से जुड़े आइटम सांग घर-घर धमाल मचाए हैं बूढ़ी शीलाओं तथा मुन्नी नाम धारियों का तो हाल बुरा है।

विद्वानों का कहना है कि यदि किसी देश को कमजोर करना है तो सबसे पहले उसकी संस्कृति पर हमला करो। दुःख का विषय यह है कि यह हमला कोई बाहरी नहीं बल्कि टेलीविजन कर रहा है।

साहित्य और महिला

साहित्य पढ़े-लिखे लोगों के लिए होता है। लेकिन कुछ साहित्यकारों ने भी महिलाओं को मानव की तरह नहीं बल्कि उपभोक्ता तथा यौनिकता की वस्तु की तरह ही परोसा है।

विद्वानों के द्वारा नारी को अमूर्त्त सार्वभौमिक एवं सारतत्व कहा गया है। यही नहीं, उनके विभिन्न प्राणीशास्त्रीय आयामों को दर्शाने का प्रयास किया गया है। जबकि इसके विपरीत नारी शरीर को सांस्कृतिक वस्तु की श्रेणी में रखा जाता है, जिस कारण कभी-कभी विरोधाभासी अर्थ निकल आते है। उनके शरीर के अनेक अर्थ लगाए जाते है। उदाहरण के लिए छोटी बालिका के शरीर का अर्थ एक किशोरी के शरीर के अर्थ से भिन्न लगाया जाता है। इसी प्रकार एक विवाहित नारी के शरीर के भी विभिन्न अर्थ लगाए जाते है। वस्तुतः नारी के शरीर का अर्थ एक व्यापक उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़े होने के कारण नारी के शरीर को न केवल नियंत्रित किया जाता है अपितु उसको वगीकृत करके उसके शरीर को आंकड़ों में मापा भी जाता है। यहीं नहीं नारी के विभिन्न अंगों जैसे - कमर, नितम्ब एवं उरोजो आदि के अलग-अलग मापदण्ड निर्धारित करके व्यक्त किया जाता है। (ओझा, 2014)[7]

लिहाफ को पढ़े तो उसमें बेगम जान के अंगों और उनकी खुबसूरती का इस प्रकार से विवरण पाते है, ''उनके जिस्म की जिल्द भी सफेद और चिकनी थी.....बड़े-बड़े चिकने और सफेद हाथ और सुडौल कमर.....(चुगताई, 1942)[8] इस लघु कथा में इस्मत चुगताई नारी शरीर को स्पष्ट रूप से उजागर करती है परन्तु जहाँ समलैगिकता की बात आती है वे उसे स्पष्ट रूप से नहीं बताती बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से इंगित करती है। शायद इन विषयों या मुद्दों के बारे में बात करना उसके लिए असहज था, समाज उनका विरोध करता परन्तु जहाँ तब नारी शरीर की बात है इसे इसे लेकर कोई विरोध नहीं होता। ये हमारे पित्तृसत्ता समाज के लिए आम बात है तथा उनकी रूचि के अनुरूप है।

इसके अलावा इन साहित्यों तथा पुस्तकों में लिंग आधारित भूमिका भी देखने को मिलती है। पिता को दर्शाने का सबसे प्रचलित तरीका है उसे अखबार पढ़ते या सिगरेट पीते हुए दिखाया जाये। उसके विपरीत किसी पुस्तकों में माता को अखबार

पढ़ते नहीं दिखाया गया। पिता घर का कोई काम नहीं करता है जबकि माता लगभग सारे दिन ही घर संभालती है या बच्चे पालती है। इस प्रकार का चित्रण बड़ी खुबसूरती से बालक पाठकों को माता-पिता के परम्परागत रूप का संदेश पहुँचा देता है। यानि पुरूष का क्षेत्र बाहरी है और स्त्री का घर के भीतर। यह विभाजन स्पष्ट हो जाता है। पुस्तकों में स्त्रियाँ सदा ही घरेलू और जैवकीय भूमिका में ही बँधी रही हैं। यह परिस्थिति इस तथ्य को कतई नकार देती है कि स्त्रियाँ अनेक क्षेत्रों में सक्रिय हैं। (असीन एवं अगवाल,1988)[9]

इन्टरनेट और महिला

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।

वैश्वीकरण मुख्यतः तीन सिद्धांतो पर चलता है- मुक्त बाजार, आर्थिक वैश्वीकरण एवं निजीकरण। इस सिद्धांतो पर चलते हुए भारत में भी वैश्वीकरण के कुछ सकारात्मक प्रभाव दिखाई देते हैं, व्यापक व प्रभावशाली संचार व्यवस्था, विभिन्न कम्पनी के यहाँ आने से उत्पन्न हुए रोजगार के नए अवसर, जिन्होने न सिर्फ पुरूषों बल्कि महिलाओं को भी अवसर प्रदान किये। महिलाओं को उच्च वेतन मिलने से उनके आत्मविश्वास और स्वतंत्रता में वृद्धि हुई। उनमें यह भाव जागृत हुआ कि वे भी पुरूषों की बराबरी कर सकती हैं।

हर सिक्के के दो पहलू होते है। वैश्वीकरण का भी एक गहन पक्ष है जो डराता है। भारत में लगभग कुछ श्रमिकों का 31प्रतिशत महिला श्रमिक है जिसमें 15-16 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में काम करती है। इन क्षेत्रों में न तो अच्छा वेतन है, न काम के निश्चित घण्टे, न कोई जॉब सिक्यूरिटी, न ही सामाजिक सुरक्षा। इन क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं के शोषण होने की संभावना बहुत अधिक है जो उनके शरीर, मन और स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया को इन्टरनेट ने काफी बढ़ावा दिया है। इन्टरनेट कम्प्यूटरों की ऐसी विश्वव्यापी अन्तर्सम्बन्धित श्रृंखला है, जिसके जरिए कहीं भी आंकड़ों व कार्यक्रमों को तत्काल प्राप्त या प्रेषित किया जा सकता है। इन्टरनेट ने पूरे विश्व को समेट दिया है। इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी संदेश, आंकड़े, चित्र आदि बहुत तेजी से भेजे जा रहे हैं। इसके द्वारा विश्व के लोगों का आपसी मेलजोल बहुत बढ़ा हैं इसके साथ ही ऑनलाइन चुहलबाजी एवं इंटरनेट डेंटिग पर सुझाव के साथ इंटरनेट पर प्यार आदि बढ़ता जा रहा है। इंटरनेट पर कुछ ऐसे एप्लीकेशन व साइट्स भी है जहाँ मॉडल के सेक्सी चित्र तथा वीडियों देखने को मिलते हैं। इसके अलावा इंटरनेट पॉर्न वेबसाइटों पर सेक्स से जुड़ी तस्वीरों एवं विडियो से भरा है। इन सब की बढ़ती मांग से ब्लैक मेलिंग, धोखाधड़ी, साइबर क्राइम जैसे अपराध बढ़ते जा रहे हैं।

हाल ही में यूनेस्को ने एक पुस्तिका प्रकाशित की हैं जिसमें इंटरनेट पर पसरती अश्लीलता के खतरे से अगाह किया गया है। पुस्तिका के मुताबिक दुनियाभर में इस समय लगभग 40 हजार ऐसे चैटरूम काम कर रहे है जिनमें बच्चों के प्रति कुंठित यौन मानसिकता रखने वाले लोग अपने आपको किशोरवय का बताकर उनसे मेलजोल बढ़ाते है और फिर मौका मिलने पर उनका यौन शोषण करने लगते हैं। इंटरनेट और तकनीक के दुरूपयोग का कितना घातक प्रभाव हमारे समाज पर पड़ता है इसके कुछ उदाहरण पिछले दिनों देखने को मिलते रहे हैं। राजधानी दिल्ली के प्रतिष्ठित स्कूल के एक छात्र ने अपनी कुछ शिक्षिकाओं व सहपाठिनों के बारे में एक अश्लील वेबसाइट बना डाली। इसी प्रकार राजधानी दिल्ली के अतिविशिष्ट दिल्ली पब्लिक स्कूल (आर के पुरम) के एक किशोर ने अपनी सहपाठी को घर बुलाकर उसके साथ सेक्स का आनन्द लिया और समूचे कर्म को अपने मोबाइल फोन में उतार कर उसे एम.एम.एस. के जरिए अपने दोस्तों तक को दिख डाला। (सिंह, 2008)[10]

अश्लीलता का चौतरफा असर हमारी सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है और दुर्भाग्य से अश्लीलता का स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है।

बात बहुत कड़वी है लेकिन सच है। पुरूष-समाज ने अपने शताब्दियों के विकास में नारी के साथ सबसे क्रूर मजाक यह किया कि उसे मात्र शरीर तक सीमित कर दिया। एक सुंदर चेहरे और एक सुंदर शरीर के अतिरिक्त उसका और कोई

अस्तित्व नहीं रहा। नारी मानसिक रूप से कितनी सशक्त है, कितनी प्रतिभाशाली है, शैक्षणिक आधार पर कितनी योग्य है, सामाजिक आधार पर कितनी जागरूक है, मानव-नीवन के विभिन्न संदर्भो में वह कितनी उपयोगी है, ये सब बातें गौण बल्कि निरर्थक हो गई। नारी एक सुंदर शरीर के अतिरिक्त कुछ और नहीं रही (खानकारी एवं अग्रवाल, 2000)[11] अंतर्राष्ट्रीय मीडिया दुनिया की अभिजात्य पश्चिमी नजरिए से देखता है ओर *'नारीवादी की मौत'* कहकर किलकारता है। (कारात, 2008)[12]

स्त्री मुक्ति की परिभाषा देते हुए चित्रा मुद्गल कहती है - ' स्त्री मुक्ति' की मेरी परिभाषा उसके मस्तिष्क से जुड़ी है। मेरी दृष्टि में स्त्री की मुक्ति तभी संभव है जब वह देह से नहीं मस्तिष्क से पहचानी जाएगी। संकट यह है कि अब तक इसे 'देह' के रूप में जाना जाता रहा है। आधुनिक बोध के नाम पर उसको देह समझने का षड्यंत्र रचा जा रहा है और वह स्वयं भी उसमें उलझती नजर आ रही है। आज स्त्री यौन स्वतंत्रता में अपनी मुक्ति देख रही है, पुरूष भी देखता है कि मुक्त यौन संबंधों में जाने वाली स्त्री उसके लिए आसानी से उपलब्ध है। सोच से परिवर्तन जरूरी है - स्त्री को पहचान उसके अपने निर्णयों, विवेचना, उसके सामर्थ्य उसके दिमाग से, संघर्षों और समस्याओं के समाधानों से होगी। वह निर्णयात्मक भूमिका में हो, क्षेत्र चाहे कोई भी हो - विज्ञान हो, समाज हो, परिवार हो, राजनीति हो, चाहे देश के विकास की बात हो जब तक नारी की विचारशीलता को प्रमुखता नहीं मिलती तब तक उसकी मुक्ति का स्वप्न अधूरा है। (खान, 2011)[13]

इस प्रकार हम पाते हैं कि हमारा पित्तृसत्तात्मक समाज महिलाओं को आदर्श नारी के रूप में देखना पसंद करता है परन्तु इस पुरूषवादी समाज की रूचि महिला की यौनिकता से ज्यादा और कुछ नहीं है। मीडिया जिसे 'चतुर्थ स्तंभ' कहा गया है वह भी इनके विचारों तथा रूढ़िवादिताओं को और प्रबल करता है। जैसा कि उपरोक्त बताया गया है ये महिला के जीवन के सभी पहलुओं पर असर डालते हैं यहाँ तक कि खुद महिला अपने बारे में क्या राय रखती है इस पर भी। अतः यह आवश्यक है कि हम मीडिया की इस चालाकी पूर्ण भूमिका तथा वर्ग व लिंग आधारित पूर्वाग्रहों को पहचाने और चुनौती दें। पुरूष वर्ग के हाथों कठपुतली होने बजाय इन माध्यमों को नियंत्रित कर वर्तमान व्यावस्था को चुनौती दें। इसकी पहल महिलाओं को ही करनी होगी।

संदर्भ्र सूची

[1]खान, शमा -*विज्ञापन एवं मीडिया में नारी की छवि,* राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2011, पृष्ठ संख्या 19

[2]ओझा, एस0 के0 -*समाजशास्त्र,* अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, मेरठ, 2014, पृष्ठ संख्या 586

[3]खान, शमा, *पूर्वोक्त,* पृष्ठ संख्या 21

[4]खान, शमा *पूर्वोक्त,* पृष्ठ संख्या 22

[5]डहेरिया, खेमसिंह -*विज्ञापन : स्त्री छवि,* अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 3

[6]खान, शमा -*पूर्वोक्त,* पृष्ठ संख्या 76

[7]ओझा, एस0 के0 -*पूर्वोक्त,* पृष्ठ संख्या 586

[8]चुगताई, इस्मत, लिहाफ, *Women writing in India – 600B.C. to the Present (Volume II : The 20th centry)* Edited by Susie Tharu and K.Lalita, Oxford University press, New Delhi, 1993, Page- 131-132

[9]भसीन, कमला एवं अग्रवाल, बीना -*स्त्रियां व प्रचार माध्यम* (एशिया में विश्लेषण विकल्प तथा कर्रवाई), काली फॉर विमेन, नई दिल्ली, 1988 पृष्ठ संख्या 27

[10]सिंह, मीनाक्षी निशांत -*आधुनिकता और महिला उपीड़न,* ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 146-147

[11]खानकाही, निश्वर एवं अग्रवाल -*गिरिराजशरण, नारी कल और आज,* हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2000 पृष्ठ संख्या 7

[12]कारात, बृंदा -*भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति,* होकर नाइस प्रिटिंग प्रेस, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 37

[13]खान, शमा -*पूवोक्त,* पृष्ठ संख्या 24

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,110-113
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 जून 2016

समकालीन कविता में प्राकृतिक सरोकार

हरिकेश मीना*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *समकालीन कविता में प्राकृतिक सरोकार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिकेश मीना* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के कारण न केवल प्राकृतिक मूल्यों का ह्रास हुआ, बल्कि प्रकृति से मानव की पार्थक्य की स्थिति भी आ गई। औद्योगिक विकास के कारण जहाँ एक ओर प्राकृतिक संसाधनों को दोहने की परम्परा आरम्भ हुई वहीं दूसरी और प्रकृति के अवलोकन की सौन्दर्यपरक दृष्टि भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी, इसका परिणाम यह निकला कि अकविता के दौर तक प्रकृति के साथ जों सौन्दर्य बोध था वह धीरे-धीरे कविता में कम होने लगा, न केवल मानव ने भी प्रकृति की उपेक्षा की वरन् साहित्य ने भी प्रकृति से कोई सरोकर नही रखा। ऐसे में जब अस्मिता की खोज हुई तो सबसे पहले साहित्यकार का ध्यान प्रकृति की ओर गया, जिसका कि मनुष्य के साथ जन्म जन्मांतर का संबंध था, लेकिन मनुष्य ने जड़ता के कारण इस चिर-सम्बंध को भुला दिया है।

समकालीन कविता प्रकृति से राग बोध की कविता है। समकालीन कविता में प्रकृति को दो संदर्भो में देखा गया है। प्रथम संदर्भ जहाँ कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर प्रसन्न होकर उसके रूप को साकार करता है। जैसे प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल ने ''चन्द्र गहना से लौटती बेर'' ''बादल का बेटा'' आदि कविताओं में किया है। दूसरा सन्दर्भ है जिसमें आधुनिक और उत्तर आधुनिक युग में मनुष्य द्वारा प्रकृति-विनाश को दृष्टि में रखकर उसके दुष्प्रभावों का सजीव चित्रण किया गया है इसमें पहली दृष्टि तो परम्परागत और दूसरी दृष्टि समकालीन। पहाडों को तोड़ना, सघन वनों को काटकर समतल में परिणत कर पाँच सितारा होटल बनाना, औधोगिक कारखाने स्थापित करना दूसरे सन्दर्भ का परिचायक है।

आँठवे दशक में अपनी खास पहचान रखने वाले कवि ज्ञानेद्रपति ने कविता को एक बार फिर प्रकृति के केन्द्र में ले जाने की कोशिश की है। ज्ञानेद्र की कविता का प्रकृति के केन्द्र में जाना पंत की तरह प्रकृति पर आत्म मुग्ध होना नही है। बल्कि प्रकृति के निकट जाकर अपनी जिजीविषा, अपने संघर्ष व मूल संवेदना को जानना है। उनके प्रकृति सम्बंधी अनुभवों के केन्द्र में वृक्ष है, वृक्षों से प्राप्त जीवन-संवेदना है। इस संवेदना के कारण हम वृक्ष कवि भी कह सकते हैं।

* व्याख्याता हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय करौली (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ज्ञानेद्रपति की दुनिया वृक्षों से जुडी हुई है जिसमें दुर्गम अरण्यों की कथाएँ है, वृक्ष में उगता हुआ पृथ्वी का जीवन है नीम व जामुन की गंध है, पीपल के पत्तों का जायका है। वृक्ष के साथ नींद भी है, वृक्ष के साथ जागना भी है, ''इस पृथ्वी पर सूर्योदय का पहला खडका/ मेरे घर के पास के वृक्ष में होता है/ सूर्य की पहली किरण पड़ती है,/ किसी पत्ते की हथेली पर/ सबसे पहले भरती है और/ पृथ्वी का जीवन सबसे पहले/ इस वृक्ष मे जागता है।''[1]

प्रकृति के साथ अभिन्न संबंध रखने वाले कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बुंदेलखण्ड की प्रकृति व प्राकृतिक परिवेश के साक्षात चित्र दिखाई देते हैं। अपने परिवेश व प्रकृति के प्रति इतना आत्मीय लगाव उनका जीवन के प्रति गहरी आसक्ति का प्रमाण है। प्रकृति के बारे में उन्होंने कहा है, ''प्रकृति में हम रहते हैं जो हमारे लिए माँ है। उसी को हमने आज के साहित्य से दूर कर दिया है, और हम हो गये हैं प्रकृति विहीन निस्संग आदमी।''

कवि केदारनाथ अग्रवाल की ''चन्द्रगहना से लौटती बेर'' कविता में प्रकृति के सौन्दर्य पर कवि लिखते हैं, ''एक बीते के बराबर/ यह हरा ठिगना चना/ बाँधे मुरेठा शीष पर, छोटे गुलाबी फूल का/ सजकर खडा है। बीच में अलस हठीली/ देह की पतली कमर की है लचीली/ नीले फूले फूल के सिर पर चढकर/ फाग गाता मास फागुन/ आ गया है आज जैसे,/ स्वयंवर हो रहा है।''[2]

प्रस्तुत कविता में कवि ने प्रकृति पर प्रसन्न होते हुए चने के पौधे को छोटे कद का दूल्हा, अलसी को तन्वंगी दुल्हन और सरसो को स्वयं ही विवाह रचने वाली आधुनिक युवती के रूप में चित्रित करके खेत को विवाह मण्डप ही बना दिया है। कवि प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होता है वही दूसरी और प्रकृति के सान्ध्यि में अपनी मुक्ति चाहता है, ''चील्ह दबाये है पंजों में/ मेरे दिल को हरी घास पर/ खुली हवा में जिसे धूप में/ मैंने रखा है।''[3]

आज का कवि प्रकृति के साथ रहकर अपनी मुक्ति की तलाश करता है इसलिए उसे प्रकृति इतनी सुहावनी लगती है साथ ही प्रकृति जीवन शक्ति को भी बढ़ाती है। स्वयं कवि केदारनाथ अग्रवाल के शब्दो में, ''धूप नहीं वह/ बैठा है खरगोस पलंग पर/ उजला रोयदार मुलायम/ इसको छू कर/ ज्ञान हो गया जीने का/ फिर से मुझको।''[4]

मानव और प्रकृति का जन्म जन्मांतर का संबंध है लेकिन प्रकृति के साथ जुड़े रहने के तमाम प्रयत्नों के बावजूद आधुनिक मशीनी युग में न केवल मनुष्य का प्रकृति से मोह टूटा है बल्कि वह उसका शत्रु भी बन गया है।

''सूख चुका है पानी भूगर्भ का/ और फूलों का नामोनिशान नहीं दूर तक।''[5]

आज लोग जानबूझकर प्रकृति का हनन करते हैं, तब समकालीन कवि प्रकृति के प्रति संवेदनशील है क्योंकि धरती माता है, जीव जन्तु उत्पन्न होते है वनस्पतियाँ बहलाती है जिनसे समाज पनपता है।

और फिर तकनीकी उन्नति के चक्कर में उसी धरती को रौंदतें हुए इसी पीड़ा व संवेदना को कवि विश्वनाथ प्रताप सिंह नें अपनी कविता 'तरूण राग' में मार्मिक अभिव्यक्ति दी है, ''यहाँ कौन सुनता है/ तरू का वह राग/ जो था/ एक टुकड़ा धरती/ एक टुकड़ा आकाश।''[6]

'पेड़ की आजादी' कविता में समकालीन कविता के प्रमुख कवि लीलाधर जगूड़ी ने कवि और पेड के संवाद को चित्रित किया है, ''पेड़ ने कहा-पत्ते न हो/ तो बोझ कुछ कम हो/ फूल न हो तो यह भी आफत मिटे/ न हो फल तो कई तरह से मेरी जान बच जाय/ रही जमीन की जरूरत वह मुझे नहीं बीज को पड़ती है। और इन सब की जड़ ही मिट जाए/ तो कितना अच्छा हो।''[7]

इन पंक्तियों में पेड़ की करूण व्यथा का चित्रण हुआ है कि पेड़ ''जान बच जाय'', ''काटा न जाऊ'' आदि के द्वारा जैसे नष्ट होने की पीड़ा से बचने की बात कहता है। उसे भय है कि कोई उसे छोड़ेगा नहीं।

पेड़ ने सदा ही धरती पर परोपकार किया है, वह सदा जहरीला धुँआ सोखकर ताजा हवा देता है, मनुष्य को अन्न, फूल, फल आदि देकर सर्दी गर्मी तथा बरसात में उसकी रक्षा करता है फिर भी मानव उसकी कद्र न करके उसे काटकर नष्ट करते जा रहा है। स्वयं विनाश की पीडा को निमंत्रण दे रहा है। पेड़ की इस वेदना को कवि राजकुमार नें अपनी कविता में कहा है कि, ''कितने - कितने थके हारों ने/ ताजगी पायी थी उसके नीचे/ छाते की तरहा तना था उसे धूप और/ बरसात और खुद-ब-खुद/ ठिठुरती हुई रातों में/ कितना-कितना धुँआ पीता रहा/ बाँटता रहा जीवन सभी को/ उँड़ेलता रहा अमृत घट लगातार/ भूसात हो रहा है, फिर भी वहीं/ काटे जा रहा है अंगांग उसी के।''[8]

आज का मानव जड़ (निर्जीव) वैज्ञानिकता, अकेलेपन में जी रहा है कवि को आदमी के अकेलेपन का अहसास होता है वही प्रकृति के जीवन की मौत की त्रासदी की चिन्ता भी करता है, आज का मानव प्रकृति से प्रेम नहीं करता वरन् उसका विनाश करता है अपने स्वार्थ के लिए, ''देखो कैसे कटी उसी छाल/ उसी छाल में धँसी ? कुल्हाड़ी की धार/ मेरे गीतों में धँसी मनोतल में धँसी?/ मेरे घावों में धँसी/ कुल्हाडी की धार। घसीट कर उसे ले गये।''[9]

समकालीन कवियों में प्रकृति के सौन्दर्य को अपनी कविताओं का माध्यम बनाया वही उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य के विनाश को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी है वीरेन डगवाल ने 'गंगा स्तवन' कविता में गंगा के महत्व को चित्रित करते हुए कहा है, ''वनस्पतियों का रस और खनिज तत्व/ दरअसल/ उन्होंने ही बनाया है इसे/ देवापगा/ गंगा महारानी।''

किन्तु तीसरे अनुच्छेद तक पहुँचते-पहुँचते कवि गंगा के यथार्थ से व्याकुल प्रतीत होते दिखाई देते हैं और कहते हैं, ''इस तरह चीखती हुई बहती है/ हिमवान की गलती हुई देह/ लापरवाही से चिप्स का फटा हुआ पैकेट फैंकते हुए वह/ आधुनिक यात्री''

मुखवा में हिचकियाँ लेती हु सी दिखती है/ अति शीतल हरे जल वाली गंगा।''[10]

गंगा की महत्ता एवं उसकी वास्तविक स्थिति चित्रण करते हुए गंगा तट के उस पार को बचाने के लिए ज्ञानद्रपति' उस पार के लिए' कविता में कहते हैं, ''उस पार को बचाने के लिए/ इस तन को भी न्यौछावर करेगा यह मन बेहिचक/ यह मन जो गुनगुनाता ही रहा है साते जागते/ कोशिश करो, कोशिश करो,/ जीने की,/ जमीन में गड़कर भी''[11]

गंगा के अलावा कवियों ने पर्वतों को भी कविता में चित्रित किया है। पर्वतों को आदमी तोड़ने लगा है। ठेकेदार लोग फटफटिया में आएँगे और फटाफट पर्वतों को तोडने लग जाएँगें, अर्थात क्रेशरों से पर्वतों को गिट्टी में परिवर्तित कर देंगे। इस तरह प्रकृति के धरोहर ये पहाड़, आदमी की कभी न मिटने वाली भूख की भेंट चढ़ जाएँगे, ''अब आएँगे पर्वतो के पंख काटने वाले/ वज्रधर इन्द्र के वंशज/ अपनी फटफटिया में भड़भड़िया में और फटाफट धड़-धड़/ चालू हो जाएँगें क्रेशर। और वोल्डरों में गिट्टियों में खंड-खंड हो जाएँगे।''[12]

समकालीन कवियों में अपनी अलग पहचान रखने वाले कवि 'अरूण कमल' ने ''इक्कीसवी शताब्दी की और'' कविता में आज आदमी हर नदी के घाट को शमशान बनाना चहता है, बगीचों को काटकर वीरान कर रहा है क्या इस वीरानगी को लेकर आगे जाएँगे हम?

''हर नदी का घाट शमशान/ हर बगीचा कब्रिस्तान बन रहा है/ और हम इक्कीसवी शताब्दी की और जा रहे हैं।''[13]

प्रमुख कवि 'उदय प्रकाश' भी प्रकृति के चित्रण में अपनी खास पहचान रखते हैं। उन्होने अपने कविता संग्रह ''रात में हारमोनियम'' में 'बचाओं' कविता में प्रकृति को बचाने की वकालत की है, आज की दुनियाँ में बचाने लाइक चीज प्रकृति को मानते हैं उन्होंने कहा है, ''बचाना ही है तो बचाये जाने चाहिए/ गाँवों मे खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा/ पेड़ों में घौंसले।''[14]

अतः हम कह सकते हैं कि समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में प्रकृति के महत्व, मानव के द्वारा उसके विनाश को प्रमुखता सें उभारा है, उनकी कविताओं में प्रकृति चित्रण ही प्रमुख विषय रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव -*समकालीन कविता का यथार्थ,* पृष्ठ संख्या 163

[2]*सम्मेलन पत्रिका,* शोध त्रैमासिक- केदारनाथ अग्रवाल काव्य के राजनैतिक एवं सामाजिक चेतना', पृष्ठ संख्या 150-151

[3]केदारनाथ अग्रवाल -*''फूल नही रंग बोलते है'',* पृष्ठ संख्या 50

[4]वही, पृष्ठ संख्या 50

[5]डॉ. रंजना राजदान - *इक्कीसवी सदी की हिन्दी कविता और जमीनी जुड़ाव,* पृष्ठ संख्या 90-91

[6]पंचशील शोध समीक्षा - *'21वी सदी के हिन्दी कविता के बदलते सरोकार,* पृष्ठ संख्या 81

[7]लीलाधर जगूड़ी- *'घबराये हुए शब्द',* पृष्ठ संख्या 23

[8]स0 राधेश्याम तिवारी -*'पृथ्वी के पक्ष में',* पृष्ठ संख्या 158

[9]कल्याण चन्द्र - *'समकालीन कविता और काव्य',* पृष्ठ संख्या 83
[10]वीरेण डगवाल -'कवि ने कहा', पृष्ठ संख्या 139
[11]ज्ञानेद्रपति - *'गंगा तट',* पृष्ठ संख्या 12
[12]ज्ञानेद्रपति - *'संशयात्मा',* पृष्ठ संख्या 23
[13]अरूण कमल - *'सबूत',* पृष्ठ संख्या 78
[14]उदय प्रकाश - *'रात में हारमोनियम',* पृष्ठ संख्या 22

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन

अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ

सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन

एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

www.ajmams.com

www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777

09739777

₹ 1300/-